गायत्री महाविज्ञान

[संयुक्त संस्करण]

*

लेखक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

२००६ मूल्य-११० रुपये

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* प्रकाशक :

युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

* लेखक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

* सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

* संयुक्त संस्करण
२००५

* मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ॐ

भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजु० ३६.३

भावार्थ- उस प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पाप नाशक, देव स्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

*

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

प्रकाशकीय

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, पं० श्री राम शर्मा आचार्य ने अपने जीवनकाल में ३००० से अधिक छोटी–बड़ी पुस्तकें लिखी हैं। गायत्री महाविज्ञान उनकी अनुपम कृतियों में से एक है। गायत्री महाविद्या को लेकर उन्होंने विलक्षण प्रयोग कर दिखाये। उनकी सिद्धि गायत्री साधना से, उनके उच्च स्तरीय व्यक्तित्व और गायत्री विद्या के युगानुरूप क्रांतिकारी प्रयोग के कारण इस युग के विश्वामित्र के रूप में स्वीकार किया गया।

आर्ष ग्रन्थों में गायत्री की महिमा का गान अनेक प्रकार से किया गया है। इसे वेदमाता, देवमाता, सर्व कामधुक् (सभी श्रेष्ठ कामनाओं को पूरा करने वाली) आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस आदि विभूतियाँ प्रदान करते हुए ब्रह्मलोक तक गति देने वाली कहा गया है, लेकिन फिर भी इसे विशिष्ट साधकों की ही जाने वाली गुह्य विद्या ही माना जाता रहा है। आचार्य जी ने इस युग के अनुरूप व्यक्ति की दुर्बुद्धि के संकट में जकड़े मनुष्य को देखा, तो सद्बुद्धि-सद्भाव जगाने वाली गायत्री महाविद्या को जन सुलभ बनाने के लिए भागीरथी पुरुषार्थ किया। उनके इस पुण्य पुरुषार्थ के फलस्वरूप गायत्री महाविद्या के युगानुरूप सफल प्रयोग के लिए 'गायत्री महाविज्ञान' का सृजन और प्रकाशन हुआ।

पूर्वकाल में उन्होंने गायत्री महाविज्ञान को तीन भागों में प्रकाशित किया था। इसके अब तक ३३ संस्करण निकल चुके हैं। जिज्ञासु जन इन्हें अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप अलग-अलग या एक साथ खरीदते रहे हैं। गायत्री महाविद्या के बारे में लोगों के प्रश्नों का निवारण और जिज्ञासाओं का समाधान ग्रन्थ प्रकाशन से होता रहा है तथा इस विद्या में लोकरुचि बढ़ती गयी। लोकरुचिकता के इसी प्रभाव के साथ विचारशीलों की ओर से यह प्रस्ताव आने लगे कि तीनों भाग मिलाकर इसे एक संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जाए। विज्ञजनों की इस माँग का सम्मान करते हुए ही इस संयुक्त संस्करण का प्रकाशन किया गया है।

इस संस्करण में तीनों भागों की विषय सूची प्रारम्भ में ही एक साथ दे दी गयी है, लेकिन प्रत्येक भाग के लिए पूज्य आचार्यश्री द्वारा लिखी गयी भूमिकाओं को उन भागों के प्रारम्भ में यथावत् दे दिया गया है।

इस संस्करण में उद्धरणों एवं सन्दर्भों को विशेष रूप से शुद्ध करते हुए यथासम्भव सन्दर्भ ग्रन्थों का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है। पाठ भेदों को यथोचित रूप से महाविज्ञान के प्रथम संस्करण (१९५०) से मिलाकर ठीक किया गया है। एक संशोधन और भी किया गया है, जो गायत्री मंत्र के २४ वर्णों के सम्बन्ध में है। गायत्री मंत्र के चौबीस वर्णों के उल्लेख क्रम में महाविज्ञान प्रथम खण्ड के 'गायत्री साधना से शक्तिकोशों का उद्भव' नामक निबन्ध में तथा द्वितीय खण्ड के गायत्री रामायण, पार्वतीनाम् भाष्यम् तथा 'अक्षर सहित कौन' नामक निबन्ध में 'ण्य' को 'णि यं'- इस प्रकार ग्रहण करके २४ वर्णों की स्थिति स्वीकार की गयी है। यही शास्त्र सम्मत (इत्यादि पूर्वे-पिंगल सूत्रानुसार 'इय' की पूर्ति) भी है। गायत्री महाविज्ञान के कुछ अन्य प्रकरणों में सम्भवतः प्रेस की भूल या किसी अन्य असावधानी से मंत्र के २४ वर्णों का वर्गीकरण कुछ भिन्न अंकित हो गया था। इस संस्करण में उस भूल को संशोधित कर दिया गया है। सभी प्रसंगों पर एक शास्त्रीय क्रम के अनुसार ही वर्णों का क्रम व्यवस्थित कर दिया गया है।

आशा की जाती है कि यह संशोधित संयुक्त संस्करण लोक रुचि के अनुरूप सिद्ध होगा।

—ब्रह्मवर्चस

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

गायत्री महाविज्ञान

संकेत–विवरण

अथर्व०	=	अथर्ववेद
अ०	=	अध्याय
कूर्म पुराण उ० विभा०	=	कूर्म पुराण उत्तरविभाग
खं०	=	खण्ड
गरुड़ पुराण/उ०खं०/ब्रह्म०कां०	=	गरुड़ पुराण उत्तर खण्ड ब्रह्म काण्ड
गो० ब्रा० पू०	=	गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध
चरक चि० खण्ड	=	चरक चिकित्सा खण्ड
छा०	=	छान्दोग्योपनिषद्
तारानाथ कृ० गा० व्या०	=	तारानाथ कृत गायत्री व्याख्या
तै० आ०	=	तैत्तिरीय आरण्यक
तैत्तिरीय ब्रा०	=	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्तिरीय सं०	=	तैत्तिरीय संहिता
दु० श्रु०	=	दुर्गश्रुति
दे० भा० स्क०	=	देवी भागवत पुराण स्कन्ध
नृसिंह पूर्वतापनीयो०	=	नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्
प०	=	पद्धति
पद्म पु० सृ० खं०	=	पद्म पुराण सृष्टि खण्ड
पु०	=	पुराण
पृ०	=	पृष्ठ
बृ० पाराशर स्मृति	=	बृहद् पाराशर स्मृति
बृ० यो० याज्ञ०	=	बृहद् योगी याज्ञवल्क्य स्मृति
बृह०	=	बृहदारण्यकोपनिषद्
ब्र०वै० पु० कृ०ज० अ०	=	ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म अध्याय
मनु०	=	मनुस्मृति
महा०	=	महाभारत
महाभारत आश्व०	=	महाभारत आश्वमेधिक पर्व
यजु०	=	यजुर्वेद
यो० या०	=	योगी याज्ञवल्क्य
वा० रा०	=	वाल्मीकि रामायण
शंख०	=	शंख स्मृति
श० ब्रा०	=	शतपथ ब्राह्मण
स्मृ०	=	स्मृति

विषय-सूची

प्रथम भाग

1. वेदमाता गायत्री की उत्पत्ति
2. [illegible]
3. गायत्री साधना से [illegible]
4. गायत्री ही कामधेनु है
5. गायत्री और ब्रह्म की एकता
6. गायत्री द्वारा [illegible]
7. महापुरुषों द्वारा गायत्री महिमा का गान
8. गायत्री-साधना से [illegible] सिद्धियाँ
9. गायत्री साधना से श्री, समृद्धि और सफलता
10. गायत्री साधना से आपत्तियों का निवारण
11. [illegible] की गायत्री साधना
12. [illegible]
13. स्त्रियों को गायत्री का अधिकार
14. क्या स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं?
15. [illegible]
16. [illegible]
17. [illegible]
18. गायत्री का शाप विमोचन और उत्कीलन का रहस्य
19. गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा यज्ञोपवीत
20. [illegible]
21. निष्काम साधना का तत्त्वज्ञान
22. इन साधनाओं में [illegible] बात नहीं
23. साधकों के लिए कुछ आवश्यक नियम
24. [illegible]
25. गायत्री द्वारा [illegible]
26. [illegible]
27. [illegible]
28. गायत्री साधना [illegible]
29. [illegible]
30. [illegible] गायत्री यज्ञ
31. [illegible] में गायत्री साधना
32. [illegible] के लिए [illegible]
33. एक वर्ष की [illegible] साधना
34. गायत्री साधना से [illegible]
35. गायत्री का अर्थ चिन्तन
36. [illegible]
37. गायत्री के [illegible]
38. [illegible] के लक्षण
39. सिद्धियों का दुरुपयोग [illegible]
40. गायत्री द्वारा [illegible]
41. गायत्री द्वारा [illegible]
42. [illegible]
43. [illegible]
44. गायत्री [illegible]

द्वितीय भाग

1. गायत्री महाविज्ञान
2. गायत्री [illegible]
3. गायत्री [illegible]
4. [illegible]
5. गायत्री [illegible]
6. [illegible]
7. [illegible]
8. [illegible]
9. [illegible]
10. गायत्री [illegible]
11. [illegible]
12. [illegible]
13. गायत्री [illegible]
14. [illegible]
15. [illegible]
16. [illegible]
17. [illegible]
18. [illegible]
19. [illegible]
20. [illegible]
21. [illegible]
22. [illegible]
23. [illegible]
24. [illegible]
25. [illegible]
26. [illegible]
27. [illegible]
28. [illegible]
29. [illegible]
30. [illegible]
31. [illegible]
32. गायत्री [illegible]
33. गायत्री [illegible]
34. [illegible]
35. गायत्री [illegible]
36. [illegible]
37. गायत्री के [illegible]
38. [illegible]
39. गायत्री [illegible]

[illegible]

तृतीय भाग

गायत्री के पाँच मुख : २८२
[देवताओं के अधिक अंगों का रहस्य, पाँच मुखों में पाँच गूढ़ कोशों का संकेत।]

अनन्त आनन्द की साधना : २८४
[बन्धन और मुक्ति का संकेत, पाँच कोशों के ज्ञान से ब्रह्म विभूति की प्राप्ति।]

गायत्री मंजरी : २८६
[योग साधना की ४५ श्लोकों वाली पुस्तक, जिसकी व्याख्या के रूप में गायत्री महाविज्ञान तृतीय भाग।]

अन्नमय कोश और उसकी साधना : २९१
[उपवास, आसन, सूर्य नमस्कार की विधि, पंच-तत्वों की विशेष साधना, तपश्चर्या।]

प्राणमय कोश की साधना : ३०१
[प्राणायाम, प्राणशक्ति की सूक्ष्म क्रियायें, तीन बन्ध, सात मुद्रायें, नौ प्राणायाम।]

मनोमय कोश की साधना : ३२२
[ध्यान, त्राटक, जप साधना, तन्मात्रा साधना]

विज्ञानमय कोश की साधना ३३८
[सोऽहं साधना, आत्मानुभूतियोग, आत्म-चिन्तन की साधना, स्वर योग।]

आनन्दमय कोश की साधना : ३५२
[नाद साधना, बिन्दु साधना, कला साधना (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), तुरीयावस्था का समाधान।]

पञ्चकोशी साधना का ज्ञातव्य : ३६४
[साधना का अन्धानुकरण हानिकारक है, साधना की उपयोगिता और आवश्यकता पर प्रकाश]

पञ्चमुखी साधना का उद्देश्य : ३६९
[आत्म-कल्याण के पाँच महान् लाभ, दस भुजाओं से दस दोषों का निवारण।]

गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती : ३७१
[गायत्री साधना का प्रभाव तत्काल, बाधाओं का निवारण, आदि के अनेक मार्गों का सुलभता।]

गायत्री का तन्त्रोक्त वाम मार्ग : ३८२
[तान्त्रिक ये वाम मार्ग, तन्त्र विज्ञान गोपनीय।]

गायत्री की गुरुदीक्षा : ३८८
[मनोभूमि का परिष्कार, साधकों द्वारा दिव्यता, मन्त्र दीक्षा, अग्नि दीक्षा, ब्रह्मदीक्षा, गुरुजनों द्वारा अन्तरंग प्रेरणा, गुरु की महान् जिम्मेदारी।]

Disclaimer / Warning: ...

गायत्री महाविज्ञान

प्रथम भाग

भूमिका

गायत्री एक दैवी शक्ति है, जिससे सम्बन्ध स्थापित करके मनुष्य अपने जीवन-विकास के मार्ग में बड़ी सहायता प्राप्त कर सकता है। परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं, जिनके कार्य और गुण पृथक-पृथक हैं। उन शक्तियों में गायत्री का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य को सद्बुद्धि की प्रेरणा देती है। गायत्री से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले मनुष्य में निरन्तर एक ऐसी सूक्ष्म एवं चैतन्य विद्युत्‌धारा संचरण करने लगती है, जो प्रधानतः मन, बुद्धि, चित्त और अन्तःकरण पर अपना प्रभाव डालती है। बौद्धिक क्षेत्र के अनेकों कुविचारों, असत् संकल्पों, पतनोन्मुख दुर्गुणों का अन्धकार गायत्री रूपी दिव्य प्रकाश के उदय होने से हटने लगता है। यह प्रकाश जैसे-जैसे तीव्र होने लगता है, वैसे-वैसे अन्धकार का अन्त भी उसी क्रम से होता जाता है।

मनोभूमि को सुव्यवस्थित, स्वस्थ, सतोगुणी एवं सन्तुलित बनाने में गायत्री का चमत्कारी लाभ असंदिग्ध है और यह भी स्पष्ट ही है कि जिसकी मनोभूमि जितने अंशों में सुविकसित है, वह उसी अनुपात में सुखी रहेगा, क्योंकि विचारों से कार्य होते हैं और कार्यों के परिणाम सुख-दुःख के रूप में सामने आते हैं। जिसके विचार उत्तम हैं, वह उत्तम कार्य करेगा, जिसके कार्य उत्तम होंगे, उसके चरणों तले सुख-शान्ति लोटती रहेगी।

गायत्री उपासना द्वारा साधकों को बड़े-बड़े लाभ प्राप्त होते हैं। हमारे परामर्श एवं पथ प्रदर्शन में अब तक अनेकों व्यक्तियों ने गायत्री उपासना की है। उन्हें सांसारिक और आत्मिक जो आश्चर्यजनक लाभ हुए हैं, उन्हें हमने अपनी आँखों से देखा है। इसका कारण यही है कि उन्हें दैवी वरदान के रूप में सद्बुद्धि प्राप्त होती है और उसके प्रकाश में उन सब दुर्बलताओं, उलझनों, कठिनाइयों का हल निकल आता है, जो मनुष्य को दीन-हीन, दुःखी, दरिद्री, चिन्तातुर एवं कुमार्गगामी बनाती हैं। जैसे प्रकाश का न होना ही अन्धकार है, वैसे अन्धकार स्वतन्त्र रूप से कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार सद्ज्ञान का न होना ही दुःख है, अन्यथा परमात्मा की इस पुण्य सृष्टि में दुःख का एक कण भी नहीं है। परमात्मा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, उसकी रचना भी वैसी ही है। केवल मनुष्य अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण, सद्ज्ञान के अभाव के कारण दुःखी रहता है, अन्यथा ईश्वर-दत्त सब कुछ और "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती माता पर दुःख का कोई कारण नहीं, यहाँ सर्वत्र सर्वदा आनन्द ही आनन्द है।

सद्ज्ञान की उपासना का नाम ही गायत्री साधना है। जो इस साधना को अपनाते हैं, उन्हें आत्मिक-सांसारिक सुखों की कमी नहीं रहती, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास और दीर्घकालीन अनुभव है। इस पुस्तक में साधना सम्बन्धी सभी उपयोगी बातें लिख दी गई हैं, फिर भी कोई शंका-निवारण, परामर्श एवं सहयोग आवश्यक हो, तो उसको पत्र द्वारा शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार से पूछताछ की जा सकती है।

गायत्री की शास्त्रीय चर्चा, ऋषियों का अनुभव तथा उनकी रचनायें गायत्री महाविज्ञान के दूसरे भाग में प्रकाशित की जा रही हैं, पाठक उसे भी अवश्य पढ़ें।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

गायत्री महाविज्ञान

वेदमाता गायत्री की उत्पत्ति

वेद कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान के चार भेद हैं- ऋक्, यजु, साम और अथर्व। कल्याण, प्रभु प्राप्ति, ईश्वरीय-दर्शन, दिव्यत्व, आत्म-शान्ति, ब्रह्म-निर्वाण, धर्म-भावना, कर्तव्य पालन, प्रेम, तप, दया, उपकार, उदारता, सेवा आदि ऋक् के अन्तर्गत आते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, साहस, वीरता, रक्षा, आक्रमण, नेतृत्व, यश, विजय, पद, प्रतिष्ठा यह सब 'यजु' के अन्तर्गत हैं। क्रीड़ा, विनोद, मनोरंजन, संगीत-कला, साहित्य, स्पर्श इन्द्रियों के स्थूल भोग तथा उन भोगों का चिन्तन, प्रिय कल्पना, खेल, गतिशीलता, रुचि, तृष्णा आदि को 'साम' के अन्तर्गत लिया जाता है। धन, वैभव, वस्तुओं का संग्रह, शास्त्र, औषधि, अन्न, वस्त्र, धातु, गृह, वाहन आदि सुख-साधनों की सामग्रियाँ 'अथर्व' की परिधि में आती हैं।

किसी भी जीवित प्राणी को लीजिये, उसकी सूक्ष्म और स्थूल, बाहरी और भीतरी क्रियाओं और कल्पनाओं का गम्भीर एवं वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिये, प्रतीत होगा कि इन्हीं चार क्षेत्रों के अन्तर्गत उसकी समस्त चेतना परिभ्रमण कर रही है। (१) ऋक्-कल्याण (२) यजु-पौरुष (३) साम-क्रीड़ा (४) अथर्व-अर्थ। इन चार दिशाओं के अतिरिक्त प्राणियों की ज्ञान धारा और किसी ओर प्रवाहित नहीं होती। ऋक् को धर्म, यजु को मोक्ष, साम को काम, अथर्व को अर्थ भी कहा जाता है। यही चार ब्रह्माजी के मुख हैं। ब्रह्मा को चतुर्मुख इसलिये कहा गया है कि वे एक मुख होते हुए भी चार प्रकार की ज्ञान धारा का निष्क्रमण करते हैं। वेद शब्द का अर्थ है- 'ज्ञान' इस प्रकार वह एक है, परन्तु एक होते हुए भी वह प्राणियों के अन्तःकरण में चार प्रकार का दिखाई देता है। इसलिये एक वेद को सुविधा के लिए चार भागों में विभक्त कर दिया गया है। भगवान विष्णु की चार भुजाएँ भी यही हैं। इन चार विभागों को स्वेच्छापूर्वक विभक्त करने के लिये चार आश्रम और चार वर्णों की व्यवस्था की गयी। बालक क्रीड़ावस्था में, तरुण अर्थोपार्जन में, वानप्रस्थ पौरुषावस्था में और संन्यासी कल्याणावस्था में रहता है। ब्राह्मण ऋक् है, क्षत्रिय यजु है, वैश्य अथर्व है, साम शूद्र है। इस प्रकार यह चतुर्विध विभाजन हुआ।

यह चारों प्रकार के ज्ञान उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने उत्पन्न की थी और जिसे शास्त्रकारों ने गायत्री नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार चारों वेदों की माता गायत्री हुई। इसी से उसे 'वेदमाता' भी कहा जाता है। इस प्रकार जल तत्व को बर्फ, भाप (बादल, ओस, कुहरा आदि), वायु (हाइड्रोजन-ऑक्सीजन) तथा पतले पानी के चार रूपों में देखा जाता है, जिस प्रकार अग्नि तत्व को, ज्वलन, गर्मी, प्रकाश तथा गति के रूप में देखा जाता है, उसी प्रकार एक 'ज्ञान-गायत्री' के चार वेदों के चार रूपों में दर्शन होते हैं। गायत्री माता है, तो चार वेद उसके पुत्र हैं।

यह तो हुआ सूक्ष्म गायत्री का, सूक्ष्म वेदमाता का स्वरूप। अब उसके स्थूल रूप पर विचार करेंगे। ब्रह्मा ने चार वेदों की रचना से पूर्व चौबीस अक्षर वाले गायत्री मन्त्र की रचना की। इस एक मन्त्र के एक-एक अक्षर में सूक्ष्म तत्त्व सन्निहित हैं, जिनके पल्लवित होने पर चार वेदों की शाखा-प्रशाखाएँ उद्भूत हो गयीं। एक छोटे बीज के गर्भ में महान् वट वृक्ष छिपा होता है। जब वह अंकुर रूप में उगता है, वृक्ष के रूप में बढ़ा होता है, तो उसमें असंख्य शाखाएँ, टहनियाँ, पत्ते, फूल, फल लद जाते हैं। इन सबका इतना बड़ा विस्तार होता है कि जो उस मूल बीज की अपेक्षा करोड़ों-अरबों गुना बड़ा होता है। गायत्री के चौबीस अक्षर भी ऐसे ही बीज हैं, जो प्रस्फुटित होकर वेदों के महा विस्तार के रूप में अवस्थित होते हैं।

व्याकरण शास्त्र का उद्गम शंकर जी के वे चौदह सूत्र हैं, जो उनके डमरू से निकले थे। एक बार महादेवजी ने आनन्द-मग्न होकर अपना प्रिय वाद्य डमरू बजाया। उस डमरू में से चौदह ध्वनियाँ निकलीं। इन (अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण् आदि) चौदह सूत्रों को लेकर पाणिनि ने महाव्याकरण शास्त्र रच डाला। उस रचना के पश्चात् उसकी व्याख्याएँ होते-होते आज इतना बड़ा व्याकरण शास्त्र प्रस्तुत है, जिसका एक भारी

संक्षिप्तरूप कहा जा सकता है। गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में इसी प्रकार वैदिक साहित्य के अंग-प्रत्यंगों का प्रादुर्भाव हुआ है। गायत्री सूत्र है, तो वैदिक ऋचाएँ उसकी विस्तृत व्याख्या हैं।

ब्रह्म की स्फुरणा से गायत्री का प्रादुर्भाव

आरंभिक परमात्म तत्त्व ब्रह्म में यह भाव कुछ उत्पन्न हुआ। सृष्टि उत्पन्न करने का विचार उठते ही ब्रह्म में एक स्फुरणा उत्पन्न हुई, जिसका नाम है-शक्ति। शक्ति के द्वारा दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई - एक जड़, दूसरी चैतन्य। जड़ सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति 'प्रकृति' और चैतन्य सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति का नाम 'सावित्री' है।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदिकाल में भगवान् की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ। कमल के पुष्प में से ब्रह्मा हुए, ब्रह्मा से सावित्री हुई, सावित्री और ब्रह्मा के संयोग से चारों वेद उत्पन्न हुए। वेद से समस्त प्रकार के ज्ञानों का उद्भव हुआ। तदनन्तर ब्रह्माजी ने पंचभौतिक सृष्टि की रचना की। इस आलंकारिक गाथा का रहस्य यह है-निर्लिप्त, निर्विकार, निर्विकल्प परमात्म तत्त्व की नाभि में से, केन्द्र भूमि में से अन्तःकरण में से कमल उत्पन्न हुआ और वह पुष्प की भाँति खिल गया। श्रुति ने कहा कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा की इच्छा हुई कि **'एकोऽहं बहुस्याम्'** मैं एक से बहुत हो जाऊँ। यह इच्छा, स्फुरणा नाभि देश में से निकल कर स्फुटित हुई अर्थात् कमल की कलिका उत्पन्न हुई और उसकी कली खिल गयी।

इस कमल पुष्प पर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ये ब्रह्मा सृष्टि निर्माण की त्रिदेव शक्ति का प्रथम अंश हैं। आगे चलकर यह त्रिदेवी शक्ति उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कार्य करती हुई, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में दृष्टिगोचर होती है। आरम्भ में कमल के पुष्प पर केवल ब्रह्माजी ही प्रकट होते हैं, क्योंकि सर्वप्रथम उत्पन्न करने वाली शक्ति की आवश्यकता हुई।

अब ब्रह्माजी का कार्य आरम्भ होता है। उन्होंने दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की-एक चैतन्य, दूसरी जड़। चैतन्य सृष्टि के अन्तर्गत सभी जीव आ जाते हैं, जिनमें इच्छा, अनुभूति, अहंभावना पाई जाती है। चैतन्य की एक सूक्ष्म सृष्टि है, जिसे विश्व का 'ज्ञानमय कोश' कहते हैं। निखिल विश्व में एक चैतन्य तत्त्व भरा हुआ है, जिसे 'ज्ञान' नाम से पुकारा जाता है। विचार, संकल्प, भाव, इस ज्ञान तत्त्व के तीन वर्ग हैं और सत्, रज, तम यह तीन इसके वर्ग हैं। इन्हीं तत्त्वों को लेकर आत्माओं के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर बनते हैं। सभी प्रकार के प्राणी इसी प्राण तत्त्व से चैतन्यता एवं जीवन सत्ता प्राप्त करते हैं।

जड़ सृष्टि निर्माण के लिए ब्रह्माजी ने पंचभूतों का निर्माण किया। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश के द्वारा विश्व के सभी परमाणु रूप पदार्थ बने। ठोस, द्रव, गैस इन्हीं तीन रूपों में प्रकृति के परमाणु अपनी गतिविधियाँ जारी रखते हैं। नदी, पर्वत, धरती आदि का सभी पसारा इन पंच-भौतिक परमाणुओं का खेल है, प्राणियों के स्थूल शरीर भी इन्हीं प्रकृति जन्य पंच-तत्त्वों के बने होते हैं।

क्रिया जड़-चेतन, दोनों सृष्टि में है। अन्तर्मन चैतन्य सृष्टि में अहंभाव, संकल्प और प्रेरणा की गतिविधियाँ विविध रूपों में दिखलाई पड़ती हैं। परमाणु जड़ सृष्टि में, शक्ति, हलचल और रूप इन आधारों के द्वारा विविध प्रकार के रंग-रूप, आकार-प्रकार बनते-बिगड़ते रहते हैं। जड़ सृष्टि का आधार परमाणु और चैतन्य सृष्टि का आधार संकल्प है। दोनों ही आधार अत्यन्त सूक्ष्म और अनन्त शक्तिशाली हैं, इनका नाश नहीं होता केवल रूपान्तर होता रहता है।

जड़-चेतन सृष्टि के निर्माण में ब्रह्माजी की दो शक्तियाँ काम कर रही हैं—(१) संकल्प शक्ति (२) परमाणु शक्ति। इन दोनों में प्रथम संकल्प शक्ति की आवश्यकता हुई, क्योंकि बिना उसके चैतन्य का आविर्भाव नहीं होता और बिना चैतन्य के परमाणु का उपयोग किस लिए होता। अचैतन्य सृष्टि तो अपने में अचैतन्य थी, क्योंकि न तो उसको किसी का ज्ञान होता और न उसका कोई उपयोग होता है। 'चैतन्य' के उपयोगीकरण की सुविधा के लिए उसकी आवश्यक सामग्री के रूप में 'जड़' का उपयोग होता है। अतः आरम्भ में ब्रह्माजी ने चैतन्य बनाया, ज्ञान के संकल्प का आविष्कार किया, पौराणिक भाषा में यह कहिये कि सर्वप्रथम वेदों का प्राकट्य हुआ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पुराणों में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मा के शरीर से एक सर्वांग सुन्दरी तरुणी उत्पन्न हुई, यह उनके अंग से उत्पन्न होने के कारण उनकी पुत्री हुई। इसी तरुणी की सहायता से उन्होंने अपना सृष्टि निर्माण कार्य जारी रखा। इसके पश्चात् उस अकेली रूपवती युवती को देखकर उनका मन विचलित हो गया और उन्होंने उससे पत्नी के रूप में रमण किया। इस मैथुन से मैथुनी संयोगजन्य परमाणुमय पंचभौतिक-सृष्टि उत्पन्न हुई। इस कथा के अलंकारिक रूप को न समझकर कई व्यक्ति अपने मन में प्राचीन तथ्यों को उपहासी और अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे भूल जाते हैं कि ब्रह्मा कोई मनुष्य नहीं है और न ही उनसे उत्पन्न हुई शक्ति पुत्री या पत्नी है और न पुरुष-स्त्री की तरह उनके बीच में समागम होता है। इस सृष्टि निर्माण काल के एक तथ्य को गूढ़ पहेली के रूप में आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत करके ऋषि ने अपनी कलाकारिता का परिचय दिया है।

ब्रह्म, निर्विकार परमात्मा की शक्ति है, जो सृष्टि का निर्माण करती है। इस निर्माण कार्य को चालू करने के लिये उसकी दो भुजाएँ हैं, जिन्हें संकल्प और परमाणु शक्ति कहते हैं। संकल्प शक्ति चेतन सत् सम्पन्न होने से ब्रह्मा की पुत्री है। परमाणु शक्ति स्थूल क्रियाशील एवं तम सम्पन्न होने से ब्रह्मा की पत्नी है। इस प्रकार, गायत्री और सावित्री ब्रह्मा की पुत्री तथा पत्नी नाम से प्रसिद्ध हुई।

गायत्री सूक्ष्म शक्तियों का स्रोत है

पिछले पृष्ठों पर बतलाया जा चुका है कि एक अव्यक्त, निर्विकार, अजर-अमर परमात्मा की 'एक से अनेक हो जाने' की इच्छा हुई। ब्रह्म में स्फुरण हुआ कि 'एकोऽहं बहुस्याम्' मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ। उसकी यह इच्छा ही शक्ति बन गयी। इस इच्छा, स्फुरणा या शक्ति को ही ब्राह्मी शक्ति कहते हैं। इस प्रकार ब्रह्म एक से दो हो गया। अब उसे लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधे-श्याम, उमा-महेश, शक्ति-शिव, माया-ब्रह्म, प्रकृति-परमेश्वर आदि नामों से पुकारने लगे।

इस शक्ति के द्वारा अनेक पदार्थों तथा प्राणियों का निर्माण होना था, इसलिए उसे भी तीन भागों में अपने को विभाजित कर देना पड़ा, ताकि अनेक प्रकार के सम्मिश्रण तैयार हो सकें और विविध गुण, कर्म, स्वभाव वाले जड़, चेतन पदार्थ बन सकें। ब्रह्मशक्ति के ये तीन टुकड़े (१) सत् (२) रज (३) तम इन तीन नामों से पुकारे जाते हैं। सत् का अर्थ है— ईश्वर का दिव्य तत्त्व। तम का अर्थ है— निर्जीव पदार्थों में परमाणुओं का अस्तित्व। रज का अर्थ है— जड़ पदार्थों और ईश्वरीय दिव्य तत्त्व के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई आनन्ददायक चैतन्यता, ये तीन तत्त्व स्थूल सृष्टि के मूल कारण हैं। इनके उपरान्त स्थूल उपादान के रूप में मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि, आकाश- ये पाँच स्थूल तत्त्व और उत्पन्न होते हैं। इन तत्त्वों के परमाणुओं तथा उनकी शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तन्मात्राओं द्वारा सृष्टि का सारा कार्य चलता है। प्रकृति के दो भाग हैं—सूक्ष्म प्रकृति जो शक्ति प्रवाह के रूप में, चेतना संसार के रूप में कार्य करती है, वह सत्, रज, तममयी है। स्थूल प्रकृति जिससे दृश्य पदार्थों का निर्माण एवं उपयोग होता है, परमाणुमयी है। यह मिट्टी, पानी, हवा आदि स्थूल पञ्चतत्त्वों के आधार पर अपनी गतिविधि जारी रखती है।

उपरोक्त पंक्तियों से पाठक समझ गये होंगे कि पहले एक ब्रह्म था, उसकी स्फुरणा से आदिशक्ति का आविर्भाव हुआ। इस आदिशक्ति का नाम ही गायत्री है। जैसे ब्रह्म ने अपने तीन भाग कर लिये- (१) सत्- जिसे 'ह्रीं' या सरस्वती कहते हैं (२) रज- जिसे 'श्रीं' या लक्ष्मी कहते हैं (३) तम- जिसे 'क्लीं' या काली कहते हैं। वस्तुतः सत् और तम दो ही विभाग हुए थे, इन दोनों के मिलने से जो धारा उत्पन्न हुई, वह रज कहलाती है। जैसे गंगा, यमुना जहाँ मिलती हैं, वहाँ उनकी मिश्रित धारा को सरस्वती कहते हैं। सरस्वती कोई पृथक् नदी नहीं है। जैसे इन दो नदियों के मिलने से सरस्वती हुई वैसे ही सत् और तम के योग से रज उत्पन्न हुआ और यह त्रिधा प्रकृति कहलाई।

अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद का बहुत झगड़ा सुना जाता है, वस्तुतः यह समझने का अन्तर मात्र है। ब्रह्म, जीव, प्रकृति यह तीनों ही अस्तित्व में हैं। पहले एक ब्रह्म था यह ठीक है, इसलिये अद्वैतवाद भी ठीक है। पीछे ब्रह्म और शक्ति (प्रकृति) दो हो गये, इसलिए द्वैतवाद भी ठीक है। प्रकृति और परमेश्वर के संयोग से जो परमाणु सृष्टि

[illegible]

इसकी टूट-फूट और परिवर्तन की झंझट भी आये दिन लगी रहती है। इन यन्त्रों की स्थापना, सुरक्षा और निर्माण के लिए हर समय ध्यान रखना पड़ता है तथा उनका स्थान परिवर्तन तो और भी कठिन होता है। इसके विपरीत भारतीय योग-विज्ञान के विशेषज्ञ ऐसे झंझटों से बचे रहते थे। वे बिना किसी यन्त्र की सहायता के, बिना कोयला, विद्युत्, पेट्रोल आदि के केवल अपने शरीर के [illegible] केन्द्रों का सम्बन्ध सूक्ष्म प्रकृति से स्थापित करके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य कर लेते थे, जिनकी वास्तविकता तक को आज के भौतिक विज्ञानी समझने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं।

महाभारत और लंका युद्ध में जो अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त हुए थे, उनमें से बहुत थोड़ों का धुँधला रूप अभी सामने आया है। तोप, गैस बम, अणु बम, रोग कीटाणु बम, परमाणु बम, मृत्यु किरण आदि का धुँधला चित्र अभी तैयार हो पाया है। प्राचीनकाल में मोहक शस्त्र, ब्रह्मपाश, नागपाश, वरुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, शत्रु को मारकर तरकस में लौट आने वाले बाण आदि प्रचलित होते थे, शब्दभेद का प्रचलन था। ऐसे अस्त्र-शस्त्र किन्हीं कारखानों में नहीं, मन्त्र बल से चलाये जाते थे, जो शत्रु को जहाँ भी वह छिपा हो, ढूँढ़कर उसका संहार करते थे। लंका से बैठा हुआ रावण और अमेरिका में बैठा हुआ अहिरावण आपस में बातें उसी प्रकार वार्तालाप करते थे, उन्हें किन्हीं टेलीफोन यन्त्र या ट्रान्समीटर की जरूरत नहीं थी। विमान बिना पेट्रोल के उड़ते थे।

अष्ट-सिद्धि और नव-निधि का वर्णन शास्त्रों में जगह-जगह पर आता है। अणिमा से छोटा बनना, जल पर चलना, वायु के समान तेज दौड़ना, अदृश्य हो जाना, क्षण में पशु-पक्षी और क्षुद्र-पक्षी से मनुष्य का शरीर बदल लेना, शाप, वरदान से बहुत छोटा या बड़ा, बहुत हल्का या भारी बना लेना, प्राण से अधिक उत्पन्न कर देना, मनुष्यों के उनमें प्राणों की शक्ति, मृत्यु को रोक लेना, दूरदृष्टि रखना, भविष्य का ज्ञान, दूसरों के मन की पहचान, क्षण भर में करोड़ों कोस, ऋतु, वर्षा, जीव-जन्तु मात्र, रोग आदि उत्पन्न कर देना, जिसका सामान्य को सम्भावना से परिचित होना, किसी वस्तु की स्थापना कर देना, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी पर विजय, आकाश में उड़ना आदि अनेकों आश्चर्य भरे कार्य केवल मन्त्र बल से, योगबल से, अध्यात्म विज्ञान से होते थे और उन वैज्ञानिक प्रयोगों के लिये किसी प्रकार की मशीन, पेट्रोल, बिजली आदि की जरूरत न पड़ती थी। यह कार्य शारीरिक विद्युत् और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर सहज ही हो जाते थे। यह भारतीय विज्ञान था, जिसका आधार था-साधना।

साधना द्वारा केवल अन्न तत्त्व से सम्बन्ध रखने वाले उपरोक्त प्रकार के भौतिक चमत्कार ही नहीं होते वरन् रज और सत् तत्त्व के लाभ तथा आनन्द भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विषम परिस्थितियों में पड़कर जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य मानसिक कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्म-शक्ति के उपयोग की विद्या जानने वाला व्यक्ति विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा और ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से पार कर लेता है और बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द को बढ़ाने का मार्ग ढूँढ़ निकालता है। वह जीवन को इतनी मस्ती, प्रसन्नता और मजेदारी के साथ बिताता है, जैसा कि बेचारे करोड़पतियों को भी नसीब नहीं हो सकता। जिसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आत्मबल के कारण ठीक बना हुआ है, उसे थोड़े साधनों से भी अधिक आनन्ददायक जीवन बिताने का सौभाग्य अनायास ही प्राप्त हो जाता है। रज शक्ति का उपयोग जानने का यह लाभ भौतिक विज्ञान द्वारा मिलने वाले लाभों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

'सत्' तत्त्व के लाभों का वर्णन करना तो लेखनी और वाणी दोनों की ही शक्ति से बाहर है। ईश्वरीय दिव्य तत्त्वों की जब आत्मा में वृद्धि होती है तो दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, त्याग, संतोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, संयम, नम्रता, पवित्रता, श्रमशीलता, धर्मपरायणता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप संसार में उसके लिए प्रशंसा, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, श्रद्धा, सहायता, सम्मान के भाव बढ़ते हैं और उसे प्रत्युपकार से सन्तुष्ट करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह सद्गुण स्वयं इतने मधुर हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होता है, वहाँ आत्म सन्तोष की शीतल निर्झरिणी सदा बहती रहती है। ऐसे लोग

चाहे जीवित अवस्था में हो, चाहे मृत अवस्था में, उन्हें जीवन-मुक्ति, स्वर्ग, परमानन्द, ब्रह्मानन्द, आत्म-दर्शन, प्रभु प्राप्ति, ब्रह्म-निर्वाण, कुण्डलिनी जागरण, निर्विकल्प समाधि का सुख प्राप्त होता रहता है। यही तो जीवन का लक्ष्य है। इसे पाकर आत्मा परितृप्ति के आनन्द सागर में निमग्न हो जाती है।

आत्मिक, मानसिक और सांसारिक तीनों प्रकार के सुख-साधन आद्य-शक्ति गायत्री की सत्, रज, तमयी धाराओं तक पहुँचने वाला साधक सुविधापूर्वक प्राप्त कर सकता है। सरस्वती, लक्ष्मी और काली की विभूतियाँ पृथक्-पृथक् प्राप्त की जाती हैं। पाश्चात्य देशों में भौतिक विज्ञानी 'क्लीं' तत्त्व की काली शक्ति का अन्वेषण आराधना करने में निरत हैं। बुद्धिवादी, धर्म-प्रचारक, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], श्रीमन्त, उद्योगी, व्यापारी [illegible] 'श्रीं' शक्ति की मुख्यतया लक्ष्मी के आयोजन में लगे हुए हैं। योगी, ब्रह्मवेत्ता, अध्यात्मवादी, तत्त्वदर्शी, भक्त, दार्शनिक, आचार्य आदि 'ह्रीं' तत्त्व की, सरस्वती की आराधना कर रहे हैं। यह तीनों ही वर्ग गायत्री की आद्य-शक्ति के एक-एक चरण के उपासक हैं। गायत्री को 'त्रिपदा' कहा है। उसके तीन चरण हैं। यह त्रिवेणी उपर्युक्त तीनों ही कामनाओं को पूरा करने वाली है। [illegible] संसार के सभी काम करती है। आवश्यकतानुसार यह उसके लिये पेट्रोल का, रोशनी का, [illegible] का, [illegible] का, [illegible] का, [illegible] का, [illegible] का, [illegible] का काम चला देती है। वैसे ही जो लोग उत्तम शक्ति को आत्म-शक्ति के साथ जोड़ने की विद्या जान जाते हैं, वे अपने को मुक्तात्मा सिद्ध करते हैं ये साधक सभी सर्वांगपूर्णतया मात्रा में अभीष्ट लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

संसार में दुःखों के तीन कारण हैं—(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। इन तीन दुःखों को गायत्री की सूक्ष्म प्रकृति की तीनों धाराओं के सदुपयोग से मिटाया जा सकता है। ह्रीं अज्ञान को, श्रीं अभाव को, क्लीं अशक्ति को दूर करती है। भारतीय सूक्ष्म विज्ञानवेत्ताओं ने सूक्ष्म प्रकृति पर अधिकार करके अभीष्ट आनन्द प्राप्त करने के लिए विज्ञान का आविष्कार किया था, वह सभी दृष्टियों से असाधारण और महान् है। उस आविष्कार का नाम है—साधना। साधना से सिद्धि मिलती है। गायत्री साधना से अनेक सिद्धियाँ मिल जाती हैं।

गायत्री साधना से शक्तिकोशों का उद्भव

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि गायत्री कोई देवी-देवता, भूत-पलीत आदि नहीं, वरन् ब्रह्म की स्फुरणा से उत्पन्न हुई आद्यशक्ति है, जो संसार के अनेक पदार्थों का मूल कारण है और उसी के द्वारा जड़-चेतन सृष्टि में गति, शक्ति, क्रिया, चेतना तथा परिवर्तन होते हैं। जैसे घर में रखे हुए रेडियो यन्त्र का सम्बन्ध विद्युत्प्रवाही ईथर तत्त्व से स्थापित करके देश-विदेशों में होने वाले प्रत्येक ब्राडकास्ट को इच्छानुसार सुन सकते हैं, उसी प्रकार आत्म-शक्ति का विद्युत्प्रवाही गायत्री शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके सूक्ष्म प्रकृति की सभी हलचलों को जान सकते हैं और सूक्ष्म शक्ति को इच्छानुसार मोड़ने की कला सीखकर भौतिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र में प्राप्त हो सकने वाली सभी सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकते हैं। जिस मार्ग से यह सब हो सकता है उसका नाम है—साधना।

कई व्यक्ति सोचते हैं—हमारा उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति, आत्म-दर्शन और जीवन मुक्ति है। हमें गायत्री के, सूक्ष्म प्रकृति के चक्कर में पड़ने से क्या प्रयोजन है? हमें तो केवल ईश्वर आराधना करनी चाहिए। सोचने वालों को जानना चाहिए कि ब्रह्म सर्वथा निर्विकार, निर्लेप, निरञ्जन, निराकार, गुणातीत है। वह न किसी से प्रेम करता है, न द्वेष। वह केवल द्रष्टा एवं कारण रूप है। उस तक सीधे पहुँच नहीं हो सकती, क्योंकि जीव और ब्रह्म के बीच सूक्ष्म प्रकृति (गायत्री) का सघन आच्छादन है। इस आच्छादन को पार करने के लिए प्रकृति के साधनों से ही काम करना पड़ेगा। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कल्पना, ध्यान, सूक्ष्म शरीर, षट्चक्र, इष्टदेव की ध्यान प्रतिमा, पाठ, स्वाध्याय, उपासना, जप, अनुष्ठान, आसन आदि सभी तो प्रकृति निर्मित ही हैं। इन सबको छोड़कर ब्रह्म प्राप्ति किस प्रकार होनी सम्भव है? जैसे ऊपर आकाश में पहुँचने के लिए वायुयान की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही ब्रह्म प्राप्ति के लिए भी प्रकृतिमूलक साधना का आश्रय लेना पड़ता है। माया के आवरण से होकर पार जाने

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org
Gayatri Mahavigyan
Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

पर ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सच तो यह है कि साक्षात्कार का अनुभव गायत्री के गर्भ में ही होता है। इससे आगे पहुँचने पर सूक्ष्म इन्द्रियाँ और उनकी अनुभव शक्ति भी लुप्त हो जाती है। इसलिए मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति चाहने वाले भी गायत्री मिश्रित ब्रह्म की, राधेश्याम, सीताराम, लक्ष्मीनारायण की ही उपासना करते हैं। निर्विकार ब्रह्म का सायुज्य तो तभी होगा, जब ब्रह्म "बहुत से एक होने" की इच्छा करेगा और सब आत्माओं को समेटकर अपने में धारण कर लेगा। उससे पूर्व सब आत्माओं का अधिकार ब्रह्म में ही सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि हो सकता है। इस प्रकार गायत्री मिश्रित सविकार ब्रह्म ही हमारा उपास्य रह जाता है। उसकी प्राप्ति के साधन जो भी होंगे, वे सभी सूक्ष्म प्रकृति गायत्री द्वारा ही होंगे। इसलिए ऐसा सोचना उचित नहीं कि ब्रह्म प्राप्ति के लिए गायत्री अनावश्यक है। वह तो अनिवार्य है। जान में कोई उपेक्षा या विरोध करे, यह उसकी इच्छा, पर गायत्री तत्त्व से बचकर अन्य मार्ग से जाना असंभव है।

कई व्यक्ति कहते हैं कि हम निष्काम साधना करते हैं। हमें किसी फल की कामना नहीं, फिर सूक्ष्म प्रकृति का आश्रय क्यों लें? ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि निष्काम साधना का अर्थ भौतिक लाभ न चाह कर आत्मिक साधना करना है, बिना परिणाम सोचे यदि चाहें तो किसी कार्य में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती, यदि कुछ मिल भी जाए, तो उससे समय एवं शक्ति के अपव्यय के अतिरिक्त और कुछ परिणाम नहीं निकलता। निष्काम कर्म का तात्पर्य दैवी, सतोगुणी, आत्मिक कामनाओं से है। ऐसी कामनाएँ भी गायत्री के प्रथम पाद के 'ह्रीं' तत्त्व में अपनाने भाव में आती हैं। इसलिए निष्काम भाव की उपासना भी गायत्री क्षेत्र से बाहर नहीं है।

मन्त्र विज्ञान को वैज्ञानिक जानते हैं कि जीव से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण ॐकार, ह्रींकार, श्रींकार, ऐंकार, क्लींकार आदि सूक्ष्म के संकेतिक अर्थों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में सूक्ष्म के जिस भाग से वह ध्वनि निकलती है, उस अंगों के नाड़ी तन्तु उत्तेजित हो विभिन्न प्रकार की तरंगें पैदा करते हैं। इन पैदावार केन्द्रों को सूक्ष्म शक्ति संस्थान होते हैं, जिन पर उन तरंगों का दबाव पड़ता है। जिन लोगों को सूक्ष्म शक्तियों देखने का यत्न हो सका है, उनके सूक्ष्म से कुछ ऐसा ज्ञात आकृतियों का एक-एकाकार निकलते हैं, उसी को ध्वनि का तुलनात्मक कहते हैं। उत्तेजित होती नाड़ी, दूसरा आकृतियों उत्पन्न होती हैं। जैसी लोग आदि हैं कि ६४ योगों में कोई विशेष ध्वनि-भाग्य लिया रहता है, इन्हीं से सम्बन्ध रहस्यमय शक्तियाँ है, जैसे अणिमादि ऋद्धियाँ आदि हैं। विभिन्न प्रकार की

विद्या तथा सम्बन्ध, यह दोनों कारण गायत्री-शक्ति को ऐसा बलवान् बनाते हैं, जो साधकों के लिए दैवी वरदान सिद्ध होता है।

गायत्री मन्त्र को और भी अधिक पुष्ट बनाने वाला कारण है साधक का 'श्रद्धामय विश्वास'। विश्वास से सभी मनोविज्ञानवेत्ता परिचित हैं। हम अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे असंख्य उदाहरण अनेकों बार दे चुके हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि केवल विश्वास के आधार पर लोग भय की वजह से अकारण काल के मुख में चले गये और विश्वास के कारण मृतप्राय लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया। रामायण में तुलसीदासजी ने 'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ' कहते हुए श्रद्धा और विश्वास को भवानी-शंकर की उपमा दी है। झाड़ी को भूत, रस्सी को सर्प, मूर्ति को देवता बना देने की क्षमता विश्वास में है। लोग अपने विश्वासों की रक्षा के लिए धन, आजीविका तथा प्राणों तक को हँसते-हँसते गँवा देते हैं। एकलव्य, कबीर आदि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे प्रकट है कि गुरु द्वारा नहीं केवल अपनी श्रद्धा के आधार पर गुरु द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा से भी अधिक सिद्ध बना जा सकता है। हिप्नोटिज्म का आधार रोगी को अपने ऊपर पर विश्वास जमाके उससे मनचाहे कार्य करा लेना ही तो है। तांत्रिक लोग मन्त्र सिद्धि की कठोर साधना द्वारा अपने मन में कितनी अगाध श्रद्धा जमाते हैं। अन्ततः जिसके मन में उस मन्त्र के प्रति जितनी गहरी श्रद्धा जमी होती है, उस तांत्रिक का मन्त्र भी उतना काम करता है। जिस मन्त्र से श्रद्धालु तांत्रिक चमत्कारी काम कर दिखाता है, उस मन्त्र को अश्रद्धालु साधक चाहे जितना जपे कुछ लाभ नहीं होता। गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में भी यह बात बहुत हद तक काम करती है। जब साधक श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आराधना करता है, तो शब्द विज्ञान और आत्म-सम्बन्ध दोनों की महत्ता से संयुक्त गायत्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है और वह एक अद्वितीय शक्ति सिद्ध होती है।

पिछले २२ पृष्ठ पर दिये हुए चित्र में दिखाया गया है कि गायत्री के प्रत्येक अक्षर का किस किस स्थान से सम्बन्ध है? उन स्थानों पर कौन यौगिक ग्रन्थियाँ हैं, इसका परिचय इस प्रकार है—

अक्षर	ग्रंथि का नाम	उसमें भरी हुई शक्ति
१. तत्	तापिनी	सफलता
२. स	सफलता	पराक्रम
३. वि	विश्वा	पालन
४. तुर्	तुष्टि	कल्याण
५. व	वरदा	योग
६. रे	रेवती	प्रेम
७. णि	सूक्ष्मा	धन
८. य	ज्ञाना	तेज
९. भर्	भर्गा	रक्षा
१०. गो	गोमती	बुद्धि
११. दे	देविका	दमन
१२. व	वाराही	निष्ठा
१३. स्य	सिंहनी	धारणा
१४. धी	ध्याना	प्राण

१५. म	मर्यादा	संयम
१६. हि	स्फुरा	तप
१७. धि	ध्रुवा	दूरदर्शिता
१८. यो	योगमाया	जागृति
१९. यो	योगिनी	उत्पादन
२०. नः	धारिणी	सरसता
२१. प्र	प्रभवा	आदर्श
२२. चो	ऊष्मा	साहस
२३. द	दृश्या	विवेक
२४. यात्	निरंजना	सेवा

गायत्री उपासना २४ शक्तियों को साधक में जाग्रत् करती है। ये गुण इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इनके जागरण के साथ-साथ अनेक प्रकार की सफलताओं, सिद्धियों और सम्पन्नताओं का मार्ग खुला आरम्भ हो जाता है। कई लोग समझते हैं कि यह लाभ अनायास कोई देवी-देवता दे रहा है। कारण यह है कि अपने अन्दर हो रहे सूक्ष्म तत्त्वों की प्रगति और वृद्धि को वे देख और समझ नहीं पाते। यदि वे समझ पाएँ कि उनकी साधना से क्या-क्या सूक्ष्म शक्तियाँ जाग रही हैं, तो यह समझने में देर न लगेगी कि यह सब कुछ कहीं से अनायास दान नहीं मिल रहा है, वरन् आत्म-विकास की सुव्यवस्थित वैज्ञानिक योजना का ही यह परिणाम है। गायत्री उपासना कोई अन्धविश्वास नहीं, एक ठोस वैज्ञानिक कृत्य है और उसके द्वारा लाभ भी सुनिश्चित ही होते हैं।

गायत्री ही कामधेनु है

पुराणों में उल्लेख है कि स्वर्गलोक में देवताओं के पास कामधेनु गौ है, वह अमृतोपम दूध देती है। जिसे पीकर देवता लोग सदा सन्तुष्ट, प्रसन्न तथा सुसम्पन्न रहते हैं। इस गौ में यह विशेषता है कि उसके समीप कोई अपनी कुछ कामना लेकर आता है, तो उसकी इच्छा तुरन्त पूरी हो जाती है। कल्पवृक्ष के समान कामधेनु भी अपने निकट पहुँचने वालों की मनोकामना पूर्ण करती है।

यह कामधेनु गौ गायत्री ही है। इस महाशक्ति की जो देवता, दिव्य स्वभाव वाला मनुष्य उपासना करता है, वह माता के स्तनों के समान आध्यात्मिक दुग्ध धारा का पान करता है, उसे किसी प्रकार कोई कष्ट नहीं रहता। आत्मा स्वतः आनन्द स्वरूप है। आनन्दमय रहना उसका प्राकृतिक गुण है। दुःखों के कारणों और विघ्नों को हटाकर वह अपने मूल स्वभाव में पहुँच जाता है। देवता स्वर्ग में सदा आनन्दित रहते हैं। मनुष्य भी भूलोक में उसी प्रकार आनन्दित रह सकता है, यदि उसके कष्टों का निवारण हो जाए। गायत्री कामधेनु मनुष्य के सभी कष्टों का समाधान कर देती है।

त्रिविध दुःखों का निवारण

समस्त दुःखों के कारण तीन हैं-(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। जो इन तीनों कारणों को जिस सीमा तक अपने से दूर करने में समर्थ होगा, वह उतना ही सुखी बन सकेगा।

अज्ञान के कारण मनुष्य का दृष्टिकोण दूषित हो जाता है, वह तत्त्वज्ञान से अपरिचित होने के कारण उल्टा-सीधा सोचता है और उल्टे काम करता है, तदनुसार उलझनों में अधिक फँसता जाता है और दुःखी बनता है। स्वार्थ, भोग, लोभ, अहंकार, अनुदारता और क्रोध की भावनाएँ मनुष्य को कर्तव्यच्युत करती हैं और वह दूरदर्शिता को छोड़कर क्षणिक, क्षुद्र एवं हीन बात सोचता है तथा वैसे ही काम करता है। फलस्वरूप उसके विचार और कार्य

Disclaimer / Warning:

परेशान होते रहते हैं। पापों का निश्चित परिणाम दुःख है। दूसरी ओर, अज्ञान के कारण वह अपने और दूसरे सांसारिक गतिविधियों के मूल हेतुओं को नहीं समझ पाता। फलस्वरूप अटपटी आशाएँ, तृष्णाएँ, कल्पनाएँ किया करता है। इस उल्टे दृष्टिकोण के कारण साधारण-सी बातें उसे बड़ी दुःखमय दिखाई देती हैं, जिसके कारण वह शोक-सन्तप्त रहता है। आत्मीयों की मृत्यु, साथियों की भिन्न रुचि, परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव स्वाभाविक है, पर अज्ञानी सोचता है कि मैं जो चाहता हूँ, वही सदा होता रहे। प्रतिकूल बात सामने आवे ही नहीं। इस अस्वाभाविक आशा के विपरीत घटनाएँ जब भी घटित होती हैं, तभी वह रोता, चिल्लाता है। तीसरे अज्ञान के कारण भूलें भी अनेक प्रकार की होती हैं, समीपस्थ सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, यह भी दुःख का हेतु है। इस प्रकार अनेक दुःख मनुष्य को अज्ञान के कारण प्राप्त होते हैं।

अशक्ति का अर्थ है-निर्बलता। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक निर्बलता के कारण, मनुष्य अपने स्वाभाविक, जन्म सिद्ध अधिकारों का भार अपने कन्धों पर उठाने में समर्थ नहीं होता, फलस्वरूप उसे वंचित रहना पड़ता है। स्वास्थ्य खराब हो, बीमारी ने घेर रखा हो, तो स्वादिष्ट भोजन, रूपवती तरुणी, मधुर गीत वाद्य, सुन्दर दृश्य निरर्थक हैं। धन-दौलत का कोई कहने लायक सुख उसे नहीं मिल सकता। बौद्धिक निर्बलता हो तो साहित्य, काव्य, दर्शन, मनन, चिन्तन का रस प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मिक निर्बलता हो तो सत्संग, प्रेम, भक्ति आदि का आत्मानंद दुर्लभ है। इतना ही नहीं, निर्बलों को मिटा डालने के लिए प्रकृति का 'उत्तम की रक्षा' सिद्धान्त काम करता है। कमजोर को सताने और मिटाने के लिए अनेकों तत्त्व प्रकट हो जाते हैं। निर्दोष, भले और सीधे स्वभाव भी उसके प्रतिकूल पड़ते हैं। सर्दी जो बलवानों को बलवृद्धि प्रदान करती है, रसिकों को रस देती है, वह कमजोरों को निमोनिया, गठिया आदि का कारण बन जाती है। जो तत्त्व निर्बलों के लिए प्राणघातक हैं, वे ही बलवानों को सहायक सिद्ध होते हैं। बेचारी निर्बल बकरी को जंगली जानवरों से लेकर जगज्जननी भवानी दुर्गा तक चट कर जाती है और सिंह को वन्य पशु ही नहीं बड़े-बड़े सम्राट् तक अपने राज-चिह्न में धारण करते हैं। अशक्त हमेशा दुःख पाते हैं, उनके लिए भले तत्त्व भी लाभदायक सिद्ध नहीं होते हैं।

अभावजन्य दुःख है— पदार्थों का अभाव। अन्न, वस्त्र, जल, मकान, पशु, भूमि, सहायक, मित्र, धन, औषधि, पुस्तक, शस्त्र, शिक्षक आदि के अभाव में विविध प्रकार की पीड़ाएँ, कठिनाइयाँ भुगतनी पड़ती हैं, उचित आवश्यकताओं को कुचलकर, मन मारकर बैठना पड़ता है और जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों को मिट्टी के मोल नष्ट करना पड़ता है। योग्य और समर्थ व्यक्ति भी साधनों के अभाव में अपने को लुंज-पुंज अनुभव करते हैं और दुःख उठाते हैं।

गायत्री कामधेनु है। जो इसकी पूजा, उपासना, आराधना और अभियाचना करता है, वह प्रतिक्षण माता का अमृतोपम दुग्ध पान करने का आनन्द लेता है और समस्त अज्ञानों, अशक्तियों और अभावों के कारण उत्पन्न होने वाले कष्टों से छुटकारा पाकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है।

गायत्री और ब्रह्म की एकता

गायत्री कोई स्वतंत्र देवी-देवता नहीं है। यह तो परब्रह्म परमात्मा का क्रिया भाग है। ब्रह्म निर्विकार है, अचिन्त्य है, बुद्धि से परे है, साक्षी रूप है, परन्तु उसकी क्रियाशील चेतना शक्ति रूप होने के कारण उपासनीय है और उस उपासना का अभीष्ट परिणाम भी प्राप्त होता है। ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-उपासना, ब्रह्म- साधना, आत्म साक्षात्कार, ब्रह्म दर्शन, प्रभु-परायणता आदि पुण्यकारी शब्दों का जो तात्पर्य और उद्देश्य है, वही 'गायत्री उपासना' आदि इसी भाव वाले शब्दों का मन्तव्य है।

गायत्री उपासना वस्तुतः ईश्वर उपासना का एक अत्युत्तम सरल और शीघ्र सफल होने वाला मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति एक सुरम्य उद्यान में होते हुए जीवन के परम लक्ष्य 'ईश्वर प्राप्ति' तक पहुँचते हैं। ब्रह्म और गायत्री में केवल शब्दों का अन्तर है, वैसे दोनों ही एक हैं। इस एकता के कुछ प्रमाण नीचे देखिये-

गायत्री छन्दसामहम् ॥ —श्रीमद् भगवद्गीता अ. १० ३५

छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूँ।

भूर्भुवः स्वरितीति चैव चतुर्विंशाक्षरा तथा ।
गायत्री चतुरो वेदा ओंकारः सर्वमेव तु ॥ —बृ० यो० याज्ञ० १/५५

भूर्भुवः स्वः यह तीन महाव्याहृतियाँ, चौबीस अक्षर वाली गायत्री तथा चारों वेद निस्संदेह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं ।

देवस्य सवितुर्यस्य धियो यो नः प्रचोदयात् ।
भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहीत्यथ उच्यते ॥ —योगयाज्ञवल्क्य

उस दिव्य तेजस्वी, ब्रह्म का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करता है ।

अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम् ।
यया प्रकाशयते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ —गायत्री तन्त्र० पटल १

वेदरूपी (वेदमयी) तत्त्व स्वरूपिणी गायत्री को मैं कहता हूँ, जिससे सच्चिदानन्द लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है अर्थात् ज्ञात होता है ।

गायत्री वा इदं सर्वम् । —नृसिंहपूर्वतापनीयो० ४/१

यह समस्त जो कुछ है, गायत्री स्वरूप है ।

गायत्री परमात्मा । —[illegible]

गायत्री (ही) परमात्मा है ।

ब्रह्म गायत्रीति-ब्रह्म वै गायत्री । —शतपथ ब्राह्मण ८/५/३/७, ऐतरेय ब्रा० अ० १७ खं० ५

ब्रह्म गायत्री है, गायत्री ही ब्रह्म है ।

सगुणं सच्चिदानन्दं हृदये ब्रह्मलोकेऽपि च ।
ध्यायञ्जपेन्निर्विकल्पो गायत्रीं मुच्यतेऽखिलात् ॥ —[illegible]

जो ब्राह्मण सहित सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को हृदय में और ब्रह्मलोक में ध्यान करता हुआ, विकल्प रहित हो गायत्री जप भी करे, तो अखिलमय संसार के आवागमन से छूट जाता है ।

ओंकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम् । —कूर्म पुराण उ० विभा० अ० १४/५४

ओंकार परब्रह्म स्वरूप है और गायत्री भी अविनाशी ब्रह्म है ।

गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गतिः । —बृहत्पाराशर गायत्री मंत्र पुरश्चरण प्रकरणम् ४/४

गायत्री परम तत्त्व है, गायत्री परम गति है ।

सर्वात्मा हि सा देवी सर्वभूतेषु संस्थिता ।
गायत्री मोक्षहेतुश्च मोक्षस्थानमसंशयम् ॥ —ऋषि शृंग

यह गायत्री देवी समस्त प्राणियों में आत्मा रूप में विद्यमान है, गायत्री मोक्ष का मूल कारण तथा सन्देह रहित मुक्ति का स्थान है ।

गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः ।
गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः ॥ —स्कन्द पुराण, काशीखण्ड ४/९/५८, बृहत्सन्ध्या भाष्य

गायत्री ही दूसरे विष्णु हैं और शंकरजी दूसरे गायत्री ही हैं । ब्रह्माजी भी गायत्री में सन्निहित हैं, क्योंकि गायत्री तीनों देवों का स्वरूप है ।

गायत्रीं परदेवतेति गदिता ब्रह्मैव चिद्रूपिणी ॥५॥ —गायत्री पुरश्चरण प०

गायत्री परम श्रेष्ठ देवता और चित्त रूपी ब्रह्म है, ऐसा कहा गया है ।

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच । —छान्दोग्योपनिषद् ३/१२/१

यह विश्व जो कुछ भी है, वह सबकुछ गायत्रीमय है ।

नभिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्॥ —व्यास

गायत्री और ब्रह्म में भिन्नता नहीं है। अतः चाहे जिस किसी भी प्रकार से ब्रह्म स्वरूपी गायत्री की उपासना करे।

गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका। —शंकर भाष्य

गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म की बोधिका है।

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता॥ —देवी भागवत स्कन्ध ९, अ. १/४२

गायत्री मोक्ष देने वाली, परमात्म स्वरूप और ब्रह्मतेज से युक्त शक्ति है और मंत्रों की अधिष्ठात्री है।

गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं गायत्रीमुखेनोक्तम्॥ —छान्दोग्य॰ शांकर भाष्य ३/१२/१५

गायत्री नामक एवं गायत्री में प्रकाशित होने वाला ब्रह्म गायत्री नाम से वर्णित है।

प्रणवव्याहृतिभ्यां च गायत्र्या त्रितयेन च।
उपास्यं परमं ब्रह्म आत्मा यत्र प्रतिष्ठितः॥ — [illegible] पृ॰ १५

प्रणव, व्याहृति और गायत्री इन तीनों से परम ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये, उस ब्रह्म में आत्मा स्थित है।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकम्। —छा॰ ३/१३/६

हृदय चैतन्य ज्योति गायत्री रूप ब्रह्म के प्राप्ति स्थान के प्राण, व्यान, अपान, समान, उदान ये पाँच द्वारपाल हैं। अतः इन्हीं को वश में करे, जिससे हृदयस्थित गायत्री स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो। उपासना करने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त होता है और उसके कुल में वीर पुत्र या शिष्य उत्पन्न होता है।

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद। —बृह॰ ५/१४/१

भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ—ये तीनों गायत्री के प्रथम पाद के आठ अक्षरों के बराबर हैं। अतः जो गायत्री के प्रथम पद को भी जान लेता है, वह त्रिलोक विजयी होता है।

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास। यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स। इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। —बृह॰ १/४/३

वह ब्रह्म रमण न कर सका, क्योंकि अकेला था। अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता। उसका स्वरूप संयुक्त स्त्री-पुरुष की भाँति था। उसने दूसरे की इच्छा की तथा अपने संयुक्त रूप को द्विधा विभक्त किया, तब दोनों रूप पत्नी और पति भाव को प्राप्त हुए।

निर्गुणः परमात्मा तु त्वदाश्रयतया स्थितः।
तस्य भट्टारिकासि त्वं भुवनेश्वरि ! भोगदा॥ —शक्ति दर्शन

परमात्मा निर्गुण है और तेरे ही आश्रित ठहरा हुआ है। तू ही उसकी भट्टारिका और भोगदा है।

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥ —शक्ति दर्शन

शक्ति, शक्तिमान् से कभी पृथक् नहीं रहती। इन दोनों का नित्य संबंध है। जैसे अग्नि और दाहक शक्ति का नित्य परस्पर सम्बन्ध है, उसी प्रकार शक्तिमान् का भी है।

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥ —देवी भागवत [illegible]

क्योंकि वह और उस शक्तिवान् पुरुष का सदा सम्बन्ध है, कभी भेद नहीं है। जो वह है, सो मैं हूँ, और जो मैं हूँ, सो वह है। यदि भेद है, तो केवल बुद्धि का भ्रम है।

जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता।
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः॥ —ब्र. वै. पु. कृ. ज. ख. १०२/२४

संसार की जननी प्रकृति है और जगत् का पालनकर्ता या रक्षा करने वाला पुरुष है। जगत् में पिता से माता सौगुनी अधिक श्रेष्ठ है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म ही गायत्री है और उसकी उपासना ब्रह्म प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है।

गायत्री द्वारा सतोगुण वृद्धि के दिव्य लाभ

गायत्री सद्बुद्धिदायक मन्त्र है। वह साधक के मन को, अन्तःकरण को, मस्तिष्क को, विचारों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। सत्-तत्त्व की वृद्धि करना उसका प्रधान कार्य है। साधक जब इस महामन्त्र के अर्थ पर विचार करता है, तो वह समझ जाता है कि संसार की सर्वोपरि समृद्धि और जीवन की सबसे बड़ी सफलता सद्बुद्धि को प्राप्त करना है। यह भावना सुदृढ़ होने पर उसकी इच्छा शक्ति इसी तत्त्व को प्राप्त करने के लिए लालायित होती है। यह आकांक्षा मनःलोक में एक ऐसा चुम्बकत्व उत्पन्न करती है, उस चुम्बक की आकर्षण शक्ति से विविध आकाश के ईथर तत्त्व में भ्रमण करने वाली सतोगुणी विचारधाराएँ, भावनाएँ और प्रेरणाएँ खिंच-खिंचकर उस स्थान पर जमा होने लगती हैं। विचारों की चुम्बक शक्ति का विज्ञान सर्वविदित है। एक जाति के विचार अपने सजातीय विचारों को आकर्षण से खींचते हैं। फलस्वरूप संसार के श्रेष्ठ और जीवित, जाग्रत् महापुरुषों के फैलाये हुए अविनाशी सौरभ जो सूक्ष्म में भ्रमण करते रहते हैं, गायत्री साधक के पास दैवी सम्पदा की तरह अनायास ही आकर जमा होने लगते हैं और संचित पूँजी की भाँति उसका एक बड़ा भण्डार जमा हो जाता है।

शरीर और मन में सतोगुण की मात्रा बढ़ने का फल आश्चर्यजनक होता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर यह लाभ न तो समझ पड़ता है, न अनुभव होता है और न इसकी कोई महत्ता मालूम पड़ती है, पर जो सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध में अधिक जानकारी रखते हैं, वे जानते हैं कि तम और रज का घटना और उसके स्थान पर सत् तत्त्व का बढ़ना वैसा ही है, जैसे शरीर में भरे हुए रोग, कफ, पित्त, विजातीय पदार्थ घट जाना और उनके स्थान पर शुद्ध, ओजस्वी, परिपुष्ट रक्त और वीर्य की मात्रा बढ़ जाना। ऐसा परिवर्तन चाहे किसी को खुली आँखों से दिखाई न दे, पर इसका स्वास्थ्य की उन्नति पर जो चमत्कारी प्रभाव पड़ेगा, उसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के लाभ को यदि दैवी फल कहा जाये, तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये। शरीर का कायाकल्प करना एक वैज्ञानिक कार्य है, उसके कारण सुनिश्चित लाभ होता ही है। यह लाभ दैवी है या भौतिकी, इस पर जो मतभेद हो सकता है, उसका कोई महत्त्व नहीं है। गायत्री द्वारा सतोगुण बढ़ता है और निम्नकोटि के तत्त्वों का निवारण हो जाता है। फलस्वरूप साधक का एक सूक्ष्म कायाकल्प हो जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा होने वाले लाभों को वैज्ञानिक लाभ कहें या दैवी वरदान? इस बात पर झगड़ने से कुछ लाभ नहीं, बात एक ही है। कोई कार्य किसी भी आधार पर हो, उससे ईश्वर सत्ता पृथक् नहीं है, इसलिये संसार के सभी कार्य ईश्वर-इच्छा से हुए कहे जा सकते हैं। गायत्री साधना द्वारा होने वाले लाभ वैज्ञानिक आधार पर हुए भी कहे जा सकते हैं और ईश्वरीय कृपा के आधार पर हुए कहने में भी कोई दोष नहीं।

शरीर में सत् तत्त्व की अभिवृद्धि होने से नाड़ीतन्तुओं की गतिविधि में काफी हेर-फेर हो जाता है। इन्द्रियों के भोगों में भटकने की गति मन्द हो जाती है। उत्तेजक, चटपटे-चटपटे स्वादों के पदार्थ खाने के लिए मन ललचाते रहना, बार-बार खाने की इच्छा होना, अधिक मात्रा में खा जाना, अपचन का शिकार न रहना, सात्त्विक पदार्थों में अरुचि और चटपटे, तीखे, गरिष्ठ पदार्थों में रुचि, जैसी बुरी आदतें धीरे-धीरे कम होने लगती हैं। हल्के, सुपाच्य, सरल, सात्त्विक भोजन से ही तृप्ति मिलती है और राजसी, तामसी भोजनों से घृणा हो जाती है। इसी प्रकार कामेन्द्रिय की उत्तेजना कामोत्तेजक विचारों के कारण संयमित हो जाती है। स्त्री-पुरुषों में, व्यभिचार, वासना से बचा

Disclaimer / Warning: ...

बढ़ती है। ब्रह्मचर्य के प्रति श्रद्धा बढ़ती है। फलस्वरूप वीर्य-रक्षा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों में दो ही इन्द्रियाँ प्रधान हैं। इनका संयम होना स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-वृद्धि का प्रधान हेतु है। इसके साथ-साथ परिश्रम, स्नान, निद्रा, शौच, आहार, सफाई, सादगी और अन्य दिनचर्याओं में भी सतोगुणी हो जाती हैं, जिसके कारण आरोग्य और दीर्घजीवन की जड़ें मजबूत होती हैं।

मानसिक क्षेत्र में सद्गुणों की वृद्धि के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, स्वार्थ, आलस्य, व्यसन, व्यभिचार, छल, झूठ, पाखण्ड, चिन्ता, भय, शोक, कार्य आदि दोष कम होने लगते हैं। इनकी कमी से संयम, नियम, त्याग, प्रेम, सन्तोष, निःस्वार्थता, सादगी, निष्कपटता, कर्त्तव्यनिष्ठा, निर्भयता, निश्चिन्तता, मितव्ययिता, शौर्य, विवेक, श्रद्धा, धैर्य, दया, प्रेम, सेवा, उदारता, अहिंसा-परायणता, सहिष्णुता आदि सद्गुण बढ़ने लगते हैं। इस मानसिक कायाकल्प का परिणाम यह होता है कि दैनिक जीवन में प्रायः नित्य ही आते रहने वाले अनेकों दुःखों का सहज ही समाधान हो जाता है। इन्द्रिय संयम और संयत दिनचर्या के कारण शारीरिक रोगों का बहुत बड़ा निराकरण हो जाता है। विवेक जाग्रत् होने से अज्ञानजन्य चिन्ता, शोक, भय, आशंका, क्लेश, हानि आदि के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। ईश्वर-विश्वास के कारण मति स्थिर रहती है और भावी जीवन के बारे में निश्चिन्तता रहती है। धर्म प्रवृत्ति के कारण पाप, अन्याय, अत्याचार नहीं बन पड़ते। फलस्वरूप राज-दण्ड, समाज-दण्ड, आत्म-दण्ड और ईश्वर-दण्ड की चोटों से पीड़ित नहीं होना पड़ता। सेवा, नम्रता, उदारता, दान, ईमानदारी, लोकहित आदि गुणों के कारण दूसरों को लाभ पहुँचता है, शत्रु की आशंका नहीं रहती। इससे प्रायः सभी लोग उसके कृतज्ञ, प्रशंसक, सहायक, भक्त एवं रक्षक होते हैं। पारमार्थिक सद्भावनाओं के परिवर्तन से आत्मा को तृप्त करने वाले प्रेम और संतोष नामक रस दिन-दिन अधिक मात्रा में उपलब्ध होकर जीवन को आनन्दमय बनाते चलते हैं। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक क्षेत्रों में सद्-तत्त्वों की वृद्धि होने से दोनों ओर आनंद का स्रोत उमड़ता है और गायत्री का साधक उसमें निमग्न रहकर आत्म-संतोष का, परमानन्द का रसास्वादन करता रहता है।

आत्मा ईश्वर का अंश होने से उन सब शक्तियों को बीज रूप से छिपाये रहती है, जो ईश्वर में होती हैं। ये शक्तियाँ सूक्ष्मावस्था में रहती हैं और मानसिक मलों के, विषय-विकारों के, दोष-दुर्गुणों के ढेर में दबी हुई अज्ञात रूप से पड़ी रहती हैं। लोग समझते हैं कि हम दीन-हीन, तुच्छ और अशक्त हैं, पर जो साधक मनोविकारों का पर्दा हटाकर, निर्मल आत्म-ज्योति के दर्शन करने में समर्थ होते हैं, वे जानते हैं कि सर्वशक्तिमान् ईश्वरीय ज्योति उनकी आत्मा में मौजूद है और वे परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। अग्नि के ऊपर से राख हटा दी जाए, तो फिर दहकता हुआ अंगारा प्रकट हो जाता है। यह अंगार छोटा होते हुए भी भयंकर अग्निकाण्डों की सामर्थ्य से युक्त होता है। पर पर्दा हटते ही तुच्छ मनुष्य महान् आत्मा (महात्मा) बन जाता है। चूँकि आत्मा में अनेकों ज्ञान-विज्ञान, आश्चर्य-अलौकिक, अद्भुत, आश्चर्यजनक शक्ति के भण्डार छिपे पड़े हैं, वे खुल जाते हैं और वह सिद्ध योगी के रूप में दिखाई पड़ता है। सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिये बाहर से कुछ लाना नहीं पड़ता, किसी देव-दानव की कृपा की जरूरत नहीं पड़ती, केवल अन्तःकरण पर पड़े हुए आवरणों को हटाना पड़ता है। गायत्री की सतोगुणी साधना का सूर्य तामसिक अन्धकार के पर्दे को हटा देता है और आत्मा का सहज ईश्वरीय रूप प्रकट हो जाता है। आत्मा का यह निर्मल रूप सभी ऋद्धि-सिद्धियों से परिपूर्ण होता है।

गायत्री द्वारा हुई सतोगुणों की वृद्धि अनेक प्रकार की आध्यात्मिक और सांसारिक समृद्धियाँ भी लाती है। शरीर और मन की शुद्धि सांसारिक जीवन को अनेक दृष्टियों से सुख-शान्तिमय बनाती है। आत्मा में विवेक और आत्म-बल की मात्रा बढ़ जाने से अनेक ऐसी कठिनाइयाँ जो दूसरों को पर्वत के समान मालूम पड़ती हैं, उस आत्मवान् व्यक्ति के लिये तिनके के समान हल्की बन जाती हैं। उसका कोई काम रुका नहीं रहता। या तो उसकी इच्छा के अनुसार परिस्थिति बदल जाती है या वह परिस्थिति के अनुसार अपनी इच्छाओं को बदल लेता है। क्लेश का कारण इच्छा और परिस्थिति के बीच प्रतिकूलता का होना ही तो है। विवेकवान् इन दोनों में से किसी से अनायास इस संघर्ष को टाल देता है और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। उसके लिये इस पृथ्वी पर भी स्वर्गीय आनन्द की धाराएँ बहने लगती हैं।

वास्तव में सुख और आनन्द का आधार किन्हीं बाहरी भौतिक पदार्थों पर नहीं, किन्तु मनुष्य की मनःस्थिति पर रहता है। मन की आदत है कि जो मनुष्य जब उत्तम सवारी भोगने और ऐशो-आरामों से भी सन्तुष्ट नहीं होता, वह किसी संत के उपदेश से त्याग और संन्यास का व्रत धारण कर लेने पर जंगल की भूमि को ही सबसे उत्तम शय्या और वन के कन्द-मूल फलों को सर्वोत्तम आहार समझने लगता है। यह सब अन्तर मनोभाव और विचारधारा के बदल जाने से ही पैदा हो जाता है। गायत्री बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है और उससे हम सद्बुद्धि की याचना किया करते हैं। अतएव यदि गायत्री की उपासना के परिणामस्वरूप हमारे विचारों का स्तर ऊँचा उठ जाए और मानव जीवन की वास्तविकता को समझकर अपनी वर्तमान स्थिति में ही आनन्द का अनुभव करने लगें, तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

काफी लम्बे समय से हम गायत्री उपासना के प्रचार का प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिए अनेकों साधकों से हमारा परिचय है। हजारों व्यक्तियों ने इस दिशा में हमसे पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन लिया है। इनमें से जो लोग दृढ़तापूर्वक साधना मार्ग पर चलते रहे हैं, उनमें से अनेकों को आश्चर्यजनक लाभ हुए हैं। वे इस सूक्ष्म विवेचना में जाने की इच्छा नहीं करते कि किस प्रकार, कुछ वैज्ञानिक नियमों के आधार पर साधना रूपी बीज का मीठा-रसदार फल उन्हें मिला। इस विवेचना में उन्हें कोई रुचि नहीं होती है। उनका कहना है कि भगवती गायत्री की कृपा के प्रति कृतज्ञता ही हमारी भक्ति-भावना को बढ़ायेगी और उसी से हमें अधिक लाभ होगा, उनका यह मन्तव्य बहुत हद तक ठीक ही है। श्रद्धा और भक्ति बढ़ाने के लिये इष्टदेव के साधना-स्वरूप के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, कृतज्ञता, भक्ति और तन्मयता होनी आवश्यक है। गायत्री साधना द्वारा एक सूक्ष्म विज्ञान सम्मत प्रणाली से लाभ होते हैं, यह जानकर भी इस महाशक्ति से अपना सम्बन्ध दृढ़ करने के लिये कृतज्ञता और भक्ति-भावना का पुट अभिव्यक्ति रखना आवश्यक है।

गायत्री उपासना से अनेकों को जो अनेकों प्रकार के लाभ हुए हैं, उनके बहुत से संस्मरण हमारे रजिस्टरों पर अब भी हैं, उनमें से थोड़े संस्मरण अगले पृष्ठों पर देने का इसलिये प्रयत्न किया जा रहा है कि इन पंक्तियों के पाठक भी इस पथ का अनुसरण करके लाभान्वित हो सकें।

महापुरुषों द्वारा गायत्री महिमा का गान

हिन्दू धर्म में अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। विभिन्न धर्मों के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मतभेद भी हैं, पर गायत्री मन्त्र की महिमा एक ऐसा तत्त्व है जिसे सभी ने, सभी सम्प्रदायों ने, सभी ऋषियों ने एक मत से स्वीकार किया है।

अथर्ववेद १९-७१-१ में गायत्री की स्तुति की गयी है, जिसमें उसे आयु, प्राण, शक्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा गया है।

विश्वामित्र का कथन है—'गायत्री के समान चारों वेदों में मन्त्र नहीं है। सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं।'

भगवान् मनु का कथन है—'ब्रह्मा जी ने तीनों वेदों का सार तीन चरण वाला गायत्री मन्त्र निकाला है। गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मन्त्र नहीं है। जो मनुष्य नियमित रूप से तीन वर्ष तक गायत्री जप करता है, वह ईश्वर को प्राप्त करता है। जो द्विज दोनों सन्ध्याओं में गायत्री जपता है, वह वेद पढ़ने के फल को प्राप्त करता है। अन्य कोई साधन करे या न करे, केवल गायत्री जप से भी सिद्धि पा सकता है। नित्य एक हजार जप करने वाला पापों से वैसे ही छूट जाता है, जैसे केंचुली से साँप छूट जाता है। जो द्विज गायत्री की उपासना नहीं करता, वह निन्दा का पात्र है।'

योगिराज याज्ञवल्क्य कहते हैं—'गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तौला गया। एक ओर षट् अंगों समेत वेद और दूसरी ओर गायत्री, तो गायत्री का पलड़ा भारी रहा। वेदों का सार उपनिषद् हैं, उपनिषदों का सार व्याहृतियों समेत गायत्री है। गायत्री वेदों की जननी है, पापों का नाश करने वाली है, इससे अधिक पवित्र करने

उससे अन्य कोई मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है। गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव से श्रेष्ठ कोई देव नहीं। गायत्री से श्रेष्ठ मन्त्र न हुआ, न आगे होगा। गायत्री जान लेने वाला समस्त विद्याओं का वेत्ता, श्रोत्रिय और श्रोत्रिय हो जाता है। जो द्विज गायत्री परायण नहीं, वह वेदों का पारंगत होते हुए भी शूद्र के समान है, अन्यत्र किया हुआ उसका श्रम व्यर्थ है। जो गायत्री नहीं जानता, ऐसा व्यक्ति ब्राह्मणत्व से च्युत और पापयुक्त हो जाता है।'

पाराशरजी कहते हैं—'समस्त जप सूक्तों तथा वेद मन्त्रों में गायत्री मन्त्र परम श्रेष्ठ है। वेद और गायत्री की तुलना में गायत्री का पलड़ा भारी है। भक्तिपूर्वक गायत्री का जप करने वाला मुक्त होकर पवित्र बन जाता है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास पढ़ लेने पर भी जो गायत्री से हीन है, उसे ब्राह्मण नहीं समझना चाहिये।'

शंख ऋषि का मत है—'नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री ही है। उससे उत्तम वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी पर कोई नहीं है। गायत्री का ज्ञाता निस्सन्देह स्वर्ग को प्राप्त करता है।'

शौनक ऋषि का मत है—'अन्य उपासनायें करें चाहे न करें, केवल गायत्री जप से ही द्विज जीवन मुक्त हो जाता है। सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुखों को पाता है। संकट के समय दस हजार जप करने से विघ्न का निवारण होता है।'

अत्रि मुनि कहते हैं—'गायत्री आत्मा का परम शोधन करने वाली है। उसके प्रताप से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है। जो मनुष्य गायत्री तत्त्व को भली प्रकार समझ लेता है, उसके लिये इस संसार में कोई सुख शेष नहीं रह जाता।'

महर्षि व्यासजी कहते हैं—'जिस प्रकार पुष्प का सार शहद, दूध का सार घृत है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है। सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है। गंगा शरीर के पापों को निर्मल करती है, गायत्री रूपी ब्रह्म गंगा से आत्मा पवित्र होती है। जो गायत्री छोड़कर अन्य उपासनायें करता है, वह पकवान छोड़कर भिक्षा माँगने वाले के समान मूर्ख है। काम्य सफलता तथा तप की वृद्धि के लिये गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।'

भरद्वाज ऋषि कहते हैं- 'ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं, वह ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली है। अनुचित काम करने वालों के दुर्गुण गायत्री के कारण छूट जाते हैं। गायत्री से रहित व्यक्ति शूद्र से भी अपवित्र है।'

चरक ऋषि कहते हैं—'जो ब्रह्मचर्यपूर्वक गायत्री की उपासना करता है और आँवले के ताजे फलों का सेवन करता है, वह दीर्घजीवी होता है।'

नारदजी की उक्ति है—'गायत्री भक्ति का ही स्वरूप है। जहाँ भक्ति रूपी गायत्री है, वहाँ श्रीनारायण का निवास होने में कोई संदेह नहीं करना चाहिये।'

वशिष्ठजी का मत है—'मन्दमति, कुमार्गगामी और अस्थिरमति भी गायत्री के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त करते हैं, फिर सद्गति होना निश्चित है। जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं, वे आत्म-लाभ प्राप्त करते हैं।'

उपर्युक्त अभिमतों से मिलते-जुलते अभिमत प्रायः सभी ऋषियों के हैं। इससे स्पष्ट है कि कोई ऋषि अन्य विषयों में चाहे आपस में मतभेद रखते हों, पर गायत्री के बारे में इन सब में समान श्रद्धा थी और वे सभी अपनी उपासना में उसका प्रथम स्थान रखते थे। शास्त्रों में, धर्म ग्रन्थों में, स्मृतियों में, पुराणों में गायत्री की महिमा तथा साधना पर प्रकाश डालने वाले सहस्रों श्लोक भरे पड़े हैं। इन सबका संग्रह किया जाए, तो एक बड़ा भारी गायत्री-पुराण बन सकता है।

वर्तमान शताब्दी के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महापुरुषों ने भी गायत्री के महत्त्व को उसी प्रकार स्वीकार किया है जैसा कि प्राचीन काल के तत्त्वदर्शी ऋषियों ने किया था। आज का युग बुद्धि और तर्क का, प्रत्यक्षवाद का युग है। इस शताब्दी के प्रभावशाली मान्यताप्राप्त व्यक्तियों की विचारधारा केवल धर्म ग्रन्थ या परम्पराओं पर आधारित नहीं रही है। उन्होंने बुद्धिवाद, तर्कवाद और प्रत्यक्षवाद को अपने सभी कार्यों में प्रधान स्थान दिया है।

ऐसे महापुरुषों को भी गायत्री तत्त्व सब दृष्टिकोणों से परखने पर उत्तम प्रतीत हुआ है। नीचे उनमें से कुछ के विचार देखिये—

महात्मा गाँधी कहते हैं—'गायत्री मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्मा की उन्नति के लिये उपयोगी है। गायत्री का स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किया हुआ जप आपत्तिकाल में संकटों को दूर करने का प्रभाव रखता है।'

लोकमान्य तिलक कहते हैं—'जिस बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है, उसके लिये आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न होना चाहिये, जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले, गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है।'

महामना मदनमोहन मालवीयजी ने कहा था—'ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिये हैं, उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री है। गायत्री से बुद्धि पवित्र होती है। ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है। इस प्रकाश ने असंख्य आत्माओं को भव-बन्धन से त्राण दिया है। गायत्री में ईश्वर परायणता के भाव उत्पन्न करने की शक्ति है। साथ ही वह भौतिक अभावों को दूर करती है। गायत्री की उपासना ब्राह्मणों के लिये तो अत्यन्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण गायत्री जप नहीं करता, वह अपने कर्तव्य धर्म को छोड़ने का अपराधी होता है।'

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—'भारतवर्ष को जगाने वाला जो मन्त्र है, वह इतना सरल है कि एक ही श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है। वह है—गायत्री मन्त्र। इस पुनीत मन्त्र का अभ्यास करने में किसी प्रकार के तार्किक ऊहापोह, किसी प्रकार के मतभेद अथवा किसी बखेड़े की गुंजायश नहीं है।'

योगी अरविन्द ने कई जगह गायत्री जप करने का निर्देश किया है। उन्होंने बताया कि गायत्री में ऐसी शक्ति सन्निहित है, जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है। उन्होंने कइयों को साधना के तौर पर गायत्री का जप बताया है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उपदेश है—'मैं लोगों से कहता हूँ कि लम्बी साधना करने की उतनी आवश्यकता नहीं है। इस छोटी-सी गायत्री की साधना करके देखो। गायत्री का जप करने से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। यह मन्त्र छोटा है, पर इसकी शक्ति बड़ी भारी है।'

स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'राजा से वही वस्तु माँगी जानी चाहिये, जो उसके गौरव के अनुकूल हो। परमात्मा से माँगने योग्य वस्तु सद्बुद्धि है। जिस पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं, उसे सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। सद्बुद्धि से सत् मार्ग पर प्रगति होती है और सत् कर्म से सब प्रकार के सुख मिलते हैं। जो सत् की ओर बढ़ रहा है, उसे किसी प्रकार के सुख की कमी नहीं रहती। गायत्री सद्बुद्धि का मन्त्र है। इसलिये उसे मन्त्रों का मुकुटमणि कहा है।'

जगद्गुरु शंकराचार्य का कथन है—'गायत्री की महिमा का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। बुद्धि का होना इतना बड़ा कार्य है, जिसकी समता संसार के और किसी काम से नहीं हो सकती। आत्म-प्राप्ति करने की दिव्य दृष्टि जिस बुद्धि से प्राप्त होती है, उसकी प्रेरणा गायत्री द्वारा होती है। गायत्री आदि मन्त्र है। उसका अवतार दुरितों को नष्ट करने और ऋत के अभिवर्धन के लिये हुआ है।'

स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'राम को प्राप्त करना सबसे बड़ा काम है। गायत्री का अभिप्राय बुद्धि को काम रुचि से हटाकर राम-रुचि में लगा देना है। जिसकी बुद्धि पवित्र होगी, वही राम को प्राप्त कर सकेगा। गायत्री पुकारती है कि बुद्धि में इतनी पवित्रता होनी चाहिये कि वह राम को काम से बढ़कर समझे।'

महर्षि रमण का उपदेश है—'योग विद्या के अन्तर्गत मन्त्र विद्या बड़ी प्रबल है। मन्त्रों की शक्ति से अद्भुत सफलतायें मिलती हैं। गायत्री ऐसा मन्त्र है, जिससे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं।'

स्वामी शिवानन्दजी कहते हैं—'ब्राह्ममुहूर्त में गायत्री का जप करने से चित्त शुद्ध होता है और हृदय में निर्मलता आती है। शरीर नीरोग रहता है, स्वभाव में नम्रता आती है, बुद्धि सूक्ष्म होने से दूरदर्शिता बढ़ती है और स्मरण शक्ति का विकास होता है। कठिन प्रसंगों में गायत्री द्वारा दैवी सहायता मिलती है। उसके द्वारा आत्म-दर्शन हो सकता है।'

काली कमली वाले बाबा विशुद्धानन्दजी कहते थे—'गायत्री ने बहुतों को सुमार्ग पर लगाया है। कुमार्गगामी मनुष्य यदि चाहे तो गायत्री की ओर रुचि ही नहीं होती, यदि ईश्वर कृपा से हो जाये, तो फिर वह कुमार्गगामी नहीं रहता। गायत्री जिसके हृदय में निवास करती है उसका मन ईश्वर की ओर जाता है। विषय- विकारों की व्यर्थता उसे भली प्रकार अनुभव होने लगती है। कई महात्मा गायत्री जप करके परम सिद्ध हुए हैं। परमात्मा की शक्ति ही गायत्री है, जो गायत्री के निकट जाता है, वह शुद्ध होकर रहता है। आत्म-कल्याण के लिये मन की शुद्धि आवश्यक है। मन की शुद्धि के लिये गायत्री मन्त्र अद्भुत है। ईश्वर प्राप्ति के लिये गायत्री जप को प्रथम सीढ़ी समझना चाहिये।'

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी टी. सुब्बाराव कहते हैं—'सविता नारायण की दैवी प्रकृति को गायत्री कहते हैं। आदि-शक्ति होने के कारण इसको गायत्री कहते हैं। गीता में इसका वर्णन 'आदित्य वर्ण' कहकर किया गया है। गायत्री की उपासना करना योग का सबसे प्रथम अंग है।'

श्री स्वामी करपात्रीजी का कथन है—'जो गायत्री के अधिकारी हैं, उन्हें नित्य-नियमित रूप से जप करना चाहिये। द्विजों के लिये गायत्री का जप अत्यन्त आवश्यक धर्मकृत्य है।'

गीता धर्म के व्याख्याता श्री स्वामी विद्यानन्द कहते हैं—'गायत्री बुद्धि को पवित्र करती है। बुद्धि की पवित्रता से बढ़कर जीवन में दूसरा लाभ नहीं है। इसलिये गायत्री एक महान बड़े लाभ की वस्तु है।'

सर राधाकृष्णन् कहते हैं—'यदि हम इस सार्वभौमिक प्रार्थना गायत्री पर विचार करें, तो हमें मालूम होगा कि यह वास्तव में कितना ठोस लाभ देती है। गायत्री हम में फिर से जीवन का स्रोत उत्पन्न करने वाली आकुल प्रार्थना है।'

प्रसिद्ध आर्यसमाजी महात्मा सर्वदानन्दजी का कथन है—'गायत्री मन्त्र द्वारा प्रभु का पूजन सदा से आर्यों की रीति रही है।'

ऋषि दयानन्द ने भी उसी शैली का अनुसरण करके सन्ध्या का विधान तथा वेदों के स्वाध्याय का प्रचार करना बताया है। ऐसा करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा बुद्धि निर्मल होकर मनुष्य का जीवन अपने तथा दूसरों के लिये हितकर हो जाता है। जितना भी इस शुभ कर्म में श्रद्धा और विश्वास हो, उतना ही अविद्या आदि क्लेशों का ह्रास होता है। जो जिज्ञासु गायत्री मन्त्र का प्रेम और नियमपूर्वक उच्चारण करते हैं, उनके लिये यह संसार-सागर से तरने की नाव और आत्म-प्राप्ति की सड़क है।'

आर्य समाज के जन्मदाता स्वामी दयानन्द गायत्री के महान् उपासक थे। ग्वालियर के राजासाहब से स्वामीजी ने कहा कि भागवत सप्ताह की अपेक्षा गायत्री पुरश्चरण अधिक श्रेष्ठ है। जयपुर में सच्चिदानन्द, हीरालाल रावल, घोड़लसिंह आदि को गायत्री जप की विधि सिखलाई थी। मुल्तान में उपदेश के समय स्वामीजी ने गायत्री मंत्र का उच्चारण किया और कहा कि यह मन्त्र सबसे श्रेष्ठ है। चारों वेदों का मूल यही गुरुमन्त्र है। आदिकाल से सभी ऋषि- मुनि इसी का जप किया करते थे। स्वामीजी ने कई स्थानों पर गायत्री अनुष्ठानों का आयोजन कराया था, जिसमें चालीस तक की संख्या में विद्वान् ब्राह्मण बुलाये गये थे। यह जप १५ दिन तक चला था।

थियोसोफिकल सोसाइटी के एक सीनियर सदस्य श्री. आर. श्रीनिवास का कथन है—'हिन्दू धार्मिक विचारधारा में गायत्री को सबसे अधिक शक्तिशाली मन्त्र माना गया है। उसका अर्थ भी बड़ा दूरगामी और गूढ़ है। इस मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार की चित्तवृत्ति वाले व्यक्तियों पर इसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। इसमें दृष्ट और अदृष्ट, तत्त्व और जीव, आत्मा और देव सम्बन्धी किसी सूक्ष्मतम तन्तु द्वारा एकत्रित कर देने की शक्ति पाई जाती है। जब इस मन्त्र का अधिकारी व्यक्ति गायत्री के अर्थ और रहस्य, मन और हृदय को एकाग्र करके उसका शुद्ध उच्चारण करता है, तब उसका सम्बन्ध इसके सूर्य में अन्तर्निहित

महान् दैविक शक्ति से स्थापित हो जाता है। यह मनुष्य कहीं भी कर्त्तव्यपालन करता हो, पर उसके ऊपर तथा आस-पास के वातावरण में विराट् 'आध्यात्मिक प्रभाव' उत्पन्न हो जाता है। यही प्रभाव एक महान् आध्यात्मिक आशीर्वाद है। इन्हीं कारणों से हमारे पूर्वजों ने गायत्री मन्त्र की अनुपम शक्ति के लिये उसकी स्तुतियाँ की हैं।'

इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के अनेकों लब्धप्रतिष्ठ बुद्धिवादी महापुरुषों के अभिमत इसके पक्ष संगृहीत हैं। इन पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री उपासना कोई अन्धविश्वास, अन्ध परम्परा नहीं है; वरन् उसके पीछे आत्मोन्नति करने वाले ठोस तत्त्वों का बल है। इस महान् शक्ति को अपनाने का जिसने भी प्रयत्न किया है, उसे लाभ मिला है। गायत्री साधना कभी निष्फल नहीं जाती।

गायत्री साधना से सतोगुणी सिद्धियाँ

प्राचीन इतिहास, पुराणों से पता चलता है कि पूर्व युगों में प्रायः सभी ऋषि-महर्षि गायत्री के आधार पर योग-साधना तथा तपश्चर्या करते थे। वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विश्वामित्र, व्यास, शुकदेव, दधीचि, वाल्मीकि, च्यवन, शंख, लोमश, जाबालि, उद्दालक, वैशम्पायन, दुर्वासा, परशुराम, पुलस्त्य, दत्तात्रेय, अगस्त्य, सनत्कुमार, कण्व, शौनक आदि ऋषियों के जीवन वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि उनकी महान् सफलताओं का मूल हेतु गायत्री ही थी।

थोड़े ही समय पूर्व ऐसे अनेक महात्मा हुए हैं, जिन्होंने गायत्री का आश्रय लेकर अपने आत्मबल एवं ब्रह्मतेज को प्रकाशवान् किया था। उनके इष्टदेव, आदर्श, सिद्धान्त भिन्न भले ही रहे हों, वेदमाता के प्रति सभी की अनन्य श्रद्धा थी। उन्होंने प्रारम्भिक रक्त पान इसी महाशक्ति का किया था, जिससे वे इतने अधिक समर्थ पहलवान बन सके।

शंकराचार्य, समर्थ गुरु रामदास, नरसी मेहता, दादूदयाल, संत ज्ञानेश्वर, स्वामी रामानन्द, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, हरिदास, तुलसीदास, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, योगी अरविन्द, महर्षि रमण, गौरांग महाप्रभु, स्वामी दयानन्द, महात्मा शुकदेवानन्द आदि अनेक महात्माओं का विकास गायत्री महाशक्ति के अञ्चल में ही हुआ था।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'माधव निदान' के रचयिता श्री माधवाचार्य ने आरम्भ में १३ वर्षों तक वृन्दावन में रहकर गायत्री अनुष्ठान किये थे। जब उन्हें कुछ भी सफलता न मिली, तो वे निराश होकर काशी चले गये और एक अवधूत की सलाह से भैरव की तांत्रिक उपासना करने लगे। कुछ दिन में भैरव प्रसन्न हुए और पीठ पीछे से कहने लगे कि—"वर माँग।" माधवाचार्यजी ने उनसे कहा—"आप सामने आइये और दर्शन दीजिये।" भैरव ने उत्तर दिया—"मैं गायत्री उपासक के सामने नहीं आ सकता।" इस बात पर माधवाचार्य जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—"यदि आप गायत्री उपासक के सम्मुख प्रकट नहीं हो सकते, तो मुझे वरदान क्या देंगे? कृपया अब आप केवल यह बता दीजिये कि मेरी अब तक की गायत्री साधना क्यों निष्फल हुई?" भैरव ने उत्तर दिया—"तुम्हारे पूर्व जन्मों के पाप नाश करने में अब तक की साधना लग गयी। अब तुम्हारी आत्मा निष्पाप हो गयी। आगे की साधना करोगे, सफल होगे।" यह सुनकर माधवाचार्य फिर वृन्दावन आये और पुनः गायत्री साधना आरम्भ कर दी। अन्त में उन्हें माता के दर्शन हुए और पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुई।

श्री महात्मा देवगिरि जी के गुरु हिमालय की एक गुफा में गायत्री का जप करते थे। उनकी आयु ४०० वर्ष से अधिक थी। वे अपने आसन से उठकर भोजन, जल, स्नान या मल-मूत्र त्यागने तक को कहीं नहीं जाते थे। इन कामों की उन्हें आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी।

जगराँव के पास सम्पटेवाली के घने जंगल में एक हरिहर नाम के महात्मा ने गायत्री तप करके सिद्धि पाई थी। महात्माजी की कुटी के पास जाने में सात कोस का घना जंगल पड़ता था। उसमें सैकड़ों सिंह, व्याघ्र रहते थे। कोई व्यक्ति महात्माजी के दर्शनों को जाता, तो उसे दो चार व्याघ्रों से भेंट अवश्य होती। 'हरिहर बाबा के दर्शन को जा रहे हैं' इतना कह देने मात्र से हिंसक पशु रास्ता छोड़कर चले जाते थे।

लक्ष्मणगढ़ में विश्वनाथ गोस्वामी नामक एक प्रसिद्ध गायत्री उपासक हुए हैं। उनके जीवन का अधिकांश

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

भाग गायत्री उपासना में ही व्यतीत हुआ है। उनके आशीर्वाद से जोधपुर का एक मोटरचालक परिवार गरीबी से छुटकारा पाकर बड़ा ही समृद्धिशाली एवं सम्पन्न बना। इस परिवार के लोग अब तक उन पण्डितजी की समाधि पर अपने बच्चों का मुण्डन कराते हैं।

जयपुर रियासत के जोबनेर ग्राम में पं. हरराय नामक वैदिक गायत्री उपासक रहते थे। उनको अपनी मृत्यु का पहले से ही पता चल गया था। उन्होंने सब परिजनों को बुलाकर धार्मिक उपदेश दिये और बोलते, बातचीत करते तथा गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिये।

जूनागढ़ के एक विद्वान् पं. मणिशंकर भट्ट पहले यजमानों के लिये गायत्री अनुष्ठान दक्षिणा लेकर करते थे। जब उन्होंने औरों को इससे भारी लाभ होते देखा, तो उन्होंने अपना सारा जीवन गायत्री उपासना में लगा दिया। दूसरों के अनुष्ठान छोड़ दिये, उनका शेष जीवन बहुत ही शान्ति से बीता।

जयपुर के बूढ़ादेवल ग्राम में विष्णुदत्तजी का जन्म हुआ। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे, उन्होंने पुष्कर में एक कुटी बनाकर गायत्री की घोर तपस्या की थी, फलस्वरूप उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं। बड़े-बड़े राजा उनकी कुटी की धूल मस्तक पर रखने लगे। जयपुर और जोधपुर के महाराजा अनेक बार उनकी कुटी पर उपस्थित हुए। महाराजा उदयपुर तो अत्यन्त आग्रह करके उन्हें अपनी राजधानी में ले आये और उनके कुछ काल की स्थायी देखरेख के साथ अपने यहाँ पूर्णाहुति कराई। ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारी कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

खातोली से ७ मील दूर बीकानेरा में भगवानन्द नामक एक गायत्री सिद्ध महापुरुष रहते थे। उनके आशीर्वाद से खातोली के ठिकानेदार को उनकी छिनी हुई जागीर पोलिटिकल एजेन्ट ने वापस दी थी।

रतनगढ़ के पं. भूदरमल नामक एक विद्वान ब्राह्मण गायत्री के अनन्य उपासक हो गये हैं। वे सम्वत् १९६९ से काशी आ गये थे और अन्त तक वहीं रहे। अपनी मृत्यु की पूर्व जानकारी होने से उन्होंने विशाल धार्मिक आयोजन किया था और जप करते हुए आषाढ़ सुदी ५ को शरीर त्याग किया। उनका आशीर्वाद पाने वाले बहुत से सामान्य मनुष्य आज भी लक्षाधिपति बने हुए हैं।

अलवर राज्य के अन्तर्गत एक ग्राम के सामान्य परिवार में पैदा हुए एक ब्राह्मण को किसी कारणवश वैराग्य हो गया। वे मथुरा आये और एक टीले पर रहकर साधना करने लगे। एक करोड़ गायत्री जप किया। एक करोड़ गायत्री जप करने के अनन्तर उन्हें गायत्री का साक्षात्कार हुआ और वे सिद्ध हो गये। यह स्थान गायत्री टीले के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ एक छोटा सा मन्दिर है, जिसमें गायत्री की सुन्दर मूर्ति स्थापित है। उनका नाम बूटी सिद्ध था। सदा मौन रहते थे। उनके आशीर्वाद से अनेकों का कल्याण हुआ। धौलपुर, अलवर के राजा उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे।

आर्य समाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्दजी के गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वतीजी ने भी श्रद्धापूर्वक गंगा तीर पर रहकर तीन वर्ष तक जप किया था। इस अन्धे संन्यासी ने अपने तपोबल से अगाध विद्या और अलौकिक ब्रह्म तेज प्राप्त किया था।

मान्धाता ओंकारेश्वर मन्दिर के पीछे गुफा में एक महात्मा गायत्री जप करते थे। मृत्यु के समय उनके परिवार के व्यक्ति उपस्थित थे, परिवार के एक बालक ने प्रार्थना की कि मेरी बुद्धि मन्द है, मुझे विद्या नहीं आती, कुछ आशीर्वाद दे जाइये, जिससे मेरा दोष दूर हो जाय। महात्माजी ने बालक को समीप बुलाकर उसकी जीभ पर कमण्डलु से थोड़ा सा जल डाला और आशीर्वाद दिया कि तू पूर्ण विद्वान् हो जायेगा। आगे चलकर यह बालक असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् हुआ और इन्दौर में ओंकार जोशी के नाम से प्रसिद्ध पायी। इन्दौर नरेश उनसे इतने प्रभावित थे कि कहीं घूमने जाते समय उनके घर से उन्हें साथ ले जाते थे।

पाटेश्वर क्षेत्र निवासी गुरु सोनेश्वर श्री उद्धवजी जोशी एक सिद्ध पुरुष हो गये। गायत्री उपासना के फलस्वरूप

उनकी कुण्डलिनी जाग्रत हुई और वे परम सिद्ध बन गये। उनकी कृपा से बहुत मनुष्यों के प्राण बचे थे, कई को धन प्राप्त हुआ था, कई आपत्तियों से छूटे थे। उनकी भविष्यवाणियाँ सदा सत्य होती थीं। एक व्यक्ति ने उनकी परीक्षा करने तथा उपहास करने का दुस्साहस किया था, तो वह कोढ़ी हो गया था।

नदीहा के मधुसूदन ईश्वरी श्रीमद्भट्टानन्दजी महाराज गायत्री उपासना से परम सिद्धि प्राप्त कर गये हैं। प्रायः आठ घण्टे नित्य जप करते थे। इन्हें अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त थीं। दूर देशों के समाचार वे ऐसे सच्चे बताते थे, मानो सब कुछ आँखों से देख रहे हों। पीछे परीक्षा करने पर वे समाचार बिलकुल ठीक निकलते। उन्होंने गुजराती की एक-दो कक्षा तक पढ़ने की स्कूली शिक्षा पाई थी, तो भी वे संस्कृत एवं कई भाषाओं को भली प्रकार बोल और समझ लेते थे। विदेशी लोग उनके पास आकर अपनी भाषा में घण्टों तक वार्तालाप करते थे। योग, ज्योतिष, वैद्यक, तन्त्र तथा धर्म शास्त्र का उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। बड़े-बड़े पण्डित अपनी गुत्थियाँ सुलझाने आते थे। उन्होंने कितनों को ही ऐसी करामातें दिखाई थीं, जिससे अनेक लोगों की उन पर अटूट श्रद्धा हो गयी थी।

बरसोड़ा में एक ब्रह्मचारी ने सात वर्ष तक निराहार रहकर गायत्री पुरश्चरण किये थे। उनकी वाणी सिद्ध थी, जो कह देते थे, वही होता था।

कान्यकुब्ज के पास ओर में टोडरा गाँव में एक ब्रह्मचारी का निवास रहा है। वह ब्रह्मचारी गंगाजी के भीतर उठी हुई एक टेकरी पर रहते थे और गायत्री की आराधना करते थे। उनका ब्रह्मतेज असाधारण था। सारा शरीर तेज से दमकता था। उन्होंने अपनी सिद्धियों से अनेकों के दुःख दूर किये थे।

देव प्रयाग के विष्णुदत्त जी वानप्रस्थी ने चान्द्रायण व्रतों के साथ सवा लक्ष जप के सात अनुष्ठान किये थे। इससे उनका आत्मबल बहुत बढ़ गया था। उन्हें कितनी ही सिद्धियाँ मिल गयी थीं। लोगों को जब पता चला, तो अपने कार्य सिद्ध कराने के लिये उनके पास दूर-दूर से भी आने लगे। वानप्रस्थीजी इस खेल में उलझ गये। रोज-रोज बहुत खर्च करने से उनका संचित तपोबल चुक गया। पीछे उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और फिर कुछ मास तक एकान्त साधना करते रहे।

रुद्र प्रयाग के स्वामी निर्मलानन्द संन्यासी को गायत्री-साधना से भगवती के दिव्य-दर्शन और ईश्वर साक्षात्कार का लाभ प्राप्त हुआ था। इससे उन्हें अत्यन्त तृप्ति हुई

बिठूर के पास ब्रह्मचारी नामक एक अवधूत, गंगा के एक विशाल पिलखन के पेड़ के नीचे गायत्री साधना करते थे। एक बार उन्होंने वैशाख में गायत्री यज्ञ का ब्रह्मभोज किया। दिन भर हजारों आदमियों की पंगतें होती रहीं। रात को बड़े भोजन समाप्त हो गया। भोजन अभी कई हजार आदमियों का होना शेष था। ब्रह्मचारीजी को सूचना दी गयी, उन्होंने आज्ञा दी गंगाजी से ये चार कनस्तर पानी भरकर लाओ और उससे पूड़ियाँ सिकने दो। ऐसा ही किया गया। पूड़ियाँ घी के समान स्वादिष्ट थीं। दूसरे दिन चार कनस्तर घी मँगवाकर गंगाजी में डलवा दिया।

काशी में जिस समय बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त द्वारा 'भारत माता' के मन्दिर का शिलान्यास समारोह किया गया था, उस समय १०० दिन तक का एक बड़ा यज्ञ किया गया, जिसमें विद्वानों द्वारा २० लाख गायत्री जप किया गया। यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन पास में लगे पेड़ों के सूखे पत्ते हरे हो गये थे और एक पेड़ में तो असमय ही फल भी आ गये थे। इस अवसर पर पं. मदनमोहन जी मालवीय, राजा मोतीचन्द, हाई कोर्ट के जज श्री कन्हैयालाल और अन्य अनेक सम्मान्य व्यक्ति उपस्थित थे, जिन्होंने यह घटना अपनी आँखों से देखी और गायत्री के प्रभाव को स्पष्ट अनुभव किया।

गढ़वाल के महात्मा गोविन्दानन्द अवधूत विषधर साँपों के काटे हुए रोगियों की प्राण रक्षा करने के लिये

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

प्रसिद्ध थे। उनका कहना था कि मैं गायत्री जप से ही सब रोगियों को ठीक करता हूँ। इसी प्रकार समस्तीपुर के एक सम्पन्न व्यक्ति श्रीमान साहू भी गायत्री मन्त्र से अगणित व्यक्तियों बिच्छुओं और पागल कुत्ते के काटे तक को चंगा कर देते थे। अनेक धार्मिक साधक केवल गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा बड़े-बड़े रोगों को दूर कर देते हैं।

स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजी नेहरू का जीवन उस समय के वातावरण के कारण यद्यपि एक भिन्न कार्यक्षेत्र में व्यतीत हुआ था, पर जीवन के अन्तिम समय में उनको गायत्री का ध्यान आया और उसे जपते हुए ही उन्होंने जीवनलीला समाप्त की। इससे विदित होता है कि गायत्री का संस्कार शीघ्र ही समाप्त नहीं हो जाता, वरन् आगामी पीढ़ियों तक भी चमत्कार दिखाता रहता है। पण्डितजी के पूर्वज धार्मिक प्रकृति के गायत्री-उपासक थे और उसके प्रभाव से उनको भी मृत्यु-काल जैसे महत्व के अवसर पर उसका ध्यान आ गया।

अहमदाबाद के श्री आशाभाई रामचन्द्र मेहता गायत्री के अद्भुत उपासक और प्रचारक हैं। इनकी आयु ८० वर्ष है। शरीर और मन में सतोगुण की अधिकता होने से वे सभी गुण उनमें परिलक्षित होते हैं, जो महात्माओं में पाये जाते हैं।

रोहतक के स्वामी ओंकारदासजी ने गायत्री के कई पुरश्चरण किये हैं। उनका कहना है कि इस महासाधना से मुझे इतना अधिक लाभ हुआ है कि उसे प्रकट करने की उसी प्रकार इच्छा नहीं होती, जैसे कि लोभी को अपना धन प्रकट करने में संकोच होता है।

इटावा के श्री रोशनचन्द दुबे को गायत्री साधना के कारण कई बार बड़े अनुभव हुए हैं, जिनके कारण उनकी निष्ठा में वृद्धि हुई है।

पाटन के श्री जटाशंकर नन्दी की आयु ७० वर्ष से अधिक है। वे गत पचास वर्षों से गायत्री उपासना कर रहे हैं। दुर्भिक्षों और कुसमयों से मुक्ति एवं दैवी शक्तियों की अधिकता का लाभ उन्होंने प्राप्त किया है और इसे वे जीवन की प्रधान सफलता मानते हैं।

वृन्दावन के कठिया बाबा, उड़िया बाबा, प्रज्ञा चक्षु स्वामी गंगेश्वरानन्द जी गायत्री उपासना से आरम्भ करके अपनी साधना को आगे बढ़ाने में समर्थ हुए थे। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रायः सभी आचार्य गायत्री की साधना पर विशेष जोर देते हैं।

जलालगंज के पण्डित रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी, सहारनपुर जिले के सोहनस्वामी देवदर्शनजी, बुलन्दशहर, उ०प्र० के परिव्राजक महात्मा योगानन्दजी, ब्रह्मनिष्ठ श्रीस्वामी ब्रह्मर्षिदासजी उदासीन, बिहार प्रान्त के महात्मा अनाशक्तजी, महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ शास्त्री, राजगृह के महात्मा हरि ॐ तत् सत् आदि कितने ही सन्त- महात्मा गायत्री उपासना में पूर्ण मनोयोग के साथ संलग्न हैं। अनेक गृहस्थ भी तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए महान् साधना में प्रवृत्त हैं। इस मार्ग पर चलते हुए उन्हें महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सफलताएँ प्राप्त हो रही हैं।

हमने स्वयं अपने जीवन के आरम्भ काल से ही गायत्री की उपासना की है और वह हमारा जीवन आधार ही बन गयी है। रोगों, चिन्ताओं, कष्ट-आपत्तियों, कुविचार और कुसंस्कारों को हटा देने में जो थोड़ी-सी सफलता मिली है, वह सब इसी साधना की है। ब्रह्मचर्य की कड़ी भावनाओं की, धर्मपरायणता की, सेवा, स्वाध्याय, संयम और सदाचार की जो यत्किंचित् प्रवृत्तियाँ हैं, वे माता की कृपा के कारण हैं। अनेक बार विपत्तियों से उसने बचाया है और अन्धकार में मार्ग दिखाया है। अब भी इन घटनाओं का वर्णन बहुत विस्तृत है, जिसके कारण हमारी श्रद्धा दिन-दिन माता के चरणों में बढ़ती चली आती है। इन पंक्तियों के लिखने का यह प्रसंग नहीं है। हमारे प्रयत्न और प्रोत्साहन से जिन सज्जनों ने वेदमाता की उपासना की है, उनमें आत्म-शुद्धि, पापों से घृणा,

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

अन्तःकरण में श्रद्धा, सतोगुण की वृद्धि, संयम, पवित्रता, आस्तिकता, आत्मकल्याण एवं धर्मपरायणता की प्रवृत्तियों को बढ़ते हुए पाया है। उन्हें अन्य सांसारिक लाभ चाहे हुए हों या न हुए हों; पर आत्मिक लाभ तो एक को निश्चित रूप से हुए हैं। विवेकपूर्वक विचार किया जाय, तो यह लाभ इतने महान् हैं कि इनके ऊपर धन-सम्पत्ति की छोटी-मोटी सफलताओं को न्यौछावर करके फेंका जा सकता है।

इसलिए हम अपने पाठकों से आग्रहपूर्वक अनुरोध करेंगे कि वे गायत्री की उपासना करके उसके द्वारा होने वाले लाभों का चमत्कार देखें। जो वेदमाता की शरण ग्रहण करते हैं, अन्तःकरण में सतोगुण, विवेक, सद्विचार और सत्कर्मों की ओर उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति जाग्रत् होती है। यह आत्मिक आकर्षण लौकिक और पारलौकिक, सामाजिक और आर्थिक सभी प्रकार की सफलताओं का मूल है।

गायत्री साधना से श्री, समृद्धि और सफलता

गायत्री त्रिगुणात्मक है। उसकी उपासना से जहाँ सतोगुण बढ़ता है, वहाँ कल्याणकारक एवं उपयोगी रजोगुण की भी अभिवृद्धि होती है।

रजोगुणी आत्मबल बढ़ने से मनुष्य की गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं, जो सांसारिक जीवन के संघर्ष में अनुकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं। उत्साह, साहस, स्फूर्ति, निरालस्यता, आशा, दूरदर्शिता, तीव्र बुद्धि, अवसर की पहचान, वाणी में माधुर्य, व्यक्तित्व में आकर्षण, स्वभाव में मिलनसारी जैसी अनेक छोटी-बड़ी विशेषताएँ उन्नत तथा विकसित होती हैं, जिनके कारण 'श्री' तत्त्व का उपासक भीतर ही भीतर एक नये पुरुष में बदलता रहता है, उसमें ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनके कारण साधारण व्यक्ति भी धनी-समृद्ध हो सकता है।

गायत्री उपासकों में ऐसी त्रुटियाँ जो मनुष्य को दुःखी बनाती हैं, नष्ट होकर वे विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण मनुष्य सम्पत्ति, समृद्धि, सम्पन्नता और उन्नति की ओर अग्रसर होता है। गायत्री अपने साधकों की झोली में सोने की अशर्फियाँ नहीं उड़ेलती, यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि वह साधक में उन विशेषताओं को उत्पन्न करती है, जिनके कारण वह अभावग्रस्त और दीन-हीन नहीं रह सकता। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हमारी जानकारी में हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

ग्राम दरई जिला छिन्दवाड़ा के पं. भूरेलाल ब्रह्मचारी लिखते हैं- 'रोजी में उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण मैं धन-धान्य से परिपूर्ण हूँ। जिस कार्य में हाथ डालता हूँ, उसी में सफलता मिलती है। अनेक तरह के झगड़ों का निबटारा आप ही आप हो जाता है, इतना तो अनुभव मैंने खुद का गायत्री जाप करने का है।'

इटौरी के पं. लक्ष्मीकान्त झा व्याकरण, साहित्याचार्य लिखते हैं- 'बचपन से ही मुझे गायत्री पर श्रद्धा हो गयी थी और उसी समय से एक हजार जप नित्य करता हूँ। इसी के फल से मैंने साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न तथा वेद-शास्त्री आदि परीक्षायें उत्तीर्ण कीं तथा संस्कृत कालेज इटौरी का प्रिन्सीपल बना। मैंने एक सेठ के १६ वर्षीय मरणासन्न पुत्र के प्राण गायत्री जप के प्रभाव से बचते हुए देखे हैं, जिससे मेरी श्रद्धा और भी दृढ़ हो गयी है।'

वृन्दावन के पं. तुलसीराम शर्मा लिखते हैं - 'लगभग दस वर्ष हुए होंगे, मोतीझील वाला की बेल्ला के डालराम निवासी लाला गणेशीलाल ने मेरे द्वारा कर्मकाण्ड में २४ लक्ष गायत्री का अनुष्ठान कराया था। उसी समय से गणेशीलाल जी की आर्थिक दशा दिन-दिन ऊँची उठती गयी और अब उनकी प्रतिष्ठा- सम्पन्नता अब भी मौजूद है।'

प्रतापगढ़ के पं. सत्यनारायण शर्मा लिखते हैं—'मैंने एक विकट कठिनाई के अवसर में एक महात्मा से धन प्राप्ति का उपाय पूछा। महात्मा ने उपदेश दिया कि प्रातःकाल चार बजे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर स्नान-

सन्ध्या के बाद खड़े होकर नित्य एक हजार गायत्री मन्त्र का जप किया करो। उसने ऐसा ही किया, फलस्वरूप उसका आर्थिक कष्ट दूर हो गया।"

उन्नाव जिले के शिवरतनगंज ग्राम निवासी पं. देवनारायण जी देवभाषा के असाधारण विद्वान् और गायत्री के अनन्य उपासक हैं। तीस वर्ष की आयु तक अध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। पत्नी बड़ी सुशील एवं धार्मिक मिली। विवाह के बहुत काल बीत जाने पर भी जब कोई सन्तान नहीं हुई, तो वह अपने आप को नारीत्व में अपूर्ण समझकर दुःखी रहने लगी। पण्डितजी ने उसकी इच्छा जानकर पाँच लाख जप का अनुष्ठान किया। कुछ ही दिन में उनके एक प्रतिभावान् मेधावी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आजकल देवभाषा की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करने की तैयारी कर रहा है।

प्रयाग के पास अक्बरपुर ग्राम में धर्मसिंह नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अत्यन्त निर्धन थे, पर गायत्री साधना में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। एक बार नौ दिन उपवास करके उन्होंने सप्ताह पुरश्चरण किया। पुरश्चरण के अन्तिम दिन अर्धरात्रि को भगवती गायत्री ने उन्हें दिव्य स्वप्न में दर्शन दिया और कहा, तुम्हारे इस घर में अमुक स्थान पर अशर्फियों से भरा घड़ा गड़ा है, उसे निकालकर अपनी दरिद्रता दूर करो। पण्डितजी ने घड़ा निकाला और वे निर्धन से धनवान हो गये।

इन्दौर निवासी पण्डित रामचन्द्रजी ने बताया है कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ लड़ाई झगड़ा करता रहता था। थोड़े दिन तक गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से उसका स्वभाव बदल गया और इन दोनों में उत्तरोत्तर स्नेह बढ़ता गया।

बड़ौदा के वकील रामचन्द्र काशीशंकर पाठक आरम्भ में १०) रुपये मासिक की एक छोटी नौकरी करते थे। उस समय उन्होंने एक गायत्री पुरश्चरण किया, तब से उनकी रुचि विद्याध्ययन में लगी और धीरे-धीरे प्रसिद्ध कानूनदां हो गये। उनकी मासिक आमदनी करीब ५००) रुपये तक है।

मडुआ (काठियावाड़) के रामशंकरलाल भाई का कथन है कि एक मनुष्य का लड़का मैट्रिक में दो बार फेल हो चुका था, अन्त में उसने दुःखी होकर गायत्री का जप कराया, इस वर्ष उसका लड़का अच्छे नम्बरों से पास हुआ।

गुजरात के मधुसूदन स्वामी का नाम संन्यास लेने के पहले मायाशंकर दयाशंकर पण्ड्या था, वे सिद्धपुर में रहते थे। आरम्भ में वे २५) मासिक के नौकर थे। उन्होंने ५१ दिन एक हजार गायत्री जप से आरम्भ करके चार हजार तक बढ़ाया। फलस्वरूप उनकी भाग्यवृद्धि हुई। वे बड़ौदा राज्य रेलवे के असिस्टेण्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट के ओहदे तक पहुँचे, उस समय उनका वेतन तीन सौ रुपया मासिक था। उत्तरावस्था में उन्होंने संन्यास ले लिया था।

माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिका लिखने वाले विद्वान् श्री गौड़पाद का जन्म उनके पिता के उपवास पूर्वक बहुत दिन तक गायत्री जप करने के फलस्वरूप हुआ था।

प्रसिद्ध साहित्यकार पं. द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी पहले इलाहाबाद में सिविल सर्जन के हेडक्लर्क थे। उन्होंने लार्ड किचिनर का जीवन चरित लिखा, जो राजद्रोहात्मक समझा गया और नौकरी से हाथ धोना पड़ा। बड़ा कुटुम्ब और जीविका का साधन न रहा, इस अवस्था के फलस्वरूप उन्हें पुलिस रिपोर्टर का दफ्तरी कार्य मिल गया। तब से उन्होंने सर्वांग अनुष्ठान करने का अटल नियम बनाया और नित्य जप किया करते थे।

स्वर्गीय पं. बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। वे नित्य गायत्री के पाँच सौ मन्त्र जपते थे और कहा करते थे कि "गायत्री जप करने वालों को कभी कोई कमी नहीं रहती, भट्टजी सदा निरोग, धन, जन से भी पूरे रहे।"

प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय का भानजा उनके यहाँ रहकर पढ़ता था। इण्टर परीक्षा के दौरान लॉजिक के पर्चे के दिन वह बहुत दुःखी था, क्योंकि उस विषय में वह बालक कच्चा था। प्रोफेसर साहब ने उसे पेन्सिल देकर परीक्षा देने भेजा और स्वयं छुट्टी लेकर आसन जमाकर गायत्री जपने लगे, जब तक बालक लौटा तब तक बराबर जप करते रहे। बालक ने बताया, उसका वह पर्चा बहुत ही अच्छा हुआ और लिखते समय उसे लगता था मानो उसकी कलम पकड़ कर कोई लिखवाता जाता है। वह बहुत अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुआ।

इलाहाबाद के पं. रामनारायण चतुर्वेदी की नौकरी छूट गयी। बहुत तलाश करने पर भी जब कोई जगह न मिली तो उन्होंने अपने पिता के आदेशानुसार गायत्री का सवा लक्ष जप किया। समाप्त होने पर उसी मर्केन्टाइल प्रेस में पहली नौकरी की अपेक्षा डेढ़े वेतन की जगह मिल गयी, जहाँ कि पहले उन्हें निकाल ही बाहर कर दिया गया था।

कलकत्ता के श्री. मोहनलाल केजड़ीवाल आरम्भ में जोधपुर राज्य के एक गाँव में १५) रु० मासिक के अध्यापक थे। एक छोटी-सी पुस्तक से प्रभावित होकर उन्होंने गायत्री जपने का नित्य नियम बनाया। जप करते-करते अचानक उनके मन में स्फुरणा हुई कि मुझे कलकत्ता जाना चाहिये, वहाँ मेरी आर्थिक उन्नति होगी। निदान वे कलकत्ता पहुँचे। वहाँ व्यापारिक क्षेत्र में वे नौकरी करते रहे और श्रद्धापूर्वक गायत्री साधना करते रहे। रूई के व्यापार से उन्हें भारी लाभ हुआ और थोड़े ही दिन में लखपति बन गये।

मुरादाबाद के श्री महेशचन्द्र शर्मा बहुत गिरी आर्थिक स्थिति के आदमी थे। ५०) रुपये मासिक में उन्हें अपने ८ आदमियों के परिवार का गुजारा करना पड़ता था। कन्या विवाह योग्य हो गयी। अच्छे घर में विवाह करने के लिये हजारों रुपया दहेज की आवश्यकता थी। वे दुःखी रहते और गायत्री माता के चरणों में आँसू बहाते रहते। अचानक ऐसा संयोग हुआ कि एक डिप्टी कलक्टर के लड़के की बारात, कन्या पक्ष वालों से झगड़ा कर बिना ब्याह वापस लौट रही थी। डिप्टी साहब, शर्माजी को जानते थे। रास्ते में उनका गाँव पड़ता था। उन्होंने शर्माजी के पास प्रस्ताव भेजा कि अपनी कन्या का विवाह आज ही हमारे लड़के से कर दें। शर्माजी राजी हो गये। एम०ए० पास लड़का जो कर विभाग में ५००) रुपये मासिक का इन्स्पेक्टर था, उससे उनकी कन्या की शादी कुल १५०) रुपये में हो गयी।

देहरादून का कमलकुमार नामक छात्र दो वर्ष मैट्रिक में फेल हो चुका था, तीसरे वर्ष भी पास होने की आशा न थी। उसने गायत्री उपासना की और परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हुआ।

जबलपुर के बाबू श्रीरामकिशोर माहेश्वरी अन्तर्जातीय माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण जाति से बहिष्कृत थे। विवाह न होने के कारण उनका चित्त बड़ा दुःखी रहता था। गायत्री माता से अपना दुःख रोकर चित्त हल्का कर लेते थे। २८ वर्ष की आयु में उनकी शादी एक सुशिक्षित उच्च घराने की अत्यन्त रूपवती तथा सर्वगुण सम्पन्न कन्या के साथ हुई। माहेश्वरीजी के अन्य भाई बहनों की शादी भी उच्च तथा सम्पन्न परिवारों में हुई। जाति बहिष्कार के अपमान से उनका परिवार पूर्णतया मुक्त हो गया।

इटवानगर जिला मथुरा के पं. रामप्रसाद मिश्र गायत्री के अनन्य भक्त हैं। अपने से कई गुने साधन सम्पन्न विरोधियों को परास्त करके वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन चुने गये।

बहादुरपुर के राधावल्लभ तिवारी के विवाह से १६ वर्ष बीत जाने पर भी सन्तान न हुई। उन्होंने गायत्री उपासना का आश्रय लिया। फलस्वरूप उन्हें एक कन्या और एक पुत्र की प्राप्ति हुई।

प्राचीनकाल में दशरथजी को गायत्री द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करने पर और राजा दिलीप को गुरु वशिष्ठ के आश्रम में गायत्री उपासना करते हुए गो-दुग्ध का कल्प करने पर पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई थी। राजा अश्वपति ने गायत्री

नष्ट करके सन्तान चाहती थी। कुन्ती ने बिना पुरुष संयोग के गायत्री मन्त्र द्वारा सूर्य को आकर्षित करके कर्ण को उत्पन्न किया था।

दिल्ली में नई सड़क पर श्रीयुत् हरप्रसाद भट्ट नामक एक दुकानदार हैं। इनके ४५ वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई थी। उपासना से उस ढलती आयु में उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ, जो बड़ा ही सुन्दर तथा होनहार दिखाई पड़ता है।

गुरुकुल वृन्दावन के एक कार्यकर्ता मुरारी मिश्र के यहाँ १४ वर्ष से कोई बालक उत्पन्न ही नहीं था। गायत्री पुरश्चरण करने से उनके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ और वंश चलने तथा घर के किवाड़ खुले रहने की चिन्ता दूर हो गयी।

सरधने के सोहनलाल वर्मा का तीन वर्ष का होनहार बालक स्वर्गवासी हो गया। उनका घर भर बालक के वियोग से उद्विग्न था। उन्होंने गायत्री की विशेष उपासना की। दूसरे मास उनकी पत्नी ने स्वप्न में देखा कि उनका बच्चा गोद में चढ़ आया है और जैसे ही उन्होंने उसे पकड़ना चाहा कि बालक उनके पेट में घुस गया है। इस स्वप्न के नौ महीने बाद जो बालक जन्मा, वह हर बात में उसी मरे हुए बालक की प्रति-मूर्ति था। इस बच्चे को पाकर उनका शोक पूर्णतया शान्त हो गया।

बैजनाथ भाई रावजी भाई चुडासमा ने कई बार विद्वानों के द्वारा गायत्री अनुष्ठान कराये। उन्हें हर अनुष्ठान में आश्चर्यजनक लाभ हुआ। छः कन्याओं के बाद उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ। उनका पुराना बवासीर अच्छा हुआ और व्यापार में इतना लाभ हुआ, जितना कि इससे पहले उन्हें कभी नहीं हुआ था।

होटी बाजार के पं. कृष्ण मिश्र का कथन है कि हमारे पिताजी पं. देवीप्रसादजी एक गायत्री उपासक महात्मा के शिष्य थे। पिताजी की आर्थिक स्थिति खराब थी। उनको दुःखी देखकर महात्माजी ने उन्हें गायत्री उपासना बताई। फलस्वरूप खेती में भारी लाभ होने लगा। छोटी-सी खेती की विशुद्ध आमदनी से अब उनकी हालत बहुत अच्छी हो गयी है और नकद का २० हजार रुपया बैंक में जमा हो गया है।

गुजरात के ईडर रियासत के निवासी पं. गौरीशंकर रेवाशंकर याज्ञिक ने १५ वर्ष की आयु से गायत्री-उपासना आरम्भ कर दी थी और छोटी आयु में ही गायत्री के २४-२४ लक्ष के तीन पुरश्चरण किये थे। इसके फल से विद्या, ज्ञान तथा अन्य शुभ-संस्कारों की इतनी वृद्धि हुई कि वे जहाँ गये, वहीं इनका आदर-सम्मान हुआ, सफलता प्राप्त हुई। इनके पूर्वज पुरा में एक पाठशाला चलाते थे, जिसमें विद्यार्थियों को उच्चकोटि की धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। गौरीशंकरजी ने इस पाठशाला को अपने घर पर ही चलाना आरम्भ किया और विद्यार्थियों को गायत्री उपासना का उपदेश देने लगे। इन्होंने यह नियम बना दिया कि जो असहाय विद्यार्थी अपने भोजन की व्यवस्था स्वयं न कर सके, उनको एक हजार गायत्री जप प्रतिदिन करने पर पाठशाला की तरफ से ही भोजन मिला करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरा के ब्राह्मणों में इनका घराना गुरु-गृह के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जबलपुर के रामेश्वरनाथ शर्मा के घर में आये दिन बीमारियाँ पकड़ती थीं। उनकी आमदनी का एक बड़ा भाग वैद्य, डॉक्टरों के घर में चला जाता था। जब से उन्होंने गायत्री उपासना आरम्भ की, उनके घर से बीमारी पूर्णतया विदा हो गयी।

सीकर के श्रीनिवास भगवान् जी सोमानी कोलैटिस से बहुत बीमार पड़े थे। उनके चाचे, फतेहपुर के शिवदत्तजी साह ने उन्हें गायत्री का मानसिक जप करने की सलाह दी, क्योंकि वे अपने पारिवारिक कलह तथा ग्रहों की अशान्ति से छुटकारा प्राप्त कर चुके थे। सोमानी जी की बीमारी इतनी भयानक हो चुकी थी कि डॉक्टर विलौचिया जैसे सर्जन को कहना पड़ा कि पसली की तीन हड्डियाँ निकलवा दी जायें, तो ठीक होने की सम्भावना

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

है, अन्यथा पन्द्रह दिन में हालत काबू से बाहर हो जायेगी। ऐसी भयंकर स्थिति में [illegible] जी ने गायत्री माता का आँचल पकड़ा और पूर्ण स्वस्थ होकर अब वे [illegible] में अच्छा [illegible] कर रहे हैं।

[illegible] के [illegible] जी ने अपनी पुस्तक '[illegible]' के पृष्ठ १६७ पर लिखा है कि [illegible] कोढ़ [illegible] मन से [illegible] को अच्छा कर देते हैं।

सेठ [illegible] निवासी श्री [illegible] को तीस वर्ष की पुरानी [illegible] व्याधि थी और बड़ी-बड़ी दवाएँ करा लेने पर भी आराम न हुई थी, गायत्री उपासना द्वारा उनका रोग [illegible] अच्छा हो गया।

इस प्रकार के अगणित उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं, जिनमें गायत्री-उपासना द्वारा [illegible] लाभान्वित हुए हैं।

गायत्री साधना से आपत्तियों का निवारण

विपरीत परिस्थितियों का प्रवाह बड़ा प्रबल होता है। उसके थपेड़े में जो फँस गया, वह विपत्ति की ओर बढ़ता ही जाता है। बीमारी, धन हानि, मुकदमा, शत्रुता, बेकारी, गृह कलह, विवाद, कर्ज आदि की श्रृंखला जब चल पड़ती है, तो मनुष्य हैरान हो जाता है। कहावत है कि विपत्ति अकेली नहीं आती, वह हमेशा अपने बाल-बच्चे साथ लाती है। एक मुसीबत आने पर उसके साथ और भी कई कठिनाइयाँ उठी चली आती हैं। चारों ओर से घिरा हुआ मनुष्य अपने को चक्रव्यूह में फँसा-सा अनुभव करता है। ऐसे विकट समय में जो लोग निराशा, चिन्ता, भय, निरुत्साह, घबराहट, किंकर्तव्यविमूढ़ता से ग्रस्त होकर आशा-धैर्य छोड़ देते हैं, रोने-कलपने में लगे रहते हैं, वे अधिक समय तक अधिक मात्रा में कष्ट भोगते हैं।

विपत्ति और विपरीत परिस्थितियों की धारा से पार पाने के लिये धैर्य, साहस, विवेक और प्रयत्न की आवश्यकता है। इन चारों पतवारों द्वारा ही संकट की नदी को पार करना सुगम होता है। गायत्री की साधना आपत्ति के समय इन चारों तत्त्वों को मनुष्य के अन्तःकरण में विशेष रूप से प्रोत्साहित करती है, जिससे वह ऐसा ठीक मार्ग ढूँढ़ने में समर्थ हो जाता है, जो उसे विपत्ति से पार लगा दे।

आपत्तियों में फँसे हुए अनेकों व्यक्ति गायत्री की कृपा से किस प्रकार पार हुए, उसके कुछ उदाहरण हमारी जानकारी में इस प्रकार हैं—

प्रोफेसर बम्बई के श्री [illegible] जी गायत्री की कृपा से गत साम्प्रदायिक दंगों के दिनों में मुस्लिम बस्तियों से निर्भय होकर निकलते रहते थे। उनकी पुत्री को एकबार भयंकर हैजा हुआ। वह भी उसी के अनुग्रह से शान्त हुआ। एक महत्त्वपूर्ण मुकदमे में भी अनुकूल फैसला हुआ।

इन्दौर, [illegible] के पं. अमरसिंह एक ऐसी जगह बीमार पड़े, जहाँ की जलवायु बड़ी खराब थी और जहाँ कोई चिकित्सक खोजे न मिलता था। उस भयंकर बीमारी में गायत्री [illegible] से उन्होंने औषधि [illegible] और अच्छे हो गये।

बम्बई के पं. रामनाथ शर्मा जब गायत्री अनुष्ठान कर रहे थे, उन्हीं दिनों उनके माता-पिता सख्त बीमार हुए। किन्तु अनुष्ठान के प्रभाव से उनका बाल भी बाँका न हुआ, दोनों ही नीरोग हो गये।

इलाहाबाद के डॉक्टर रामनारायण जी भटनागर को उनकी स्वर्गीया पत्नी ने स्वप्न में दर्शन देकर गायत्री जप करने की शिक्षा दी थी, तब से वे बराबर इस साधना को कर रहे हैं। चिकित्सा-क्षेत्र में उनके हाथ में ऐसा यश आया है कि बड़े-बड़े कष्टसाध्य रोगी उनकी चिकित्सा से अच्छे हुए हैं।

Disclaimer / Warning: [illegible]

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org

कनकुआ जि० हमीरपुर के लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव बी.ए., एल.एल.बी. की धर्मपत्नी प्रसवकाल में अत्यन्त कष्ट पीड़ित हुआ करती थीं, गायत्री उपासना से उनका कष्ट बहुत कम हो गया। एक बार उनका लड़का मोतीझरा से पीड़ित हुआ। बेहोशी और चीखने की दशा को देखकर सब लोग बड़े दुःखी थे। वकील साहब की गायत्री उपासना के द्वारा बालक को गहरी नींद आ गयी और वह थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गया।

जबलपुर के डा. रामस्वरूपसिंहजी वैद्य की धर्मपत्नी को दो वर्ष से संग्रहणी की बीमारी थी। अनेक प्रकार से चिकित्सा कराने पर भी जब लाभ न हुआ, तो गायत्री जप का अनुष्ठान किया गया। फलस्वरूप वह पूर्ण स्वस्थ हो गयीं और उनके एक पुत्र पैदा हुआ।

खण्डवाबाद, निमाड़ के श्रीशंकरलाल व्यास का बालक इतना बीमार था कि डॉक्टर, वैद्यों ने आशा छोड़ दी। तब केवल गायत्री जप के प्रभाव से वह अच्छा हुआ। एक बार व्यास जी मार्ग भूलकर रात के समय ऐसे पहाड़ी बीहड़ जंगल में फँस गये, जहाँ हिंसक जानवर चारों ओर शोर करते हुए घूम रहे थे। इस संकट के समय में उन्होंने गायत्री का ध्यान किया और उनके प्राण बच गये।

बिलरिया, आज़मगढ़ के श्री कृष्णराम आर्य एक अभियोग में जेल भेज दिये गये। छूटने के लिये वे जेल में जप करते रहते थे। वे अचानक जेल से छूट गये और मुकदमे में निर्दोष बरी हो गये।

मुरादाबाद के श्रीजगदीशनारायण मिश्र कक्षा १० की पढ़ाई में पारिवारिक कठिनाइयों के कारण ध्यान न दे सके। परीक्षा के २५ दिन रह गये, तब उन्होंने पढ़ना और गायत्री का जप करना आरम्भ किया। उत्तीर्ण होने की आशा न थी, फिर भी उन्हें सफलता मिली। विपक्षी के चतुर शत्रुओं के ऐसे कुचक्र में फँस गये कि जेल जाना पड़ता। गायत्री अनुष्ठान के कारण वे इस आपत्ति से बच गये।

आगरा के पं. शास्त्री का कथन है कि उनके दादा पं. कन्हैयालाल गायत्री के उपासक थे। बचपन में शास्त्रीजी अपने दादा के साथ रात के समय कुएँ पर पानी लेने गये। उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक भयंकर प्रेत आत्मा है, जो कभी बैल बनकर, कभी सूअर बनकर उन पर आक्रमण करना चाहती है। वह कभी मुख से, कभी सिर से भयंकर अग्नि ज्वालायें फेंकता रहा और कभी मनुष्य, कभी हिंसक जन्तु बनकर एक-डेढ़ घण्टे तक पथोत्पात करता रहा। दादा ने मुझे डरा हुआ देखकर समझाया कि, बेटा हम गायत्री उपासक हैं, यह प्रेत आत्मा हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अन्त में वे दोनों सकुशल घर चले गये, प्रेत का क्रोध असफल रहा।

"सनाढ्य-जीवन" इटावा के सम्पादक पं. प्रभुदयाल शर्मा का कथन है कि उनकी पुत्रवधू तथा नातियों को कोई दुष्ट प्रेतात्मा लग गयी थी। हाथ, पैर और मस्तक में भारी पीड़ा होती थी और बेहोशी आ जाती थी। रोग-मुक्ति के अन्य सब प्रयत्न असफल हुए, तो गायत्री का आश्रय लेने से यह बाधा दूर हुई। इसी प्रकार शर्माजी का भतीजा भी मृत्यु के मुख में अटका था। उसे गोदी में लेकर गायत्री का जप किया गया, बालक अच्छा हो गया।

शर्माजी के चाचा जी रामपुर (पटना) गये हुए थे। वहाँ वे प्रातः के समय गायत्री का जप कर रहे थे कि अकस्मात उनके कान में जोर से शब्द हुआ कि—"जल्दी निकल - भाग, यह मकान अभी गिरता है।" वे खिड़की से कूद कर भागे। मुश्किल से चार-छः कदम गये होंगे कि मकान गिर पड़ा और वे बाल-बाल बच गये।

सीतापुर के श्रीलालचन्द गुप्त बचपन से ही पिता की और किशोरावस्था में माता की मृत्यु हो जाने से कुसंग में पड़कर अनेक बुरी आदतों में फँस गये थे। दोस्तों की चौकड़ी दिनभर जमी रहती और ताश, शतरंज, गाना-बजाना, वेश्या नृत्य, सिगरेट, शराब, जुआ, व्यभिचार, नाच, तमाशा, सैर-सपाटा, भोजन पार्टी आदि के दौर चलते रहते। इसी कुमार्ग में थोड़े वर्षों में पैतृक जायदाद, जेवर, मकान और बीस हजार की जायदाद स्वाहा हो गयी। जब कुछ न रहा, तो जुए के अड्डे, व्यभिचार की दलाली, चोरी, जेबकटी, लूट, धोखेबाजी आदि की नई-नई तरकीबें निकालकर एक छोटे गिरोह के साथ अपना गुजारा करने लगे। इसी स्थिति में इनका चित्त बड़ा अशान्त रहता।

एक दिन एक महात्मा ने इन्हें गायत्री का उपदेश दिया। उनकी श्रद्धा जम गयी। धीरे-धीरे उनके विचारों की शुद्धि हुई। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की भावना बढ़ने से उन्होंने चान्द्रायण व्रत, तीर्थ, अनुष्ठान और प्रायश्चित्त किये। अब वे एक दुकान करके अपना गुजारा करते हैं और पुरानी बुरी आदतों से मुक्त हैं।

गाजीपुर के ठा० अंगदसिंह रईस एक डकैती के केस में फँस गये थे। जेल में गायत्री का जप करते रहते थे। मुकदमे में निर्दोष हो छुटकारा पाया।

अम्बाला के श्री बलदेवप्रसाद माहेश्वरी का लड़का कुसंग में पड़कर ऐसी बुरी आदतों का शिकार हो गया था, जिससे उनके प्रतिष्ठित परिवार पर कलंक के छींटे पड़ते थे। माहेश्वरीजी ने दुःखी होकर गायत्री की शरण ली। इस उपासना के प्रभाव से लड़के की मति पलटी और अशान्त परिवार में शान्त वातावरण उत्पन्न हो गया।

टीक के श्री शिवनारायण श्रीवास्तव के पिताजी के मरने पर जमींदारी की दो हजार रुपये सालाना आमदनी पर गुजारा करने वाले १४ व्यक्ति रह गये। आमदनी थोड़ी न काफी, पर खर्च उस बढ़ते और उत्तरोत्तर ऐसे बढ़ते। विवाह कर था, पर कोई फूट और कलह की आग जल गयी। कोर्ट और मुकदमेबाजी के आसार खड़े हो गये। श्री श्रीवास्तवजी को इससे बड़ा दुःख होता, क्योंकि वे पिताजी के उत्तराधिकारी गृहपति थे। दुःखी होकर एक महात्मा के आदेशानुसार उन्होंने गायत्री जप आरम्भ किया। थोड़े ही दिन बाद घर में सुलह हुई। सब लोग मिलकर अपना अपना काम करने लगे। झगड़े शान्त हुए। उजड़ता हुआ घर बिगड़ने से बच गया।

आगरा के श्री तोताराम वैश्य के भतीजे की स्त्री को भूत बाधा सताती रहती थी। बहुत कुछ कराया, पर सब असफल हो चुके थे। स्त्री दिन-दिन घुलती जाती थी। एक दिन बेहोशी की दशा में उसके पिता जी ने कहा—"बेटा गायत्री का जप कर, सब परेशानी दूर हो जायेगी।" दूसरे दिन से उन्होंने वैसा ही किया। फलस्वरूप उपद्रव शान्त हो गये और स्त्री नीरोग हो गयी। उसकी कन्या की शादी भी इस गायत्री जप द्वारा धूमधाम से पूरी हुई।

बरेली के डॉ. भगवान् स्वरूप की स्त्री जो टेस्ट कक्षा में पहुँच गयी थी, उसकी प्राण रक्षा भी एक गायत्री उपासक के प्रयत्न से हुई।

सिंहोली के ठाकुर उमाशंकर खाँ के परिवार से गाँव के बड़े परिवार की पुश्तैनी दुश्मनी थी। इस दुश्मनी के कारण कई बार खूनी झगड़े हो चुके थे और बड़े-बड़े नुकसान हुए थे। सदा ही जान-जोखिम का अन्देशा रहता था। खाँ जी ने गायत्री जाप का मार्ग अपनाया। उनके मधुर व्यवहार ने अपने परिवार को शान्त स्वभाव और गाँव को राम बना दिया। अब पुराना बैर समाप्त होकर नई सद्भावना उत्पन्न हुई है। सब लोग बड़े प्रेम से रहते हैं।

रायपुर के श्री गोकुलचन्द सक्सेना रेलवे के लोको दफ्तर में कर्मचारी थे। इनके दफ्तर में ऊँचे ओहदे के कर्मचारी इनसे द्वेष करते थे और षड्यन्त्र करके इनकी नौकरी छुड़ाना चाहते थे। उनके अनेक प्रयत्न विफल हुए। सक्सेनाजी का विश्वास है कि गायत्री उनकी रक्षा करती है और उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

बम्बई के श्री सच्चिदानन्द बटोहिया व्यापार में घाटे के कारण काफी रुपये के कर्जदार हो गये थे। कर्ज चुकाने की कोई व्यवस्था न रही थी कि रोग ने और भी नुकसान हो गया। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपनी प्रतिष्ठा खोने और भविष्य के दुःखी जीवन बिताने के लक्षण स्पष्ट रूप से सामने थे। निराशा में सहायता के लिये उन्होंने गायत्री अनुष्ठान कराया। साधना के प्रभाव से दिन दिन लाभ होने लगा। रुई और चाँदी के व्यापार में ऐसे लाभ हुए, जिससे सारा कर्ज चुक गया। गिरा हुआ व्यापार फिर चमकने लगा।

दिल्ली के प्रसिद्ध पहलवान श्री ... बड़ी-बड़ी कुश्ती लड़ते रहते थे, जो पहले गायत्री पुरश्चरण करते थे। प्रायः सदा ही विजयी होकर लौटते थे।

सीकरपाड़ा के श्री ... को ... रोग हो गया था। परीक्षा होने पर डॉक्टरों ने बताया कि इनके

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

फेफड़े खराब हो गये थे । दशा निराशाजनक थी । सैकड़ों रुपये की दवा खाने पर भी जब कुछ आराम न हुआ, तो एक वयोवृद्ध विद्वान् के आदेशानुसार उन्होंने चारपाई पर पड़े-पड़े गायत्री का जप आरम्भ कर दिया और मन ही मन प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बच गया, तो अपना जीवन देश-हित में लगा दूँगा । प्रभु की कृपा से वे बच गये । धीरे-धीरे स्वास्थ्य सुधरा और बिल्कुल भले चंगे हो गये । तब से अब तक वे आदिवासियों, भीलों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लोगों की सेवा में लगे हुए हैं ।

भरतपुर के ला. कन्हैयालाल का लड़का बहुत ही दुबला और कमजोर था, आये दिन बीमार पड़ा रहता था । आयु १८ वर्ष की हो चुकी थी, पर देखने में १३ वर्ष से अधिक न मालूम पड़ता था । लड़के को उसके कुलगुरु ने गायत्री की उपासना का आदेश दिया । उसका मन इसमें लग गया । एक-एक करके उसकी सब बीमारियाँ छूट गयीं । कसरत करने लगा, खाना भी हजम होने लगा । दो-तीन वर्ष में उसका शरीर दर्शनीय हो गया और वह सब काम-काज होशियारी के साथ सँभालने लगा ।

प्रयाग के श्रीमुकुन्दलाल जी के पोते की दशा बहुत खराब हो गयी थी । गला फूल गया था । डॉक्टर इलाज कर रहे थे, पर कोई दवा कारगर नहीं होती थी । तब उसके घर वालों ने गायत्री उपासना का सहारा लिया । लगातार गायत्री जप तथा चालीसा-पाठ चलता रहा । सवेरा होते-होते दशा बहुत कुछ सुधर गयी और दो-चार दिन में वह पूरा खेलने-कूदने लगा ।

आगरा निवासी श्रीरामचरणजी किसी के यहाँ निमन्त्रण खाकर भोजन करने गये, वहाँ से घर लौटते ही उनका मस्तिष्क विकृत हो गया । वे पागल होकर इधर-उधर फिरने लगे । एक दिन उन्होंने अपनी आँख में ईंट मारकर उसे खूब सुजा लिया । उनका जीवन निरर्थक जान पड़ने लगा था । एक दिन कुछ लोग परामर्श करके इन्हें पकड़कर जबरदस्ती गायत्री उपासक के पास ले आये । उन्होंने उनकी कल्याण भावना से चावल को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उनके शरीर पर छींटे मारे, जिससे वह मूर्छित के समान गिर गये । कुछ देर बाद वे उठे और पीने को पानी माँगा । उन्हें गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिलाया गया, जिससे कुछ समय में वे बिल्कुल ठीक हो गये ।

श्री नारायणप्रसाद कायस्थ राजनांदगाँव वालों के बड़े भाई पर कुछ लोगों ने मिलकर एक फौजदारी का मुकदमा चलाया, वह मुकदमा चार वर्ष तक चला । इसी प्रकार उनके छोटे भाई पर कत्ल का अभियोग लगाया । इन लोगों ने गायत्री माता का आँचल पकड़ा और दोनों मुकदमों में से इन्हें छुटकारा मिला ।

स्वामी योगानन्दजी संन्यासी को कुछ लोग अकारण बहुत सताते थे । उन्हें गायत्री का आत्मबल सिद्ध था । उसका उन्होंने कुछ लोगों पर प्रयोग किया, तो उनके शरीर ऐसे जलने लगे मानो किसी ने अग्नि लगा दी हो । वे बहुत दुःख से छटपटाने लगे । जब लोगों की प्रार्थना पर स्वामी जी ने उस अन्तर्दाह को शान्त किया, इसके बाद वे सदा के लिये सीधे हो गये ।

नन्दनपुरा के सत्यनारायणजी एक अच्छे गायत्री उपासक हैं । इन्हें अकारण सताने वाले गुण्डों पर ऐसा वज्रपात हुआ कि एक भाई २४ घण्टे के अन्दर हैजे से मर गया और शेष भाइयों को पुलिस डकैती के अभियोग में पकड़कर ले गयी, उन्हें पाँच-पाँच वर्ष की जेल काटनी पड़ी ।

इस प्रकार के अनेकों प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि गायत्री माता का आँचल श्रद्धापूर्वक पकड़ने से मनुष्य अनेक प्रकार की आपत्तियों से सहज ही छुटकारा पा सकता है । अनिवार्य कर्म भोगों एवं कठोर प्रारब्ध में भी कई बार आश्चर्यजनक सुधार होते देखे गये हैं ।

गायत्री उपासना का मूल लाभ आत्म-शान्ति है । इस महामन्त्र के प्रभाव से आत्मा में सतोगुण बढ़ता है और अनेक प्रकार की आत्मिक समृद्धियाँ बढ़ती हैं, साथ ही अनेक प्रकार के सांसारिक लाभ भी मिल जाते हैं ।

देवियों की गायत्री साधना

प्राचीनकाल में सती, सीता, मदालसा, शकुन्तला, अनसूया, देवहूति, अरुन्धती, कुन्ती, गान्धारी, कुन्ती, मन्दोदरी, तारा, द्रौपदी, दमयन्ती, गौतमी, अपाला, सुलभा, शाश्वती, उशिजा, सावित्री, लोपामुद्रा, प्रतिशेयी, वैशालिनी, बेहुला, सुनीति, शकुन्तला, पिंगला, जरत्कारु, रोहिणी, भद्रा, विदुला, गान्धारी, अञ्जनी, सीता, देवहूति, पार्वती, अदिति, शची, सत्यवती, सुकन्या, शैव्या आदि महासतियाँ वेदज्ञ और गायत्री उपासक रही हैं। उन्होंने गायत्री शक्ति की उपासना द्वारा अपनी आत्मा को समुन्नत बनाया था और यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उन्होंने साधना और गृहस्थ सञ्चालन सम्बन्धी की आराधना में सफलता प्राप्त की थी। इन देवियों का विस्तृत वृत्तान्त, उनकी साधनाओं और सिद्धियों का वर्णन करना इस छोटी पुस्तक में सम्भव नहीं है। जिन्होंने भारतीय पुराण-इतिहासों को पढ़ा है, वे जानते हैं कि उपर्युक्त देवियाँ विद्या, साहस, शौर्य, दूरदर्शिता, नीति, धर्म, साधना, आत्मोन्नति आदि सद्गुणों में अपने ढंग की अनोखी आकाशदीपक ज्योतियाँ थीं। उन्होंने समय समय पर ऐसे चमत्कार उपस्थित किये हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य में रह जाना पड़ता है।

प्राचीनकाल में सावित्री ने एक वर्ष तक गायत्री जप करके वह शक्ति प्राप्त की थी, जिससे वह अपने मृत-पति सत्यवान् के प्राणों को यमराज से लौटा सकी। दमयन्ती का तप ही था जिसके प्रभाव से कुचेष्टा करने वाले व्याध को भस्म कर दिया था। गान्धारी आँखों पर पट्टी बाँधकर ऐसा तप करती थी, जिससे उनके नेत्रों में यह शक्ति उत्पन्न हो गयी थी कि उनके दृष्टिपात मात्र से दुर्योधन का शरीर अभेद्य हो गया था। जिस अंग पर उसने लज्जावश कपड़ा ढक लिया था, वही कच्चा रह गया था और उसी पर प्रहार करके भीम ने दुर्योधन को मारा था। अनसूया ने तप से ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नन्हें बालक बना दिया था। सती शाण्डिली के तपोबल ने सूर्य का रथ रोक दिया था। सुकन्या की तपस्या से जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि तरुण हो गये थे। स्त्रियों की तपस्या का इतिहास पुरुषों से कम प्रभावशाली नहीं है। यह स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष सभी के लिये तप का प्रमुख मार्ग गायत्री ही है।

वर्तमान समय में भी अनेक नारियों की गायत्री साधना का हमें भलीभाँति परिचय है और यह भी पता है कि इसके द्वारा उन्होंने कितनी बड़ी मात्रा में आत्मिक और सांसारिक सुख-शान्ति की वृद्धि की है।

एक सुप्रसिद्ध इन्जीनियर की धर्मपत्नी श्रीमती रैमप्यारी देवी को अनेक प्रकार की पारिवारिक कठिनाइयों से होकर गुजरना पड़ा है। उन्होंने अनेक संकटों के समय गायत्री का आश्रय लिया और विषम परिस्थितियों से छुटकारा पाया है।

दिल्ली के एक अत्यन्त उच्च परिवार की सुशिक्षित देवी श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ बी.ए. गायत्री की अनन्य साधिका हैं। इन्होंने इस साधना द्वारा बीमारियों की पीड़ा दूर करने में विशेष सफलता प्राप्त की है। दर्द से बेचैन रोगी इनके अभिमन्त्रित हाथ मार्जन से आराम अनुभव करता है। इन्हें गायत्री में इतनी तन्मयता है कि थोड़ा कुछ भी जप अपने आप होता रहता है।

मनोरा के एक प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्री की धर्मपत्नी श्रीमती मेघवती देवी को बचपन से गायत्री-साधना के लिये अपने पिताजी से प्रोत्साहन मिला था, तब से अब तक वे इस साधना को बड़े प्रेमपूर्वक चला रही हैं। कई चिन्ताजनक अवसरों पर गायत्री की कृपा से उनकी मनोकामना पूर्ण हुई है।

शिलांग की एक सती-साध्वी महिला श्रीमती सुखवन्ती देवी के पतिदेव की मृत्यु ३० वर्ष की आयु में हो गयी थी। गोदी में १ ½ वर्ष का पुत्र था। उनको तथा उनके ससुर को इस मृत्यु का भारी आघात लगा और दोनों ही शोक से पीड़ित होकर अति-निर्बल हो गये। एक दिन एक साधु ने उनके ससुर को गायत्री जप का उपदेश दिया। शोक निवारणार्थ वे उस जप को करने लगे। कुछ दिन बाद सुखवन्ती देवी को स्वप्न में एक

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

गायत्रीमाता ने दर्शन दिये और कहा, किसी प्रकार की चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी, मेरा नाम गायत्री है। जब भी आवश्यकता हुआ करे, तो मेरा स्मरण किया करो। स्वप्न टूटने पर दूसरे ही दिन से उन्होंने गायत्री साधना आरम्भ कर दी। पिछले १३ वर्षों में अनेक आपत्तियाँ उन पर आयीं और वे सब टल गयीं। अब उनका लड़का १९ साल का होकर बी.ए. में पढ़ रहा है। ४०) उसको सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है और ७५) रुपये के ट्यूशन कर लेता है। परिवार का काम ठीक प्रकार चल रहा है। गायत्री पर उन्हें अनन्य श्रद्धा है।

हैदराबाद (सिन्ध) की श्रीमती विद्यादेवी की सास बड़ी कर्कशा स्वभाव की थी और पतिदेव शराब, वेश्यागमन आदि बुरी लतों में डूबे रहते थे। विद्या देवी को सारे दिन सास तथा पति की गाली गलौज तथा मारपीट का सामना करना पड़ता था। इससे वे बड़ी दुःखी रहतीं और कभी-कभी आत्महत्या करने की सोचतीं। किसी की कृपा से उसे किसी विदुषी ने गायत्री माता की उपासना करने की शिक्षा दी। वह गायत्री माता जी की उपासना करने लगी। फल आश्चर्यजनक हुआ। थोड़े ही दिनों में सास और पति को ऐसा स्वप्न हुआ कि उनको पुत्रवधू के लिये कोई देवदूत उन्हें मृत्यु दण्ड दे रहे हैं। जब स्वप्न टूटा तो उस भय का आतंक कई घड़ी तक उन पर रहा और उसी दिन से स्वभाव बदल गया। अब वह परिवार पूर्ण प्रसन्न और सन्तुष्ट है। विद्या का दृढ़ विश्वास है कि उसके घर को आनन्दमय बनाने वाली माता गायत्री ही हैं। वर्षों से उसका नियम है कि जप किये बिना भोजन नहीं करती।

नारायणगंज (बंगाल) के उच्च अफसर की धर्मपत्नी श्रीमती हेमलता चटर्जी को तीस वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई, इसके कारण उनके पति के अन्य स्वजन इससे बड़े दुःखी रहते थे और कभी-कभी उनके पति का दूसरा विवाह होने की चर्चा होती रहती थी। हेमलता को इससे अधिक मानसिक कष्ट रहता था और उन्हें मूर्छा का रोग हो गया था। किसी साधक ने उन्हें गायत्री साधना की विधि बताई, वे श्रद्धापूर्वक उपासना करने लगीं। ईश्वर की कृपा से एक वर्ष बाद उनके कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम गायत्री रखा गया। इसके बाद दो-दो वर्ष के अन्तर से दो पुत्र और हुए। तीनों बालक स्वस्थ हैं। इस परिवार में गायत्री की बड़ी मान्यता है।

जैसलमेर की श्रीमती गोमन बाई को १८ वर्ष की आयु से हिस्टीरिया (मिरगी) के दौरे आते थे। आठ वर्षों से वे इस रोग से बहुत दुःखी थीं। उन्हें उपवासपूर्वक गायत्री जप करने की विधि बताई गयी। अब स्नान कर के फल और दूध पर निर्वाह करने लगी और श्रद्धापूर्वक गायत्री की आराधना करने लगी। चार मास के भीतर उनका बहुत वर्षों पुराना मिर्गी रोग दूर हो गया।

मुजफ्फरनगर की सुन्दरी बाई को पहले कण्ठमाला रोग था, वह थोड़ा अच्छा हुआ तो उदर रोग भयंकर रूप से हो गया। हर घड़ी ज्वर चढ़ा रहता। कई साल इस प्रकार बीमार पड़े रहने के कारण उनका शरीर अस्थि मात्र रह गया था। चमड़ा और हड्डियों के बीच मांस का नाम भी दिखाई न पड़ता था, आँखें गड्ढे में धँस गयी थीं, घर के लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे थे। ऐसी स्थिति में उन्हें एक पड़ोसिन ब्राह्मणी ने बताया कि गायत्री माता कष्ट हारिणी है, उसका ध्यान करो। सुन्दरी बाई के मन में बात बैठ गई। वे चारपाई पर पड़े-पड़े जप करने लगीं। ईश्वर की कृपा से वे धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगीं और बिल्कुल नीरोग हो गयीं। दो वर्ष बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भला चंगा और स्वस्थ है।

गोरखपुर जिले की कमला देवी को भूतोन्माद था। भूत-प्रेत उनके सिर पर चढ़े रहते थे। १२ वर्ष की आयु में वे बिल्कुल सूखकर दुर्बल हो गयी थीं। उनके पिता इस व्याधि से अपनी पुत्री को छुटकारा दिलाने के लिये काफी खर्च, परेशानी उठा चुके थे, पर कोई लाभ नहीं होता था। अन्त में उन्होंने गायत्री पुरश्चरण कराया और उससे लड़की की व्याधि दूर हो गयी।

आबू के डॉक्टर [illegible] शर्मा की पुत्री सावित्री देवी गायत्री की बड़ी उपासिका हैं। उन्होंने देहात में रहकर

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

आयुर्वेद का अध्ययन आरम्भ किया और परीक्षा के दिनों में बीमार पड़ जाने पर भी आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई।

कानपुर के पं. अयोध्याप्रसाद दीक्षित की धर्मपत्नी शान्तिदेवी विदुषी नाम की। १२ वर्ष तक पढ़ाई छोड़कर परिवार के झंझटों में लगी रहीं। एक वर्ष अभ्यास करके मैट्रिक का फार्म भर दिया और गायत्री उपासना के बल से थोड़ी-सी तैयारी में उत्तीर्ण हो गयीं।

धामपुर की सावित्री देवी दुबे नामक एक महिला के पति की मृत्यु अठारह वर्ष की आयु में ही हो गयी थी। वे अत्यधिक शोकग्रस्त रहती थीं। घुलकर काँटा हो गयी थीं। एक दिन उनके पति ने स्वप्न में उनसे कहा कि तुम गायत्री उपासना किया करो, जिससे मेरी आत्मा को सद्गति मिलेगी और तुम्हारा वैधव्य परम शान्तिपूर्वक व्यतीत हो जायेगा। उसने पति की आज्ञानुसार वैसा ही किया, अतः परिवार में रहते हुए भी उच्चकोटि के महात्मा की स्थिति प्राप्त हुई। वह जो बात जबान से कह देती थी, वह सत्य होकर रहती थी।

कटक जिले के रामपुर ग्राम में एक सुनार की कन्या सोनाबाई को स्वप्न में नित्य और जाग्रत् अवस्था में कभी-कभी गायत्री के दर्शन होते हैं। वह ऐसी भविष्यवाणियाँ करती है, जो प्रायः ठीक ही उतरती हैं।

फतेहपुर की सरोजकुमारी बचपन में बड़ी मन्दबुद्धि थी। उनके पिता ने उसको पढ़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किये, पर सफलता न मिली। भाग्यहीन समझकर सब लोग चुप हो गये। विवाह हुआ, विवाह के चार वर्ष बाद ही वह विधवा हो गयी। वैधव्य को काटने के लिये उसने गायत्री की आराधना आरम्भ कर दी। एक रात को स्वप्न में गायत्री ने दर्शन दिये और कहा—"मैंने तेरी बुद्धि तीक्ष्ण कर दी है, विद्या पढ़, तेरा जीवन सफल होगा।" दूसरे दिन उसे पढ़ने में उत्साह आया, बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण हो गयी थी। कुछ ही वर्षों में मैट्रिक पास कर लिया और वे अब शिक्षा के प्रचार में बड़ी तत्परता से लगी हुई हैं।

रंगपुर बंगाल की श्रीमती सरला चौधरी के कई बच्चे मर चुके थे। एक भी बच्चा जीवित न रहने से वे बहुत दुःखी थीं। उन्हें गायत्री साधना बताई गयी, जिसको अपनाकर उन्होंने तीन पुत्रों की माता कहलाने का सुख पाया। दिल्ली की एक अध्यापिका कुलवन्तदेवी को प्रसवकाल में मृत्यु तुल्य कष्ट होता था। एक बार उन्होंने गायत्री की प्रशंसा सुनी और उसे अपनाकर साधना करने लगीं, तब उन्हें चार प्रसव और हुए जो सभी सुखपूर्वक हो गये।

मुल्तान की सुन्दरीबाई स्वयं बहुत कमजोर थीं, उनके बच्चे भी कमजोर थे और उनमें से कोई न कोई बीमार पड़ा रहता था। अपनी दुर्बलता और बच्चों की बीमारी से रोना-धोना सदा लगा रहता था। इस स्थिति से उन्हें गायत्री ने छुड़ाया। धीरे-धीरे सपरिवार स्वस्थ रहने लगीं।

अलवपुर की फुलवाली महिला ज्ञानवती रूप-रंग की अधिक सुन्दर न होने के कारण पति की प्रिय न थी। पति का व्यवहार उनसे सदा रूखा, कर्कश, उपेक्षापूर्ण रहता था और घर रहते हुए भी परदेश के समान दोनों में बिलगाव रहता था। ज्ञानवती की मौसी ने गायत्री का पूजन और रविवार का व्रत रखने का उपाय बताया। वह तपश्चर्या निरर्थक नहीं गयी। व्रतविधि को आगे चलकर पति का प्रेम प्राप्त हुआ और उसका दाम्पत्य-जीवन सुखमय बीता।

मोहनगढ़ राज्य में एक राजवंशी बालिका की बड़ी बुरी संगति थी। उसे यहाँ के लोग आवारा समझते थे। एक वयोवृद्ध संन्यासी ने उसे गायत्री की दीक्षा दी। तब से उसने सब छोड़कर भगवान् की भक्ति में चित्त लगाया और साधु जीवन व्यतीत करने लगी।

महाराजपुर के पास एक वृद्धा कन्या गुफा बनाकर दस वर्ष की आयु से तपस्या कर रही थी। चालीस वर्ष की आयु में भी उसके चेहरे का तेज ऐसा था कि आँखें झपक जाती थीं। उसके दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते थे। इस देवी का इष्ट गायत्री था। वह सदा गायत्री का जप करती रहती थी।

मीराबाई, सहजोबाई, रानीबाई, सीताबाई, दयाबाई, अहिल्याबाई, जनाबाई, मुक्ताबाई आदि अनेकों ईश्वर भक्त, वैरागिनी हुई हैं, जिनका जीवन विरक्त और परमार्थ पूर्ण रहा। इनमें से बहुतों ने गायत्री की उपासना करके अपने भक्ति-भाव और वैराग्य को बढ़ाया था।

इस प्रकार अनेक देवियाँ इस श्रेष्ठ साधना से अपनी आध्यात्मिक उन्नति करती आई हैं और सांसारिक सुख समृद्धि की प्राप्ति एवं आपत्तियों से छुटकारा पाने की सफलता का अनुभव करती रही हैं। विधवा बहिनों के लिये तो गायत्री-साधना एक सर्वोत्तम तपस्या है। शोक-वियोग की जलन बुझती है, बुद्धि में सात्त्विकता आती है, चित्त ईश्वर की ओर लगता है। सदाचार, सेवा, शील, सद्व्यवहार, निरालस्यता, सादगी, धर्म रुचि, स्वाध्याय-निष्ठा, आस्तिकता एवं परमार्थ परायणता के भाव बढ़ते हैं। गायत्री-साधना की तपश्चर्या का आश्रय लेकर अनेक ऐसी बाल-विधवाओं ने अपना जीवन सती-साध्वी जैसा बिताया है, जिनकी कम आयु देखकर अनेक आशंकायें की जाती थीं। जब ऐसी महिलाओं को गायत्री में रस आनन्द आने लगता है, तो वे वैधव्य दुःख को भूल जाती हैं और अपने को सर्वोत्तम तपस्विनी, त्यागी, ब्रह्मचारिणी, उज्ज्वल चरित्र, पवित्र आत्मा अनुभव करती हैं। ब्रह्मचर्य तो उनका जीवन सहचर बनकर रहता है।

स्त्री और पुरुष, नर और नारी दोनों ही वर्ग वेदमाता गायत्री के कन्या-पुत्र हैं। दोनों ही आँखों के तारे हैं। वे किसी से भेद-भाव नहीं करतीं। माता को पुत्र से कन्या अधिक प्यारी होती है। वेदमाता गायत्री की साधना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये अधिक सरल और अधिक शीघ्र फलदायिनी है।

जीवन का कायाकल्प

गायत्री मन्त्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। इस महामन्त्र की उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आन्तरिक क्षेत्र में एक नयी हलचल एवं रद्दोबदल आरम्भ हो गयी है। सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होने तथा दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग उसके स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर बदले में प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं। इसके अतिरिक्त ये सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म-सन्तोष की परम शान्तिदायक निर्झरिणी सदा बहती रहेगी।

गायत्री साधना से साधक के मनःक्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, तत्त्व ज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञानजन्य दुःखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्धवश अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विविध परिस्थितियों में जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्युतुल्य कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्मबल-सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, सन्तोष, संयम, ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती एवं प्रसन्नता का जीवन बिताता है।

संसार का सबसे बड़ा लाभ "आत्म-बल" गायत्री साधक को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के सांसारिक लाभ भी होते देखे गये हैं : बीमारी, कमजोरी, बेकारी, घाटा, गृह-कलह, मनोमालिन्य, मुकदमा, शत्रुओं का आक्रमण, दाम्पत्य सुख का अभाव, मस्तिष्क की निर्बलता, चित्त की अस्थिरता, सन्तान-सुख, कन्या के विवाह की कठिनाई, बुरे भविष्य की आशंका, परीक्षा में उत्तीर्ण न होने का भय, बुरी आदतों के बन्धन जैसी कठिनाइयों से ग्रसित अगणित व्यक्तियों ने आराधना करके अपने दुःखों से छुटकारा पाया है।

कारण यह है कि हर एक कठिनाई के पीछे, जड़ में निश्चय ही कुछ न कुछ अपनी त्रुटियाँ, अयोग्यतायें एवं खराबियाँ रहती हैं। सद्‌गुणों की वृद्धि के साथ अपने आहार-विहार, दिनचर्या, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन ही आपत्तियों के निवारण का, सुख शान्ति की स्थापना का राजमार्ग बन जाता है। कई बार हमारी इच्छायें, तृष्णायें, लालसायें, कामनायें ऐसी होती हैं, जो हमारी योग्यता एवं परिस्थितियों से मेल नहीं खातीं। मस्तिष्क शुद्ध होने पर बुद्धिमान् व्यक्ति उन महत्त्वाकांक्षाओं को त्यागकर सन्तुष्ट रहता है और दुःखी रहने से, इस जंजाल से छूट जाता है। अवश्यम्भावी, न टलने वाले प्रारब्ध का भोग जब सामने आता है, तो साधारण व्यक्ति बुरी तरह रोते-चिल्लाते हैं, किन्तु गायत्री-साधक में इतना आत्मबल एवं साहस बढ़ जाता है कि वह उन्हें हँसते-हँसते झेल लेता है।

किसी विशेष आपत्ति का निवारण करने एवं किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भी गायत्री साधना की जाती है। बहुधा इसका परिणाम बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। देखा गया है कि जहाँ चारों ओर निराशा, आशंका, आतंक और भय का अन्धकार ही छाया हुआ था, वहाँ वेदमाता की कृपा से एक दैवी प्रकाश उत्पन्न हुआ और निराशा आशा में परिणत हो गई, बड़ी कठिनाइयाँ आसानी से हल हो गईं। ऐसे अनेकों अवसर अपनी आँखों के सामने देखने के कारण हमारा यह अटूट विश्वास हो गया कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती।

गायत्री साधना आत्मबल बढ़ाने का अचूक आध्यात्मिक व्यायाम है। किसी को कुश्ती में पछाड़ने एवं दंगल में जीतकर इनाम पाने के लिये कितने ही लोग पहलवानी और व्यायाम का अभ्यास करते हैं। यदि कदाचित् कोई अभ्यासी किसी कुश्ती को हार जाय, तो भी ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उसका प्रयास निष्फल गया। इसी बहाने उसका शरीर तो मजबूत हो गया, वह जीवन भर अनेक प्रकार से अनेक अवसरों पर बड़े-बड़े लाभ उपस्थित करता रहेगा। निरोगिता, सौन्दर्य, दीर्घजीवन, कठोर परिश्रम करने की क्षमता, दाम्पत्य-सुख, सुसन्तति, अधिक कमाना, शत्रुओं से निर्भयता आदि कितने ही लाभ ऐसे हैं, जो कुश्ती पछाड़ने से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। साधना से यदि कोई विशेष प्रयोजन प्रारब्धवश पूरा भी न हो, तो भी इतना तो निश्चित है कि किसी न किसी प्रकार साधना की अपेक्षा कई गुना लाभ अवश्य मिलकर रहेगा।

आत्मा स्वयं अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र है। जो शक्तियाँ परमात्मा में हैं, वे ही उसके अमर युवराज आत्मा में हैं। समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र आत्मा में है, किन्तु जिस प्रकार राख से ढका हुआ अंगार मन्द हो जाता है, वैसे ही आन्तरिक मलिनताओं के कारण आत्मतेज कुण्ठित हो जाता है। गायत्री-उपासना से मलिनता का पर्दा हटता है और राख हटा देने से जैसे अंगार अपने प्रज्वलित स्वरूप में दिखाई पड़ने लगता है, वैसे ही साधक की आत्मा भी अपने ऋद्धि-सिद्धि समन्वित ब्रह्मतेज के साथ प्रकट होती है। योगियों को जो लाभ दीर्घकालीन तप, कष्टसाध्य तपस्यायें करने से प्राप्त होता है, वही लाभ गायत्री साधक को स्वल्प प्रयास से प्राप्त हो जाता है।

गायत्री-उपासना का यह प्रभाव हम लोग भी स्वयं अपने पर दिखाई पड़ता है। इन सौ पचास वर्षों में ही सैकड़ों व्यक्ति इसके फलस्वरूप आश्चर्यजनक सफलतायें पा चुके हैं और अपने जीवन को इतना ऊँचा और आध्यात्मिक दृष्टि से कल्याणकारी तथा परोपकारी बना चुके हैं कि उनसे अन्य सहस्रों लोगों को प्रेरणा प्राप्त हुई है। गायत्री साधना में आत्मकल्याण का मूल इतना अधिक भरा हुआ है कि उससे निरन्तर कल्याण और जीवन सुधार के और कोई अभिप्राय हो ही नहीं सकता।

प्राचीनकाल में महर्षियों ने बड़ी-बड़ी तपस्यायें और योग साधनायें करके अणिमा, महिमा आदि ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उनकी चमत्कारी शक्तियों के वर्णन से इतिहास-पुराण भरे पड़े हैं। वह तपस्या और योग साधना गायत्री के आधार पर ही की थी। अब भी अनेकों महात्मा मौजूद हैं जिनके पास दैवी-शक्तियों और

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ना वेदविन्मनुते तं बृहन्तम्। एतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन। —तैत्तिरीयोप०

जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप और योग द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति करते थे, वैसे ही स्त्रियाँ भी विद्या ब्रह्मचारिणी रहकर आत्म-निर्माण एवं परमार्थ का सम्पादन करती थीं।

पूर्वकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणी हुई हैं, जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी। महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणियों का वर्णन आता है।

भारद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी॥ —महाभारत शल्य पर्व ४८।२

भारद्वाज की श्रुतवती नामक कन्या थी, जो ब्रह्मचारिणी थी। कुमारी के साथ-साथ ब्रह्मचारिणी शब्द लगाने का तात्पर्य यह है कि वह अविवाहित और वेदाध्ययन करने वाली थी।

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमार-ब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता तपः सिद्धा तपस्विनी॥ —महाभारत शल्य पर्व ५४।६

योग सिद्धि को प्राप्त कुमार अवस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी, सिद्धा नाम की ब्राह्मणी मुक्ति को प्राप्त हुई।

बभूव श्रीमती राजन् शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी॥
सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता॥ —महाभारत शल्य पर्व ५४।७-८

महात्मा शाण्डिल्य की पुत्री 'श्रीमती' थी, जिसने व्रतों को धारण किया। वेदाध्ययन में निरन्तर प्रवृत्त थी। अत्यन्त कठिन तप करके वह देव ब्राह्मणों से पूजित हुई और स्वर्ग सिधारी।

तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्त विद्यां वाल्मीकि पार्श्वादिह पर्यटामि। —उत्तररामचरित अंक २

(आत्रेयी का कथन) उन (अगस्त्यादि ब्रह्मवेत्ताओं) से ब्रह्म विद्या सीखने के लिए वाल्मीकि के पास से आ रही हूँ।

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में 'सुलभा' नामक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी का वर्णन है, जिसने राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ किया था। इसी अध्याय के श्लोकों में सुलभा ने अपना परिचय देते हुए कहा—

प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम्॥
साऽहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥ —महा० शान्ति पर्व ३२० ।१८१ ।१८३

मैं सुप्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ। अपने अनुरूप पति न मिलने से मैंने गुरुओं से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यास ग्रहण किया है।

पाण्डव-पत्नी द्रौपदी की विद्वत्ता का वर्णन करते हुए श्री आचार्य आनन्दतीर्थ (माधवाचार्य) जी ने 'महाभारत निर्णय' में लिखा है—

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

वेदाध्ययनशीलाभिः कृष्णाद्याभिश्च स्त्रीभिः।

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रौपदी) की तरह वेद पढ़ने चाहिये।

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ, ज्ञान—विज्ञान—पारगे॥—भागवत ४।१।६४

स्वधा की दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम वयुना और धारिणी थे। वे दोनों ही ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं।

विष्णु पुराण १।१०।१९ और १८।१९-२० तथा मार्कण्डेय पुराण ५२।१९-२० में इसी प्रकार (ब्रह्मवादिनी) वेद और शास्त्र का उपदेश करने वाली स्त्रियों का वर्णन है।

शातलं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता॥—ब्रह्म० प्रकृति खण्ड २/१४/६४

इसे चारों वेद कण्ठाग्र थे, इसलिये इसे वेदवती कहा जाता था। इस प्रकार की नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ अनेकों थीं। इनके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्यायें दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेद शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त विवाह करती थीं, तभी उनकी संतान विद्या में उत्तम बलवान्, बुद्धिमान् और गौरववान् होती थी। वेदों में इस बात का स्पष्ट आदेश है कि कन्या ब्रह्मचारिणी रहने के उपरान्त विवाह करे।

ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम्। —अथर्व० ११।५।१८

अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई, उसके द्वारा उपयुक्त पति को प्राप्त करती है।

ब्रह्मचर्य केवल अविवाहित रहने को ही नहीं कहते हैं। ब्रह्मचारी वह है, जो संयमपूर्वक वेद की प्राप्ति में निरत रहता है। देखिये—

स्वीकरोति यदा वेदं चरेद् वेदव्रतानि च।
ब्रह्मचारी भवेत्तावद् ऊर्ध्वं स्नातो भवेद् गृही॥ —दक्षस्मृति १।१०

अर्थात् जब वेद को अर्थ सहित पढ़ता है और उसके लिये व्रतों को धारण करता है, तब ब्रह्मचारी कहलाता है, उसके पश्चात् विधिवत् स्नातक गृहस्थ में प्रवेश करता है।

अथर्ववेद में ११।५।१८ की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है—

'ब्रह्मचर्येण- ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम्।'

अर्थात् "ब्रह्म" का अर्थ है वेद। इस वेद के अध्ययन के लिये जो प्रयत्न किये जाते हैं, वह ब्रह्मचर्य है।

इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने लिखा है—

'ब्रह्मणि वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुं शीलमस्य स तथोक्तः।'

अर्थात् ब्रह्मचारी वह है, जो वेद के अध्ययन में विशेष रूप से संलग्न है।

महर्षि हारीताचार्य ने धर्मसूत्र में कहा—

'ब्रह्मचारिणां च ब्रह्मचारिणीभिः सह विवाहः प्रशस्यो भवति।'

अर्थात् ब्रह्मचारियों का विवाह ब्रह्मचारिणियों से ही होना उचित है, क्योंकि ज्ञान और विद्या आदि की दृष्टि से दोनों के समान रहने पर ही सुखी और संतुष्ट रह सकते हैं। महाभारत में भी इस बात की पुष्टि की गयी है।

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्ट-विपुष्टयोः॥ —महाभारत आदिपर्व १।१३१।१०

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

"जिनका चित्त एवं ज्ञान समान है, उनमें विवाह और मिलाप उचित है, न्यूनाधिक में नहीं।"

ऋग्वेद ३ । ५५ । १६ का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—

याः कन्या यावच्चतुर्विंशतिवर्षमायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियाः तथा सांगोपांगवेदविद्या अधीयते ताः मनुष्य-जाति-भूषिका भवन्ति।

अर्थात् जो कन्याएँ २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक सांगोपांग वेद विद्याओं को पढ़ती हैं, वे मनुष्य जाति को शोभित करती हैं।

ऋग्वेद ५ । ६२ । ११ के भाष्य में महर्षि ने लिखा है—

ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध-कीर्तिं सत्पुरुषं सुशीलं शुभ-गुण-रूप-समन्वितं प्रीतिमन्तं पतिं ग्रहीतुमिच्छेत्, तथैव ब्रह्मचार्यपि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं गृह्णीयात्।

अर्थात् - ब्रह्मचारिणी स्त्री कीर्तिमान्, सुशील, सत्पुरुष, गुणवान्, रूपवान्, प्रेमी स्वभाव के पति की इच्छा करे, वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने समान ब्रह्मचारिणी (वेद और ईश्वर की ज्ञाता) स्त्री को ग्रहण करे।

जब विद्याध्ययन करने के लिये कन्याओं को पुरुषों की भाँति सुविधा थी, तभी इस देश की नारियाँ गार्गी और मैत्रेयी की तरह विदुषी होती थीं। याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि को एक नारी ने शास्त्रार्थ में विचलित कर दिया था और उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे धमकी देते हुए कहा था—'अधिक प्रश्न मत करो, अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा।'

इसी प्रकार शंकराचार्यजी को भारतीदेवी के साथ शास्त्रार्थ करना पड़ा था। उस भारती देवी नामक महिला ने शंकराचार्यजी से ऐसा अद्भुत शास्त्रार्थ किया था कि बड़े-बड़े विद्वान् भी आश्चर्यचकित रह गये थे। उसके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये शंकराचार्य को निरुत्तर होकर एक मास की मोहलत माँगनी पड़ी थी। शंकरदिग्विजय में भारती देवी के सम्बन्ध में लिखा है—

सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान्,
काव्यादिकान् वेत्ति परञ्च सर्वम्।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र बाला,
तस्मादभूच्चित्र पदं जनानाम्॥ —शंकर-दिग्विजय ३ । १६

"भारती देवी सर्वशास्त्र तथा अंगों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी। उससे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई विदुषी स्त्री न थी।"

आज जिस प्रकार स्त्रियों के शास्त्राध्ययन पर रोक लगाई जाती है। यदि इस समय ऐसे ही प्रतिबन्ध रहे होते, तो याज्ञवल्क्य और शंकराचार्य से टक्कर लेने वाली स्त्रियाँ किस प्रकार हो सकती थीं? प्राचीनकाल में अध्ययन की सभी नर-नारियों को समान सुविधा थी।

स्त्रियों के द्वारा यज्ञ का ब्रह्मा बनने तथा उपाध्याय एवं आचार्य होने के प्रमाण मौजूद हैं। ऋग्वेद में नारी सम्बोधन करके कहा गया है कि तू उत्तम आचरण द्वारा ब्रह्मा का पद प्राप्त कर सकती है।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥ —ऋग्वेद ८ । ३३ । १९

अर्थात् हे नारी! तुम नीचे देखकर चलो। व्यर्थ में इधर-उधर की वस्तुओं को मत देखती रहो। अपने पैरों को सावधानी तथा सभ्यता से रखो। वस्त्र इस प्रकार पहनो कि लज्जा के अंग ढके रहें। इस प्रकार उचित आचरण करती हुई तुम निश्चय ही ब्रह्मा की पदवी पाने के योग्य बन सकती हो।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

अब यह देखना है कि ब्रह्मा का पद कितना ऊँचा है और इसे किस योग्यता का मनुष्य प्राप्त कर सकता है ?

ब्रह्मा वा ऋत्विजामभिषक्तमः । —शतपथ ब्रा० १।७।४।१९

अर्थात् ब्रह्मा ऋत्विजों की त्रुटियों को दूर करने वाला होने से सब पुरोहितों में ऊँचा है।

तस्माद्यो वर्षिष्ठः स्यात् तं ब्रह्माणं कुर्वीत । —गोपथ ब्रा० उत्तरार्ध १।३

अर्थात् जो सबसे अधिक बहुविज्ञ (अनुभवी और वेदों का ज्ञाता) हो, उसे ब्रह्मा बनाना चाहिये।

अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात् । —ऐतरेय ब्रा० ५।३३

ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है।

अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इत्यनया त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् ॥ —शतपथ ब्रा० ११।५।८।७

वेदों के पूर्ण ज्ञान (त्रिविध विद्या) से ही मनुष्य ब्रह्मा पद के योग्य बनता है।

व्याकरण शास्त्र के कतिपय स्थलों पर ऐसे उल्लेख हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वेद का अध्ययन-अध्यापन भी स्त्रियों का कार्यक्षेत्र रहा है। देखिये—

"इङश्च" ३।३।२१ के महाभाष्य में लिखा है—

"उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याया"

अर्थात् जिनके पास आकर कन्यायें वेद के एक भाग तथा वेदांगों का अध्ययन करें, वह उपाध्यायी या उपाध्याया कहलाती है।

मनु ने भी उपाध्याय के लक्षण यही बताये हैं -

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थम् उपाध्यायः स उच्यते ॥ — मनु० २।१४१

जो वेद के एक देश या वेदांगों को पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहा जाता है और जो—

आचार्यादणत्वम् । —अष्टाध्यायी ४।१।४९

इस सूत्र पर सिद्धान्त कौमुदी में कहा गया है—

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी पुंयोग इत्येव आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ।

अर्थात् जो स्त्री वेदों का प्रवचन करने वाली हो, उसे आचार्या कहते हैं।

आचार्य के लक्षण मनुजी ने इस प्रकार बतलाये हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ - मनु० २।१४०

"जो शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके कल्प सहित, रहस्य सहित वेद पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं।"

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त शर्मा ने सिद्धान्त कौमुदी का सम्पादन करते हुए इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है—

"इति वचनेनापि स्त्रीणां वेदाध्ययनाधिकारो ध्वनितः ।"

अर्थात्—इससे स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार सूचित होता है।

उपर्युक्त प्रमाणों को देखते हुए पाठक यह विचार करें कि "स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं" कहना कहाँ तक उचित है ?

क्या स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं ?

[illegible]

[illegible]

"उदसौ सूर्यो अगाद् उदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः॥
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी,
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥"
"मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥" —ऋग्वेद [illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible] —यजुर्वेद [illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible] —[illegible]

[illegible]

वेदोऽसि [illegible] वेदो मे विन्द विदेन।
[illegible]
वेदो मानं रक्षतु मे वेदो वीरं रक्षतु मे। —[illegible] संहिता [illegible]

[illegible]

[illegible]

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥ —ऋग्वेद [illegible]

[illegible]

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org

स्त्रियों के मुख से वेद मन्त्रों के उच्चारण के उनके अधिकारों प्रमाण भरे पड़े हैं। शतपथ ब्राह्मण १४।१।४।१६ में यजुर्वेद के १।३७।२० मन्त्र "आयुष्मानमाना स्तोत्र" इस मन्त्र का पत्नी द्वारा उच्चारण करने का विधान है।

शतपथ के १।९।२।२३ में स्त्री द्वारा यजुर्वेद के २।२१ मन्त्रों के उच्चारण का आदेश है।

तैत्तिरीय संहिता के १।१।१० "सुप्रजासस्त्वा वयं" आदि मन्त्रों को पत्नी द्वारा बुलवाने का आदेश है।

आश्वलायन गृह्य सूत्र १।१।९ के 'पतिलोकमविदि युक्ता......' में भी इसी प्रकार यजमान की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी, पुत्र अथवा कन्या को यज्ञ करने का आदेश है।

काठक गृह्य सूत्र ३।१।३० एवं २७।३ में स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन, मन्त्रोच्चारण एवं वैदिक कर्मकाण्ड करने का प्रतिपादन है। पौराणिक गाथाओं की कथाओं में भी ऐसे प्रमाण मौजूद हैं।

पारस्कर गृह्य सूत्र १।५।१,२ के अनुसार विवाह के समय कन्या लाजाहोम के मन्त्रों को स्वयं पढ़ती है। पूर्व दर्शन के समय भी वह यजुर्वेद के ११।१२४ मन्त्र 'लाजानावपन्ती' को स्वयं ही उच्चारण करती है। विवाह के समय 'समञ्जन' करते समय वर वधू दोनों साथ साथ 'समञ्जन्तु विश्वेदेवाः......' इस ऋग्वेद १०।८५।४७ के मन्त्र को पढ़ते हैं।

ताण्ड्य ब्राह्मण ५।६।८ में युद्ध में स्त्रियों को वीणा लेकर, सामवेद के मन्त्रों का गान करने का आदेश है तथा ५।६।१५ में स्त्रियों के कलश उठाकर वेद मन्त्रों का गान करते हुए परिक्रमा करने का विधान है।

ऐतरेय ५।५।२९ में कुमारी गन्धर्व गृहीता का उपाख्यान है, जिससे यज्ञ के गूढ़ एवं वेदाधिकार का स्पष्टीकरण हुआ है।

कात्यायन श्रौतसूत्र १।१।७; ४।१।२२ तथा २०।६।१२ आदि में ऐसे स्पष्ट आदेश हैं कि अमुक वेद मन्त्रों का उच्चारण स्त्री करे।

लाट्यायन श्रौत सूत्र ३।३।१३ में स्त्री द्वारा सामवेद के मन्त्रों के गायन का विधान है। शांखायन श्रौत सूत्र के १।१२।१३ में तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र १।११।१ में इसी प्रकार के वेद मन्त्रोच्चारण के आदेश हैं। मन्त्र ब्राह्मण के १।२।३ में कन्या द्वारा वेद मन्त्र के उच्चारण की आज्ञा है।

नीचे कुछ मन्त्रों में नववधू को वेद का पारंगत होने के लिये विशेष आदेश दिया है—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज॥ —अथर्व. १४।१।६४

हे वधू! तुम्हारे आगे, पीछे, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहे। वेद ज्ञान को प्राप्त करके तदनुसार तुम अपना जीवन बनाओ। मंगलमयी, सुखदायिनी एवं स्वस्थ होकर पति के घर में विराजमान और अपने सद्गुणों से प्रकाशमान हो।

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा।
ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥ —यजुर्वेद १४।२

हे स्त्री! तुम कुलवती घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का उचित उपयोग करने वाली, तेजस्विनी, बुद्धिमती, सत्कर्म करने वाली होकर सुखपूर्वक रहो। तुम ऐसी गुणवती और विदुषी बनो कि रुद्र और वसु भी तेरी प्रशंसा करें। सौभाग्य की प्राप्ति के लिये इन वेद मन्त्रों के अमृत का बार-बार भली प्रकार पान करो। विद्वान् तुम्हें शिक्षा देकर इस प्रकार की उच्च स्थिति पर प्रतिष्ठित करावें।

यह सर्वविदित है कि यज्ञ बिना वेद मन्त्रों के नहीं होता और यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का सम्मिलित रहना आवश्यक है। रामचन्द्र जी ने सीता जी की अनुपस्थिति में सोने की प्रतिमा रखकर यज्ञ किया था। ब्रह्माजी को भी सावित्री की अनुपस्थिति में द्वितीय पत्नी का वरण करना पड़ा था, क्योंकि यज्ञ की पूर्ति के लिये पत्नी की उपस्थिति आवश्यक थी। जब ऐसी बात आती है, तो उसे वेदाधिकार न होने की बात किस प्रकार कही जा सकती है? देखिये—

अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः । —तैत्तिरीय ब्रा० २।२।२।६

अर्थात्—बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होता है।

अथो अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी । —तैत्तिरीय ब्रा० ३।३।३।५

अर्थात्—पत्नी पति की अर्धांगिनी है, अतः उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है—

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।
देवासो नित्ययाऽऽशिरा । —ऋग्वेद ८।३१।५

हे विद्वानो! जो पति-पत्नी एक मन होकर यज्ञ करते हैं और ईश्वर की उपासना करते हैं।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो..........
गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्तः समूहसि । .... —ऋग्वेद १।१३१।३

हे परमात्मन्! आपके निमित्त यजमान, पत्नी सहित यज्ञ करते हैं। आप उन लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं। अतएव वे मिलकर यज्ञ करते हैं।

अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च ।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं बलिकर्म च नैत्यिकम् ॥ —स्मृति रत्न

पत्नी प्रतिदिन अग्निहोत्र, सन्ध्योपासना, बलि वैश्व आदि नित्य कर्म करे। यदि पुरुष न हो, तो अकेली स्त्री को भी यज्ञ का अधिकार है। देखिये—

होमे कर्त्तारः स्वासंभवात्रत्यथावे पत्न्यादयः । — गदाधराचार्य

होम करने में पहले स्वयं यजमान का स्थान है। वह न हो तो पत्नी, पुत्र आदि करें।

पत्नी कुमारः पुत्रो वा शिष्यो वाऽपि यथाक्रमम् ।
पूर्वपूर्वस्य चाभावे विदध्यादुत्तरोत्तरः ॥ —प्रयोग रत्न स्मृति

यजमानः प्रधानः स्यात् पत्नी पुत्रश्च कन्यका ।
ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ॥ —स्मृत्यर्थसार

उपर्युक्त दोनों श्लोकों का भावार्थ यह है कि यजमान हवन के समय किसी कारण से उपस्थित न हो सके, तो उसकी पत्नी, पुत्र, कन्या, शिष्य, गुरु, भाई आदि कर लें।

प्राहुरप्युत्तमस्त्रीणाम् अधिकारं तु वैदिके ।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्याश्च तथाऽपराः ॥ —व्योम संहिता

श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसे ही अधिकार है, जैसे कि उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था।

अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च । — स्मृतिरत्न (कुल्लूक भट्ट)

इस श्लोक में यज्ञोपवीत एवं सन्ध्योपासना का स्पष्ट विधान है।

या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाचारैः संयुता शुभा ।
सा च मन्त्रान् प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ॥ —भविष्य पुराण उत्तरपर्व ४।१३।६२

उत्तम आचरण वाली विधवा भी वेद-मन्त्रों को ग्रहण करे और सधवा भी अपने पति की अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे।

यथाधिकारः श्रौतेषु योषितां कर्मसु श्रुतः ।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिताम् ॥ —यमस्मृति

जिस प्रकार स्त्रियों को वेद के कर्मों में अधिकार है, वैसे ही ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का भी अधिकार है।

[illegible] गायत्री [illegible] कथा ।
[illegible] की आहुतिरिह प्रवेश ॥ —[illegible]

[illegible] और [illegible] को जानने वाली थी, वैसे ही सब किसी को [illegible]

[illegible] सीता, तारा और ऋषियों द्वारा [illegible] का उपासना, अग्निहोत्र, [illegible]

[illegible] भूयसेध्यति जानकी ।
[illegible] सन्ध्यार्थं वरवर्णिनी ॥ —[illegible]

[illegible] नदी के तट पर सन्ध्या करने अवश्य आवेगी ।

[illegible] हुताग्निप्रदक्षिणम् । —[illegible]

[illegible]

[illegible] की प्रत्युवाच ह । —[illegible]

[illegible]

[illegible] विप्रं [illegible] ।
[illegible] कृतमंगला ॥ —[illegible]

[illegible] मंगलकारिणी कौशल्या [illegible] अग्निहोत्र कर रही थी ।

[illegible] सिद्धयेविणी ।
[illegible] प्रविष्टा शोकमोहिता ॥ —[illegible]

[illegible] की विजय के लिये [illegible] के मंत्रों का पाठ करके [illegible]

[illegible] ने और भी उसके प्रस्तों में इसोल्लेख किया है । [illegible] की उपासना का विधान किया गया है ।

[illegible]
[illegible] कथा ॥ —[illegible]

[illegible] गायत्री का उपदेश हुआ था ।

[illegible] शर्वीत, [illegible] पुनः [illegible] । —[illegible]

यदि [illegible] के साथ १०८ मंत्र गायत्री [illegible]

[illegible] का अधिकार नहीं, तो दुराग्रह या कुसंस्कार ही [illegible]

[illegible] और लांछन क्यों ?

गायत्री [illegible] हैं, [illegible] जिस दृष्टि से हम देखते हैं, [illegible] है, जो [illegible] है ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. [illegible]

स्नेह, वात्सल्य, करुणा, दया, ममता, उदारता, कोमलता आदि गुण नारी में नर की अपेक्षा स्वभावतः अधिक होते हैं। ब्रह्म का अर्थ मातृत्व, माता रूप अधिक कोमल, आकर्षक एवं शीघ्र द्रवीभूत होने वाला है। इसीलिये अनादिकाल से ऋषि लोग ईश्वर की मातृ भावना के साथ उपासना करते रहे हैं और उन्होंने प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को इसी सुगम, सरल एवं शीघ्र सफल होने वाली साधना प्रणाली को अपनाने का आदेश दिया है। गायत्री उपासना प्रत्येक भारतीय का धार्मिक नित्य कर्म है। सन्ध्यावन्दन किसी भी पद्धति से किया जाए, उसमें गायत्री का होना आवश्यक है। विशेष लौकिक या पारलौकिक प्रयोजन के लिये विशेष रूप से गायत्री की उपासना की जाती है, पर उतना न हो सके, तो नित्य कर्म की साधना तो दैनिक कर्त्तव्य है, उसे न करने से धार्मिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने का दोष लगता है।

कन्या और पुत्र दोनों ही ब्रह्म की सन्तान हैं। ईश्वर के नर और नारी दोनों दुलारे हैं। कोई भी निष्पक्ष और न्यायशील माता-पिता अपने बालकों में इसलिये भेदभाव नहीं करते कि वे कन्या हैं या पुत्र हैं। ईश्वर ने धार्मिक कर्त्तव्यों एवं आत्म-कल्याण के साधनों की नर और नारी दोनों को ही सुविधा दी है। यह समता, न्याय और निष्पक्षता की दृष्टि से उचित है, तर्क और प्रमाणों से सिद्ध है। इस सीधे-सादे तथ्य में कोई विघ्न डालना अनुचित ही होगा।

मनुष्य की समझ बड़ी विचित्र है। उसमें कभी-कभी ऐसी बातें भी घुस जाती हैं, जो सर्वथा अनुचित एवं अनावश्यक होती हैं। प्राचीन काल में नारी जाति का समुचित सम्मान रहा, पर एक समय ऐसा भी आया जब नारी जाति को सामूहिक रूप से हेय, पतित, त्याज्य, पातकी, अनधिकारी व घृणित ठहराया। उस विचारधारा ने नारी के मनुष्योचित अधिकारों पर आक्रमण किया और पुरुष की श्रेष्ठता एवं सुविधा को पोषण करने के लिये उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाकर शक्तिहीन, साहसहीन, विद्याहीन बनाकर इतना सुन्न-सुप्त कर दिया है कि बेचारी को समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकना तो दूर आत्म-रक्षा के लिये भी दूसरों का मोहताज होना पड़ा। आज भारतीय नारी, पालतू पशु-पक्षियों जैसी स्थिति में पहुँच गयी है। इसका कारण वह उल्टी समझ ही है, जो मध्यकाल के सामन्तशाही अन्धकार के साथ उपजी हुई थी। प्राचीन काल में भारतीय नारी सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समकक्ष थी। रथ के दोनों पहिये ठीक होने से समाज की गाड़ी ठीकता से चल रही थी, पर अब एक पहिया अति विकृत हो जाने से दूसरा पहिया भी लड़खड़ा गया। अयोग्य नारी समाज का भार नर को ढोना पड़ रहा है। इस अव्यवस्था ने हमारे देश और जाति को कितनी क्षति पहुँचाई है, उसकी कल्पना करना भी कष्टसाध्य है।

मध्यकालीन अन्धकार युग की कितनी ही कुरीतियों को सुधारने के लिये विवेकशील और दूरदर्शी महापुरुष प्रयत्नशील हैं यह प्रसन्नता की बात है। विज्ञ पुरुष अनुभव करते जाते हैं कि मध्यकालीन संकीर्णता की लौह-शृंखला से नारी को न खोला गया, तो हमारा राष्ट्र प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता। पूर्वकाल में नारी जिस सम्मान स्थिति में थी, उस स्थिति में पुनः पहुँचने से हमारा आधा अंग विकसित हो सकेगा और तभी हमारा सर्वांगीण विकास हो सकेगा। इन शुभ प्रयत्नों में मध्यकालीन कुमान्यताओं की रूढ़ियों का अन्धानुकरण करने को ही धर्म समझ बैठने वाली विचारधारा अब भी रोड़े अटकाने से नहीं चूकती।

ईश्वर-भक्ति, गायत्री की उपासना तक के बारे में यह कहा जाता है कि स्त्रियों को अधिकार नहीं। इसके लिये कई पुस्तकों के श्लोक भी प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनमें यह कहा है कि स्त्रियाँ वेद-मन्त्रों को न पढ़ें, न सुनें, क्योंकि गायत्री भी वेद मन्त्र है, इसलिये स्त्रियाँ उसे न अपनायें। इन प्रमाणों से हमें कोई विरोध नहीं, क्योंकि एक काल भारतवर्ष में ऐसा बीता है, जब नारी को निकृष्ट कोटि के जीव की तरह समझा गया है। यूरोप में तो उस समय यह मान्यता थी कि पशु-पक्षी की तरह स्त्रियों में भी आत्मा नहीं होती। यहाँ भी उनसे मिलती-जुलती ही मान्यता हो गयी थी। कहा जाता था कि—

निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः। —मनु० ९।१८

अर्थात्—स्त्रियाँ निरिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित), मन्त्ररहित, असत्य स्वरूपिणी एवं दूषित हैं। स्त्री को ढोल, गँवार, शूद्र और पशु की तरह पिटने योग्य ठहराने वाले विचारकों का कथन था कि—

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते॥ —मनु० ९/१५

अर्थात्—स्त्रियाँ स्वभावतः ही व्यभिचारिणी, चंचल चित्त, प्रेम-शून्य होती हैं। उनकी बड़ी होशियारी के साथ देखभाल रखनी चाहिये।

विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी।
द्वारं किमेकं नरकस्य नारी॥
विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा।
नार्या पिशाच्या न च वंचितो यः॥ —शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी से

प्रश्न-विश्वास करने योग्य कौन नहीं है? उत्तर-नारी। प्रश्न-नरक का एक मात्र द्वार क्या है? उत्तर-नारी। प्रश्न-बुद्धिमान् कौन है? उत्तर-जो नारी रूपी पिशाचिनी से नहीं ठगा गया।

जब स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता फैली हुई हो तो उन पर वेद-शास्त्रों से, धर्म-कर्तव्यों से, ज्ञान-उपार्जन से वंचित रहने का प्रतिबन्ध लगाया गया हो, तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। इस प्रकार के प्रतिबन्ध सूचक अनेक श्लोक उपलब्ध भी होते हैं।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। —भागवत

अर्थात्—स्त्री, शूद्र और नीच ब्राह्मणों को वेद सुनने का अधिकार नहीं।

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥ —मनु० २।६६

अर्थात्—स्त्रियों के जातकर्मादि सब संस्कार बिना वेद मन्त्रों के करने चाहिये।

यज्ञेशं प्रति स्त्रीशूद्ररहिताः सर्वे वेदाधिकारिणः। —सायण

स्त्री और शूद्रों को वेद का अधिकार नहीं है।

वेदेऽनधिकारात्। —शंकराचार्य

स्त्रियाँ वेद की अधिकारिणी नहीं हैं।

अध्ययन रहितया स्त्रिया तदनुष्ठानमशक्य-
त्वात् तस्मात् पुंस एवोपाध्यायादिकम्॥

स्त्री अध्ययन रहित होने के कारण यज्ञ में मन्त्रोच्चार नहीं कर सकती, इसलिये केवल पुरुष मन्त्र पाठ करें।

'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्।'

अर्थ-स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें।

'न वै कन्या न युवतिः।'

अर्थ- न कन्या पढ़े, न स्त्री पढ़े।

इस प्रकार की स्त्रियों को धर्म, ज्ञान, ईश्वर उपासना और आत्म-कल्याण से रोकने वाले प्रतिबन्धों को कई भोले मनुष्य 'सनातन' मान लेते हैं और उनका समर्थन करने लगते हैं। ऐसे लोगों को जानना चाहिये कि प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के प्रतिबन्ध कहीं नहीं हैं, वरन् उसमें तो स्त्रियों की महत्ता का वर्णन है और उन्हें भी पुरुष जैसे ही धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं। यह प्रतिबन्ध तो कुछ काल तक कुछ व्यक्तियों की एक सनक के प्रमाण मात्र हैं। ऐसे लोगों ने धर्मग्रन्थों में जहाँ-तहाँ अनर्गल श्लोक ठूँसकर अपनी सनक को प्राचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

भगवान् मनु ने नारी जाति की महत्ता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए लिखा है—

Disclaimer / Warning:

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ —मनु० ९।२६
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥ —मनु० ९।२८
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ —मनु० ३।५६

अर्थात्—स्त्रियाँ पूजा के योग्य हैं, महाभाग हैं, घर की दीप्ति हैं। कल्याणकारिणी हैं। धर्म कार्यों की सहायिका हैं। स्त्रियों के अधीन ही स्वर्ग है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनका तिरस्कार होता है, वहाँ सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

जिन मनु भगवान् की श्रद्धा स्त्री जाति के प्रति इतनी उच्चकोटि की थी, उन्हीं के ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ स्त्रियों को वेदोक्त शिक्षा और उनकी धार्मिक सुविधा का निषेध है। मनु जैसे महापुरुष ऐसी परस्पर विरोधी बातें नहीं लिख सकते। विदित होता है कि उनके ग्रन्थों में पीछे वाले लोगों ने मिलावट की है। इस मिलावट के प्रमाण भी मिलते हैं। देखिये—

मान्या कापि मनुस्मृतिस्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः।
सा लुप्तैव विधेर्वशात्क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम्॥
क्षोणीन्द्रो मदनः सहारणसुतो देशान्तरादाहृतैः।
जीर्णोद्धारमचीकरत् तत इतस्तत्पुस्तकैर्लिख्यते॥
—मेधातिथिरचित मनुभाष्य संशोधक मनुस्मृत्युपोद्घात

अर्थात्—प्राचीन काल में कोई प्रामाणिक मनुस्मृति थी और उसकी मेधातिथि ने उचित व्याख्या की थी। दुर्भाग्यवश वह पुस्तक लुप्त हो गयी, तब राजा मदन ने इधर-उधर की पुस्तकों से उसका जीर्णोद्धार कराया।

केवल मनुस्मृति का यह जीर्णोद्धार अधिकारित नहीं है, वरन् अन्य ग्रन्थों में भी ऐसी ही मिलावटें की गयी हैं और अपनी रचनाओं को शास्त्र विरुद्ध होते हुए भी "शास्त्र-वचन" सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा, कृते युगे भारते षट्सहस्र्याम्। निष्कास्य कांश्चिन्नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥ —गरुड पुराण ब्रह्मकाण्ड १।५९

"राक्षस लोग कलियुग में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर महाभारत के छः हजार श्लोकों में से अनेक श्लोकों को निकाल देंगे और उनके स्थान पर नये कृत्रिम श्लोक गढ़कर प्रवेश कर देंगे।" यही बात माध्वाचार्य ने इस प्रकार कही है—

क्वचित् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि।
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यासं प्रमादात् क्वचिदन्यथा॥
अनुत्सन्ना अपि ग्रन्था व्याकुला इति सर्वशः।

"स्वार्थी लोग कहीं ग्रन्थों के वचनों को प्रक्षिप्त कर देते हैं, कहीं निकाल देते हैं, कहीं जान-बूझकर, कहीं प्रमाद से उन्हें बदल देते हैं, इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थ बड़े अस्त-व्यस्त हो गये हैं।"

जिन दिनों यह मिलावट की जा रही थी, उन दिनों भी विचारवान् विद्वानों ने इस गड़बड़ी का डटकर विरोध किया था, महर्षि हारीत ने इस बारे में ऐसी ऊल-जलूल उक्तियों का घोर विरोध करते हुए कहा था—

न शूद्रसमाः स्त्रियः। नहि शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रिय-
वैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः॥ —हारीत

"स्त्रियाँ शूद्रों के समान नहीं हो सकतीं। शूद्र-योनि से भला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है? इसलिए स्त्रियों को वेद द्वारा संस्कृत (संस्कार) करना चाहिये।"

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

नर और नारी एक ही रथ के दो पहिये हैं, एक ही शरीर की दो भुजायें हैं, एक ही मुख के दो नेत्र हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनों अंगों के मिलन से एक पूर्ण अंग बनता है। मानव जाति के अविच्छिन्न दो भागों में इस प्रकार की असमानता, हिंसा, ऊँच-नीच की भावना पैदा करना भारतीय परम्परा के सर्वथा विपरीत है। भारतीय धर्म में सदा नर-नारी को एक-दूसरे का अविच्छिन्न अंग माना है—

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। —मनु० ९।१३०

"आत्मा के समान ही सन्तान है। जैसा पुत्र वैसी ही कन्या, दोनों समान हैं।"

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना॥ —मनु० ९।४५

"पुरुष अकेला नहीं होता, किन्तु स्वयं पत्नी और सन्तान मिलकर पुरुष बनता है।"

अर्धो अर्द्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी।

अर्थात्—पत्नी पुरुष का आधा अंग है।

ऐसी दशा में यह उचित नहीं कि नारी को प्रभु की वाणी वेदज्ञान से वंचित रखा जाए। अन्य मन्त्रों की तरह गायत्री का भी उसे पूरा अधिकार है। ईश्वर को हम नारी के रूप में, गायत्री के रूप में उपासना करें और फिर नारी जाति को ही घृणित, पतित, अस्पृश्य, अनधिकारिणी ठहरावें, यह कहाँ तक उचित है—इस पर हमें स्वयं ही विचार करना चाहिये।

स्त्रियों को वेदाधिकार से वंचित रखने तथा उन्हें उसकी अनधिकारिणी मानने से इसके समानाधिकार में एक प्रकार की हीनभावना पैदा हो जाती है, जिसका दुष्परिणाम पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास पर पड़ता है। जो हो, वर्तमान समय में अधिकांश पुरुष भी वेदों से अपरिचित हैं और उनके अध्ययन में उत्साह नहीं करते रहते हैं, पर स्त्री समुदाय को सिद्धान्त रूप से अनधिकारी घोषित कर देने पर उसका दुष्परिणाम ही दिखाई देता है। इसलिये विचारशीलों को उनकी बात का सम्मान न करके स्त्रियों के प्रति किये गये अन्याय का अवश्य ही निराकरण करना चाहिये।

वेद द्वारा स्त्रियों के लिये है—नर नारी सभी के लिये है। ईश्वर अपनी सन्तान को जो संदेश देता है, उसे पुत्रों का अधिकार समझना, ईश्वर के प्रति द्रोह करना है। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं—

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ —ऋग्वेद १०।१९१।३

अर्थात्—हे स्त्री पुरुषो! तुम्हारे लिये ये मन्त्र समान रूप से दिये गये हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो। तुम्हारी सभायें सबके लिये समान रूप से खुली हुई हों, तुम्हारा मन और चित्त समान विचार वाला हो, मैं तुम्हें समान रूप से मन्त्रों का उपदेश करता हूँ और समान रूप से ग्रहण करने योग्य पदार्थ देता हूँ।

मालवीयजी द्वारा निर्णय

स्त्रियों को वेद-मन्त्रों का अधिकार है या नहीं? इस प्रश्न को लेकर काशी के पण्डितों में पर्याप्त विवाद हो चुका है। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में कुमारी कल्याणी नामक छात्रा वेद कक्षा में प्रविष्ट होना चाहती थी, पर सनातन परम्परा के आधार पर विश्वविद्यालय ने उसे दाखिल करने से इन्कार कर दिया। अधिकारियों का कथन था कि शास्त्रों में स्त्रियों को वेद-मन्त्रों का अधिकार नहीं दिया गया है।

इस विषय को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में बहुत दिन विवाद चला। वेदाधिकार के समर्थन में "सार्वदेशिक" पत्र ने कई लेख छापे और विरोध में काशी के "सिद्धान्त" पत्र में कई लेख प्रकाशित हुए। आर्य समाज की ओर से एक डेपुटेशन हिन्दू विश्व-विद्यालय के अधिकारियों से मिला। देश भर में इस प्रश्न को लेकर काफी चर्चा हुई।

अन्त में विश्वविद्यालय ने महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में इस प्रश्न पर विचार करने के लिये

एक कमेटी नियुक्त की, जिसमें अनेक धार्मिक विद्वान् सम्मिलित किये गये। कमेटी ने इस सम्बन्ध में शास्त्रों का गम्भीर विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदाधिकार है। इस निर्णय को घोषणा २२ अगस्त सन् १९४६ को सनातन धर्म के प्राण समझे जाने वाले महामना मालवीय जी ने की। तदनुसार कुमारी कल्याणी देवी को हिन्दू विश्वविद्यालय की वेद कक्षा में दाखिल कर लिया गया और शास्त्रीय आधार पर निर्णय किया कि—विद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा। स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति वेद पढ़ सकेंगी।

महामना मालवीय जी तथा उनके सहयोगी अन्य विद्वानों पर कोई सनातन धर्म विरोधी होने का सन्देह नहीं कर सकता। सनातन धर्म में उनकी आस्था प्रसिद्ध है। ऐसे लोगों द्वारा इस प्रश्न को सुलझा दिये जाने पर भी जो लोग गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं और कहते हैं कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं है, उनकी बुद्धि के लिए क्या कहा जाय ? समझ में नहीं आता।

पं. मदनमोहन मालवीय सनातन धर्म के प्राण थे। उनकी शास्त्रज्ञता, विद्वत्ता, दूरदर्शिता एवं धार्मिक दृढ़ता असन्दिग्ध थी। ऐसे महापण्डित ने अन्य अनेकों धार्मिक विद्वानों के परामर्श से स्वीकार किया है, उस निर्णय पर भी जो लोग संदेह करते हैं, उनकी हठधर्मी को दूर करना किसी ब्रह्माजी के लिये भी कठिन है।

खेद है कि ऐसे लोग समय की गति को भी नहीं देखते, हिन्दू समाज की गिरती हुई संख्या और शक्ति पर भी ध्यान नहीं देते, केवल दस-बीस अविश्वस्त या मिलावटी श्लोकों को लेकर देश तथा समाज का अहित करने पर उतारू हो जाते हैं। प्राचीन भारत की अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम अभी तक संसार में प्रसिद्ध हैं, वेदों में बीसियों ऋषि-ऋषिकाओं का उल्लेख मन्त्र द्रष्टिका के रूप में लिखा मिलता है, पर ऐसे लोग उधर दृष्टिपात न करके मध्यकाल के ऋषियों के नाम पर स्वार्थी लोगों द्वारा लिखी पुस्तकों के आधार पर समाज सुधार के पुनीत कार्य में व्यर्थ ही टाँग अड़ाया करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की उपेक्षा करके वर्तमान युग के ऋषि मालवीय जी की सम्मति का अनुसरण करना ही समाज-सेवकों का कर्तव्य है।

स्त्रियाँ अनधिकारिणी नहीं हैं

पिछले पृष्ठों पर शास्त्रों के आधार पर जो प्रमाण उपस्थित किये गये हैं, पाठक उनमें से हर एक पर विचार करें। हर विचारवान् को यह सहज ही प्रतीत हो जायेगा कि वेद-शास्त्रों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है जो धार्मिक कार्यों के लिये, सद्ज्ञान उपार्जन के लिये वेद-शास्त्रों का अध्ययन-मनन करने के लिये रोकता हो। हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है, विश्व धर्म है। इसमें ऐसी विचारधारा के लिये कोई स्थान नहीं है, जो स्त्रियों को धर्म, ईश्वर, वेद, विद्या आदि के उत्तम मार्ग से रोककर उन्हें अज्ञान अवस्था में पड़े रहने के लिये विवश करे। नारी मात्र पर अगाध श्रद्धा एवं करुणा रखने वाले ऋषि-मुनि ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते, जो ईश्वरीय ज्ञान वेद से स्त्रियों को वंचित रखकर उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने से रोकें। हिन्दू धर्म अत्यधिक उदार है, विशेषतः स्त्रियों के लिये तो उसमें बहुत ही आदर, श्रद्धा एवं उच्च स्थान है। ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि गायत्री उपासना जैसे उत्तम कार्य के लिये उन्हें अयोग्य घोषित किया जाए ?

जहाँ तक दस-पाँच ऐसे भी श्लोक मिलते हैं, जो स्त्रियों को वेद-शास्त्र पढ़ने से रोकते हैं। पण्डित समाज में इन पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रारम्भ में बहुत समय तक हमारी भी ऐसी ही मान्यता रही कि स्त्रियाँ वेद न पढ़ें। परन्तु जैसे-जैसे प्राचीन ग्रन्थों में अधिक गहरा प्रवेश करने का अवसर मिला, वैसे-वैसे पता चला कि प्रक्षिप्त श्लोक 'मध्यकालीन' सामन्तवादी मान्यता के प्रतिबिम्ब हैं। उसी समय में इस प्रकार के श्लोक बना-बनाकर ग्रन्थों में मिला दिये गये हैं। सत्य सनातन वैदिक भारतीय धर्म की वास्तविक विचारधारा स्त्रियों पर कोई बन्धन नहीं लगाती। इसमें पुरुषों की भाँति ही स्त्रियों को भी ईश्वर-उपासना एवं वेदशास्त्रों का आश्रय लेकर आत्म-लाभ करने की पूरी-पूरी सुविधा है।

प्रतिष्ठित गणमान्य विद्वानों की भी ऐसी ही सम्मति है। साधना और योग की प्राचीन परम्पराओं को जानकर

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright/s or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

महात्माओं का कथन भी यही है कि स्त्रियाँ सदा से ही गायत्री की अधिकारिणी रही हैं। स्वर्गीय मालवीय जी सनातन धर्म के प्राण थे, पहले उनके हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ाने की रोक थी, पर जब उन्होंने विशेष रूप से पण्डित मण्डली के सहयोग से इस सम्बन्ध में स्वयं खोज की, तो वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शास्त्रों में स्त्रियों के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उन्होंने रूढ़िवादी लोगों के विरोध की तनिक भी परवाह न करते हुए हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ाने की खुली व्यवस्था कर दी।

अब भी कई मनुष्य यह कहते रहते हैं कि— "स्त्रियों को वेद या गायत्री का अधिकार नहीं है।" ऐसे लोगों की आँखें खोलने के लिये सर्वोत्तम प्रमाणों में से ऐसे कुछ थोड़े से उद्धरण इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये हैं। सम्भव है अज्ञान के कारण ही स्त्रियों का विरोध रहा हो। दुराग्रह से कभी किसी विवाद का अन्त नहीं होता। अपनी ही बात को सिद्ध करने के लिये हठ करना अनुचित है। विवेकवान् व्यक्तियों का सदा यह सिद्धान्त रहता है कि 'जो सत्य सो हमारा।' अविवेकी मनुष्य 'जो हमारा सो सत्य' सिद्ध करने के लिये वितण्डा खड़ा करते हैं।

विचारवान् व्यक्तियों को अपने मन में एकान्त में बैठकर यह प्रश्न करना चाहिये—(१) यदि स्त्रियों को गायत्री या वेद-मन्त्रों का अधिकार नहीं, तो प्राचीनकाल में स्त्रियाँ वेदों की मन्त्र द्रष्टा—ऋषिकाएँ क्यों हुईं? (२) यदि वेद की वे अधिकारिणी नहीं, तो यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों तथा षोडश संस्कारों में उन्हें सम्मिलित क्यों किया जाता है? (३) विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों के मुख से वेद-मन्त्रों का उच्चारण क्यों कराया जाता है? (४) बिना वेद-मन्त्रों के नित्य सन्ध्या और हवन स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं? (५) यदि स्त्रियाँ अनधिकारिणी थीं, तो अनसूया, अहल्या, अरुन्धती, मदालसा आदि असंख्य स्त्रियाँ वेद शास्त्रों में पारंगत कैसे थीं? (६) ज्ञान, धर्म और उपासना के स्वाभाविक अधिकारों से नारी को वंचित करना क्या अन्याय एवं पक्षपात नहीं है? (७) जब स्त्री को आध्यात्मिक दृष्टि से अयोग्य ठहराकर उनसे उत्पन्न होने वाली सन्तान धार्मिक हो सकती है? (८) जब स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है, तो आधा अंग अधिकारी और आधा अनधिकारी किस प्रकार हुआ?

इन प्रश्नों पर विचार करने से हर एक निष्पक्ष व्यक्ति की अन्तरात्मा यही उत्तर देगी कि स्त्रियों पर धार्मिक अयोग्यता का प्रतिबन्ध लगाना किसी प्रकार न्याय संगत नहीं हो सकता। उन्हें भी गायत्री आदि मन्त्रों का पुरुषों की भाँति ही अधिकार होना चाहिये। हम भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। हमारा ऐसी सैकड़ों स्त्रियों से परिचय है, जिन्होंने श्रद्धापूर्वक वेदमाता गायत्री की उपासना की है और पुरुषों के ही समान सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त किये हैं। कई बार तो उन्हें पुरुषों से भी अधिक एवं शीघ्र सफलताएँ मिलीं। उन्होंने इसका घर-घर प्रचार करके भी, सधवायें पति का सुख सौभाग्य एवं सुसन्तति के सम्बन्ध में और विधवायें शोक तथा धन उपार्जन में आशा-जनक सफलता हुई हैं।

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। वह विशुद्ध ब्रह्म ज्योति की चिनगारी है। आत्मिक सफलता प्राप्त करने के लिये जैसे पुरुष को किसी गुरु या पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, वैसे ही स्त्री को भी होती है। तात्पर्य यह है कि साधना क्षेत्र में पुरुष स्त्री का भेद नहीं। साधक 'आत्मा' है, इसे अपने को पुरुष-स्त्री न मानकर आत्मा समझना चाहिये। साधना क्षेत्र में सभी आत्मायें समान हैं। लिंग भेद के कारण कोई अयोग्यता उन पर नहीं थोपी जानी चाहिये।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री में धार्मिक रुचि की मात्रा अधिक होती है। पुरुषों पर बुद्धि तत्त्व एवं व्यवहार की छाया अधिक पड़ती है, जिससे कुतर्कता अधिक हो जाती है। आर्थिक कार्यों में रहने के कारण चोरी, बेईमानी आदि के अवसर भी उनके सामने आते रहते हैं, पर स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बड़ा सरल, सीधा और सात्त्विक है। घर में जो कार्य करना पड़ता है, उसमें सेवा की मात्रा अधिक रहती है। वे आत्म-त्याग करती हैं, कष्ट सहती हैं, पर बच्चों के प्रति, पतिदेव के प्रति, सास-ससुर, देवर-जेठ आदि सभी के प्रति अपने व्यवहार को सौम्य, नम्रता, सेवापूर्ण, उदार, स्नेह एवं सहिष्णु रखती हैं। उनकी दिनचर्या सतोगुणी होती है, जिसके कारण उनकी अन्तरात्मा पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र रहती है। जैसे, कलह, ईर्ष्या, चुगली, लोभ, निष्ठुरता, क्रोध, अहंकार,

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

असंयम, आलस्य आदि दुर्गुण पुरुष में ही प्रधानतया पाये जाते हैं, स्त्रियों में इस प्रकार के पाप बहुत कम देखने को मिलते हैं। भले ही चंचलता, अशिक्षा, कर्कशता, श्रम से जी चुराना आदि छोटी-छोटी बुराइयाँ उन स्त्रियों में पायी जाती हैं, परन्तु पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ निस्सन्देह अधिक सुशील और सद्गुणी हैं, उनकी बुराइयाँ अपेक्षाकृत बहुत ही सीमित हैं।

ऐसी स्थिति में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में धार्मिक प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक ही है, उनकी मनोभूमि में भक्ति का बीजांकुर अधिक जल्दी जमता और फलता-फूलता है। अवकाश रहने के कारण वे घर में पूजा-आराधना की नियमित व्यवस्था भी कर सकती हैं। अपने बालकों पर धार्मिक संस्कार अधिक अच्छी तरह से डाल सकती हैं। इन सब बातों को देखते हुए महिलाओं को धार्मिक साधना के लिये उत्साहित करने की आवश्यकता है। इसके विपरीत उन्हें नीच, अनधिकारिणी, शूद्रा आदि कहकर उनके मार्ग में रोड़े खड़े करना, निरुत्साहित करना किस प्रकार उचित है, यह समझ में नहीं आता।

महिलाओं के वेद-शास्त्र अपनाने एवं गायत्री-साधना करने के अनेकों प्रमाण धर्म-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं, उनकी ओर से आँखें बन्द करके किन्हीं दो-चार कल्पित श्लोकों को लेकर बैठना और उन्हीं के आधार पर स्त्रियों को अनधिकारिणी ठहराना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। धर्म की ओट लेकर स्वार्थ के पीछे पड़ जाने की किसी की प्रवृत्ति नहीं है, फिर किसी को इसका सुविधा हो, तो उसे अनधिकारी घोषित करके ज्ञान और उपासना का द्वार बन्द कर देना कोई विवेकशीलता नहीं है।

हमने भली प्रकार खोज, विचार, मनन और अन्वेषण करके यह पूरी तरह विश्वास कर लिया है कि स्त्रियों को पुरुषों की भाँति ही गायत्री का अधिकार है। वे भी पुरुषों की भाँति ही माता की गोदी में चढ़ने की, उसका आँचल पकड़ने की, उसका पयपान करने की पूर्ण अधिकारिणी हैं। उन्हें सब प्रकार का संकोच छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक गायत्री की उपासना करनी चाहिये। इससे उनके भव-बन्धन कटेंगे, जन्म-मरण की फाँसी से छूटेंगी, जीवनमुक्ति और स्वर्गीय शान्ति की अधिकारिणी बनेंगी। साथ ही अपने पुण्य-प्रताप से अपने परिजनों के स्वास्थ्य, सौभाग्य, वैभव एवं सुख-शान्ति की दिन-दिन वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकेंगी। गायत्री को अपनाने वाली देवियाँ सच्चे अर्थों में देवी बनती हैं, उनमें दिव्य गुणों का प्रकाश होता है, तदनुसार वे सभी उसी आदर की पात्र बनती हैं, जो उनका ईश्वर प्रदत्त जन्मजात अधिकार है।

गायत्री का शाप विमोचन और उत्कीलन का रहस्य

गायत्री मन्त्र की महिमा गाते हुए शास्त्र और ऋषि-महर्षि थकते नहीं। इसकी उत्पत्ति तथा महत्ता के संबंध में जितना कहा गया है उतना शायद ही और किसी की प्रशंसा में कहा गया हो। प्राचीनकाल में बड़े-बड़े तपस्वियों ने प्रधान रूप से गायत्री की ही उपासना करके अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। तप और साधन के लिये वे विविध विधियों से गायत्री का ही प्रयोग करते थे।

प्राचीनकाल में गायत्री गुरु मन्त्र था। आज भी गायत्री मन्त्र प्रसिद्ध है। अधिकांश मनुष्य उसे जानते हैं। अनेक मनुष्य किसी न किसी प्रकार उसको दुहराते या जपते रहते हैं अथवा किसी विशेष अवसर पर स्मरण कर लेते हैं। इतने पर भी देखा जाता है कि उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता। गायत्री जपने वालों में कोई विशेष तेज दिखाई नहीं देता। इस अवसर पर यह आशंका होने लगती है—'कहीं गायत्री की उत्पत्ति और महिमा में वर्णन करने वालों ने अत्युक्ति तो नहीं की?' कई मनुष्य आरंभ में उत्साह दिखाकर थोड़े ही दिनों में उसे छोड़ बैठते हैं, वे देखते हैं कि इतने दिन हमने गायत्री की उपासना की, पर लाभ कुछ न हुआ। फिर क्यों इसके लिये समय बर्बाद किया जाए।

कारण यह है कि प्रत्येक कार्य एक नियत विधि-व्यवस्था द्वारा पूरा होता है। चाहे जैसे, चाहे जिस काम को, चाहे जिस प्रकार करना आरम्भ कर दिया जाए, तो अभीष्ट परिणाम नहीं मिल सकता। मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कार्य होते हैं, पर होते तभी हैं जब वे उचित रीति से चलायी जाएँ। यदि कोई अनाड़ी चलाने वाला मशीन को भी हो

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org

अण्ड-बण्ड चालू कर दे तो लाभ होना तो दूर, उल्टे कारखाने के लिये तथा चलाने वाले के लिये संकट उत्पन्न हो सकता है। मोटर बेश कीमती सवारी है। उसके द्वारा एक-एक दिन में कई सौ मील की यात्रा सुखपूर्वक की जा सकती है, पर अगर कोई अनाड़ी आदमी ड्राइवर की जगह जा बैठे और चलाने की विधि तथा कल-पुर्जों के उपयोग की जानकारी न होते हुए भी उसे चलाना आरम्भ कर दे तो यात्रा तो दूर, उल्टे दुर्घटना और मोटर चलाने वालों के लिये खतरा खड़ा हो जायेगा या यात्रा निष्फल होगी। ऐसी दशा में मोटर की कीमत, उसकी शक्ति पर अविश्वास कर बैठना उचित नहीं कहा जा सकता। अनाड़ी साधकों द्वारा की गयी उपासना भी यदि निष्फल हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

जो वस्तु जितनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसकी प्राप्ति उतनी ही कठिन भी होती है। सीप-घोंघे आसानी से मिल सकते हैं, उन्हें चाहे कोई बीन सकता है, पर मोती जिन्हें प्राप्त करने हैं, उन्हें समुद्र तल तक पहुँचना पड़ेगा और इस खतरे के काम को निडरता से सम्पन्न करना पड़ेगा। कोई अजनबी आदमी गोताखोरों को मोती का खेल सहज समझ कर यों ही समुद्र तल में उतरने के लिये डुबकी लगाये, तो उसे अपनी असमर्थता के कारण असफलता पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

यों गायत्री में अन्य साधारण मंत्रों की अपेक्षा एक यह विशेषता भी है कि विधि विधि से साधना न करने पर भी साधक को कुछ हानि नहीं होती है। परिश्रम भी निष्फल नहीं जाता, कुछ न कुछ लाभ ही रहता है, पर उतना लाभ नहीं होता, जितना कि विधिपूर्वक साधना के द्वारा होना चाहिये। गायत्री की तांत्रिक उपासना में तो अविधि साधना से हानि भी होती है, पर साधारण साधना में वैसा कोई खतरा नहीं है, तो भी परिश्रम का पूरा प्रतिफल न मिलना भी तो एक प्रकार की हानि ही है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य उतावली, आलस्य, उपेक्षा के शिकार नहीं होते और साधना-मार्ग पर वैसी ही सावधानी से चलते हैं, जैसे हाथी नदी को पार करते समय थाह थाह कर धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ाता है।

कुछ औषधियाँ नियत मात्रा में लेकर नियत विधिपूर्वक तैयार करके रसायन बनायी जाएँ और नियत मात्रा में, नियत अनुपान के साथ रोगी को सेवन करायी जाएँ, तो आश्चर्यजनक लाभ होता है, परन्तु यदि उन्हीं औषधियों को चाहे जिस तरह, चाहे जितनी मात्रा में लेकर, चाहे जैसे कच्चा पक्का बना और चाहे जिस रोगी को, चाहे जितनी मात्रा में, चाहे जिस अनुपान में सेवन करा दिया जाए, तो निश्चय ही परिणाम अच्छा न होगा। वे औषधियाँ, जो विधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर आश्चर्यजनक लाभ दिखाती थीं, अविधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर निरर्थक सिद्ध होती हैं। ऐसी दशा में उन औषधियों को दोष देना न्याय संगत नहीं कहा जा सकता है। गायत्री साधना भी यदि अविधिपूर्वक की गयी है, तो वैसा लाभ नहीं दिखा सकती जैसा कि विधिपूर्वक साधना से होना चाहिये।

यत्र-कुत्र कोई अनधिकारी शक्ति का मनमाना प्रयोग न कर सके, इसलिये कलियुग के पूर्व ही गायत्री को कीलित कर दिया गया है। जो उसका उत्कीलन जानता है, वही लाभ उठा सकता है। बन्दूक का लाइसेन्स सरकार उन्हीं को देती है, जो उसके पात्र हैं। परमाणु बम का रहस्य थोड़े से लोगों तक सीमित रखा गया है, ताकि हर कोई उसका दुरुपयोग न कर सके। तिजोरी खजाने की तिजोरियों में बढ़िया चोर ताले लगे होते हैं, ताकि अनधिकारी लोग उसे खोल न सकें। इसी आधार पर गायत्री को कीलित किया गया है कि हर कोई उससे अनुपयुक्त प्रयोजन सिद्ध न कर सके।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार गायत्री को वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषियों ने शाप दिया कि—"इसकी साधना निष्फल होगी।" इतनी बड़ी शक्ति के निष्फल होने से हाहाकार मच गया, तब देवताओं ने प्रार्थना की कि इस शाप का विमोचन होना चाहिये। अन्त में ऐसा मार्ग निकाला गया कि जो शाप-विमोचन की विधि पूरी करके गायत्री साधना करेगा, उसका प्रयत्न सफल होगा और शेष लोगों का श्रम निरर्थक जायेगा। इस पौराणिक उपाख्यान में एक भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसे न जानने वाले केवल "शापमुक्तोभव" मन्त्रों को दुहराकर यह मान लेते हैं कि हमारी साधना शापमुक्त हो गयी।

वशिष्ठ का अर्थ है—"विशेष रूप से श्रेष्ठ।" गायत्री साधकों में जिन्होंने विशेष रूप से श्रम किया है, जिनके

सवा करोड़ जप किया होता है, उसे वसिष्ठ पदवी दी जाती है। रघुवंशियों के कुल गुरु सदा ऐसे ही वसिष्ठ पदवीधारी होते थे। रघु, अज, दिलीप, दशरथ, राम, लव-कुश आदि इन छः पीढ़ियों के गुरु एक वसिष्ठ नहीं वरन् अलग-अलग थे, पर उपासना के आधार पर इन सभी ने वसिष्ठ पदवी को पाया था। वसिष्ठ का शाप मोचन करने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के वसिष्ठ से गायत्री साधना की शिक्षा लेनी चाहिये, उसे अपना पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना चाहिये। कारण है कि अनुभवी व्यक्ति ही यह जान सकता है कि मार्ग में कहाँ क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं और उनका निवारण कैसे किया जा सकता है? जब बालकों को तैरने की शिक्षा किसी नये व्यक्ति को दी जाती है, तो कोई कुशल तैराक उसके साथ रहता है, ताकि कदाचित् नौसिखिया डूबने लगे तो वह हाथ पकड़कर उसे खींच ले और उसे पार लगा दे तथा तैरते समय जो भूल हो रही हो, उसे समझाता-बुझाता चला जाये। यदि कोई शिक्षक तैराक न हो और तैरना सीखने के लिये बालक व्याकुल हो रहे हों, तो कोई वृद्ध विवेकी पुरुष उन बालकों को समझाने के लिये ऐसा कह सकता है कि—"बच्चो! तालाब में न उतरना, इसमें तैराक गुरु का शाप है। बिना गुरु का शाप दूर हुए तैरना सीखोगे, तो वह निष्फल होगा।" इन शब्दों में अलंकार तो है, पर्याप्त आलंकारिक भी इसे कह सकते हैं, पर तथ्य बिल्कुल सत्य है। बिना शिक्षक की निगरानी के तैरना सीखने की कोशिश करना एक दुस्साहस ही है।

सवा करोड़ जप की साधना करने वाले गायत्री उपासक वसिष्ठ की संरक्षकता प्राप्त कर लेना ही वसिष्ठ शाप-मोचन है, इससे साधक निर्भय, निश्चिन्त अपने मार्ग पर तेजी से बढ़ता चलता है। रास्ते की कठिनाइयों को वह संरक्षक दूर करता चलता है, जिससे नये साधक के मार्ग की बहुत-सी बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती हैं और अभीष्ट उद्देश्य तक जल्दी ही पहुँच जाता है।

गायत्री को केवल वसिष्ठ का ही शाप नहीं, एक दूसरा शाप भी है, वह है विश्वामित्र का। इस शाप-कील पर दूसरे ताले जड़े हुए हैं, ताकि अधिकारी लोग ही खोल सकें और ये चालू, कामचलाऊ, अश्रद्धालु, हथकण्डेबाजों की दाल न गलने पाये। विश्वामित्र का अर्थ है—संसार की भलाई करने वाला, परमार्थी, उदार, सद्गुणी, कर्मनिष्ठ। गायत्री का शिक्षक केवल वसिष्ठ गुण वाला होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसे विश्वामित्र भी होना चाहिये। कठोर साधना और तपस्याओं द्वारा बुरे स्वभाव के लोग भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। रावण वेदपाठी था, उसने बड़ी-बड़ी तपश्चर्यायें करके आश्चर्यजनक सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं। इस प्रकार वह वसिष्ठ पदवीधारी तो कहा जा सकता है, पर विश्वामित्र नहीं, क्योंकि संसार की भलाई के, धर्मचर्या एवं परमार्थ के गुण उसमें नहीं थे। स्वार्थी, लालची तथा संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग चाहे कितने ही बड़े सिद्ध क्यों न हों, शिक्षक किये जाने योग्य नहीं, यही दूसरा शाप विमोचन है। जिसने वसिष्ठ और विश्वामित्र गुण वाला पथ-प्रदर्शक, गायत्री-गुरु प्राप्त कर लिया, उसने दोनों शापों से गायत्री को छुड़ा लिया। उसकी साधना वैसे ही फल उपस्थित करेगी, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

यह कार्य सरल नहीं है, क्योंकि एक तो ऐसे व्यक्ति ही मुश्किल से मिलते हैं, जो वसिष्ठ और विश्वामित्र गुणों से सम्पन्न हों। यदि मिले भी तो हर किसी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होते, क्योंकि उनकी शक्ति और सामर्थ्य सीमित होती है और उससे वे कुछ थोड़े से लोगों की सेवा कर सकते हैं। यदि पहले से ही उन्होंने लोगों का भार अपने ऊपर लिया हुआ है, तो अधिक की सेवा करना उनके लिये कठिन है। स्कूलों में एक अध्यापक प्रायः ३० की संख्या तक विद्यार्थी पढ़ा सकता है। यदि यह संख्या ६० हो जाय तो न तो अध्यापक पढ़ा सकेगा, न बालक पढ़ सकेंगे, इसलिये ऐसे सुयोग्य शिक्षक सदा ही नहीं मिल सकते। लोभी, स्वार्थी और उन गुरुओं की कमी नहीं, जो दो आना गुरु-दक्षिणा लेने के लोभ से चाहे जिसके गले में कण्ठी बाँध देते हैं। ऐसे लोगों को पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना एक प्रवञ्चना और विडम्बना मात्र है।

गायत्री-दीक्षा सुसम्पन्न होकर ली जाती है, तभी फलदायक होती है। बारूद को जमीन पर यों ही फैलाकर उसमें दियासलाई लगाई जाय, तो वह मामूली तरह से जल जायेगी, पर उसे ही बन्दूक में भरकर विधिपूर्वक प्रयुक्त किया जाय, तो उससे भयंकर शब्द के साथ एक आश्चर्यजनक शक्ति पैदा होगी। इसे गुरु आज्ञाओं में पढ़कर

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

या कहीं किसी से भी गायत्री मंत्र लेकर देख ली है, जैसा अंधेरे पर निशाना लगाकर बन्दूक को चलाना और सुव्यवस्थित होकर गायत्री-दीक्षा लेना ऐसा है, जैसा बन्दूक के माध्यम से बारूद का उपयोग होना ।

गायत्री की सिद्धि हेतु साधना करना है अपने परिश्रम को सफल बनाने का सीधा मार्ग है । गुरु बनने का पहला आधार ऐसे तत्त्वदर्शी की खोज निकालना है, जो अधिकारी एवं विश्वसनीय गुरु बनकर हो और शिष्य को कुछ भी ज्ञात विशेषकर गायत्री साधना पर रखे, ऐसे सुयोग्य शिक्षक सबसे पहले यह देखते हैं कि साधक की मनोभूमि, शक्ति, सामर्थ्य, रुचि कैसी है, उसी के अनुसार वे उसके लिये साधना-विधि चुनकर देते हैं । अपने आप विद्यार्थी यह निर्णय नहीं कर सकता है कि मुझे किस कक्षा में क्या-क्या पढ़ना चाहिये ? इसे तो अध्यापक ही जानता है कि यह विद्यार्थी किस कक्षा की योग्यता रखता है और इसे क्या पढ़ाना आरम्भ करना चाहिये ? जैसे अलग-अलग प्रकृति के एक रोग के रोगियों को भी औषधि अलग-अलग अनुपान तथा मात्रा का ध्यान रखकर दी जाती है, वैसे ही साधकों की आन्तरिक स्थिति के अनुसार उनके साधना विधानों में हेर-फेर हो जाता है । इसका निर्णय साधक स्वयं नहीं कर सकता । यह कार्य तो सुयोग्य, अनुभवी और दूरदर्शी पथ-प्रदर्शक ही कर सकता है ।

आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने के लिये श्रद्धा और विश्वास यह दो प्रधान अवलम्बन हैं । इन दोनों का प्राथमिक अभ्यास गुरु को माध्यम बनाकर किया जाता है । जैसे ईश्वर उपासना का प्राथमिक माध्यम किसी मूर्ति, चित्र या प्रतीक को बनाया जाता है, वैसे ही श्रद्धा और विश्वास की प्रारम्भिक साधना व्यक्ति के द्वारा अपने गुरुजनों पर करने से होती है । प्रेम तो पत्नी, भाई, मित्र आदि पर भी हो सकता है, पर श्रद्धायुक्त प्रेम का पात्र गुरु ही होता है । माता-पिता भी यदि चरित्र विश्वासित गुण वाले हों, तो वे सबसे उत्तम गुरु हो सकते हैं । गुरु परम हितचिन्तक, शिष्य की मनोभूमि से परिचित और उसकी कमजोरियों को समझने वाला होता है, इसलिये उसके दोषों को जानकर उन्हें धीरे-धीरे दूर करने का प्रयत्न करता रहता है पर उन दोषों के कारण वह न तो शिष्य से घृणा करता है और न विरोध । न ही उसके अपकर्षित, तिरस्कृत एवं अपमानित होने देता है, वरन् उन दोषों को प्रेम-भावना समझकर धीरे-धीरे उसकी रुचि दूसरी ओर मोड़ने का प्रयत्न करता रहता है, ताकि वे अपने-आप छूट जाएँ । योग्य गुरु अपनी तपश्चर्या द्वारा संचित की हुई आत्म-शक्ति को धीरे-धीरे शिष्य के अन्तःकरण में वैसे ही प्रवेश कराता है, जैसे माता अपने पचाये हुए भोजन को स्तनों में दूध बनाकर अपने बालक को पिलाती रहती है । माता का दूध पीकर बालक पुष्ट होता है । गुरु का आत्म-तेज पीकर शिष्य का आत्मबल बढ़ता है । इस आदान-प्रदान को आध्यात्मिक भाषा में "शक्तिपात" कहते हैं । ऐसे गुरु का प्राप्त होना पूर्व संचित शुभ-संस्कारों का फल अथवा प्रभु की बड़ी कृपा का चिह्न ही समझना चाहिये ।

कितने ही व्यक्ति सोचते हैं कि हम अमुक समय एक व्यक्ति को गुरु बना चुके, अब हमें दूसरे पथ प्रदर्शक की नियुक्ति का अधिकार नहीं रहा । उनका यह सोचना वैसा ही है, जैसे कोई विद्यार्थी यह कहे कि "अक्षर आरम्भ कराते समय जिस अध्यापक को मैंने अध्यापक माना था, अब जीवन भर उसके अतिरिक्त न किसी से शिक्षा ग्रहण करूँगा और न किसी को अध्यापक मानूँगा ।" एक ही अध्यापक से संसार के सभी विषयों को प्राप्त होने की आशा नहीं की जा सकती । फिर यह अध्यापक मर जाए, रोगी हो जाए, कहीं चला जाए, तो भी उसी से शिक्षा लेने का आग्रह करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? फिर ऐसा भी हो सकता है कि कोई शिष्य प्रारम्भिक गुरु की अपेक्षा कहीं अधिक आगे बढ़ जाए और उसका विज्ञान-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाए, ऐसी दशा में भी उसकी जिज्ञासाओं का समाधान उस प्रारम्भिक शिक्षक द्वारा ही करने का आग्रह किया जाए, तो यह किस प्रकार सम्भव है ?

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से उलझन का समाधान हो जाता है । महर्षि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे । राम और लक्ष्मण ने जहाँ वशिष्ठ से शिक्षा पायी थी, वहाँ विश्वामित्र से भी बहुत कुछ सीखा था । दोनों ही उनके गुरु थे । श्रीकृष्ण ने सान्दीपन ऋषि से भी विद्या पढ़ी थी और महर्षि दुर्वासा भी उनके गुरु थे । अर्जुन के गुरु द्रोणाचार्य भी थे और कृष्ण भी । इन्द्र के बृहस्पति भी थे और नारद भी । इस प्रकार अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि आवश्यकतानुसार एक गुरु अनेक शिष्यों की सेवा कर सकता है और

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

एक शिष्य अनेक गुरुओं से ज्ञान प्राप्त कर सकता है । इसमें कोई ऐसा सीमा बन्धन नहीं, जिसके कारण एक के उपरान्त किसी दूसरे से प्रकाश प्राप्त करने में प्रतिबन्ध हो । वैसे भी एक व्यक्ति के कई पुरोहित होते हैं । जन्म पुरोहित, तीर्थ पुरोहित और कुल पुरोहित, राष्ट्र पुरोहित, दीक्षा पुरोहित आदि । जिसे गायत्री साधना का पथ-प्रदर्शक नियुक्त किया जाता है, वह साधना पुरोहित या ब्रह्म पुरोहित है । ये सभी पुरोहित अपने-अपने क्षेत्र, अवसर और कार्यों में पूछने योग्य तथा पूजने योग्य हैं । वह एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं ।

चौबीस अक्षरों का गायत्री मन्त्र सर्व प्रसिद्ध है, उसे आजकल शिक्षित वर्ग के सभी लोग जानते हैं । फिर भी उपासना करनी है, कल्याणकारी लाभों को लेना है, तो गुरुमुख होकर गायत्री दीक्षा लेनी चाहिये । प्रतिज्ञा और विज्ञप्ति का शब्द-विशोधन करके, कीलित गायत्री का उत्कीलन करके साधना करनी चाहिये । गुरुमुख का गायत्री दीक्षा लेना एक संस्कार है । उसमें उस दिन गुरु-शिष्य दोनों को उपवास रखना पड़ता है । शिष्य चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य, वस्त्र, फल, पात्र, दक्षिणा आदि से गुरु का पूजन करता है । गुरु शिष्य को यज्ञ देता है और पथ-प्रदर्शन का भार अपने ऊपर लेता है । इस ग्रन्थि-बन्धन के उपरान्त अपने उपयुक्त साधना निश्चित करके जो शिष्य श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ते हैं, वे भगवती की कृपा से अपने अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं ।

जब से गायत्री की दीक्षा ले ली जाए, तब से लेकर जब तक पूर्ण सिद्धि प्राप्त न हो जाए, तब तक साधना गुरु को अपनी साधना के साथ शामिल रखना चाहिये । गुरु का प्रत्यक्ष रूप से सदा साथ रहना तो संभव नहीं हो सकता, पर उनका चित्र शीशे में मढ़वा कर पूजा के स्थान पर रखा जा सकता है और नित्य प्रति, सन्ध्या, जप, अनुष्ठान या कोई और साधना आरम्भ करने से पूर्व उस चित्र का पूजन धूप, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि से कर लेना चाहिये । जहाँ चित्र उपलब्ध न हो, वहाँ एक नारियल को गुरु के प्रतीक रूप में स्थापित कर लेना चाहिये । एकलव्य भील की कथा प्रसिद्ध है कि उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति स्थापित करके उसी को गुरु माना था और उसी से पूछकर बाण-विद्या सीखता था । अन्त में वह इतना सफल धनुर्धारी हुआ कि पाण्डवों तक को उसकी विशेषता देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा था । चित्र या नारियल के माध्यम से गुरु पूजा करके जब जो भी गायत्री साधना आरम्भ की जायेगी, वह प्राण-युक्त तथा उत्कीलित होगी ।

गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत को "ब्रह्मसूत्र" भी कहा जा सकता है । सूत्र डोरे को भी कहते हैं और उस संक्षिप्त शब्द-रचना को जिसका अर्थ बहुत विस्तृत होता है । व्याकरण, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि के अनेकों ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें ग्रन्थकर्त्ताओं ने अपने मन्तव्यों को बहुत ही संक्षिप्त संस्कृत वाक्यों में सन्निहित कर दिया है । उन सूत्रों पर लम्बी वृत्तियाँ, टिप्पणियाँ तथा टीकायें हुई हैं, जिनके द्वारा उन सूत्रों में छिपे हुए अर्थों का विस्तार होता है । ब्रह्मसूत्र में यद्यपि अक्षर नहीं हैं, तो भी संकेतों से बहुत कुछ बताया गया है । मूर्तियों, चिह्न, चित्र, अवशेष आदि के आधार पर बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं । यद्यपि इनमें अक्षर नहीं होते, तो भी बहुत कुछ प्रकट हो जाता है । भले ही उस इशारे में किसी अक्षर-लिपि का प्रयोग नहीं किया जाता है । यज्ञोपवीत के ब्रह्मसूत्र यद्यपि वाणी और लेखनी से रहित हैं, तो भी उनमें एक विशद व्याख्यान की अभिव्यक्ति भरी हुई है ।

गायत्री को गुरु मन्त्र कहा जाता है । यज्ञोपवीत धारण करते समय जो वेदारम्भ कराया जाता है, वह गायत्री से कराया जाता है । प्रत्येक द्विज को गायत्री जानना उसी प्रकार अनिवार्य है, जैसे कि यज्ञोपवीत धारण करना । यह गायत्री-यज्ञोपवीत का जोड़ा ऐसा ही है, जैसा लक्ष्मी-नारायण, सीताराम, राधेश्याम, प्रकृति-ब्रह्म, गौरी-शंकर, नर-मादा का जोड़ा है । दोनों की सम्मिलित व्यवस्था का नाम ही गृहस्थ है, वैसे ही गायत्री-उपवीत का सम्मिलन ही द्विजत्व है । उपवीत सूत्र है, तो गायत्री उसकी व्याख्या है । दोनों की आत्मा एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई है ।

यज्ञोपवीत में तीन तार हैं, गायत्री में तीन चरण हैं । 'तत्सवितुर्वरेण्यं' प्रथम चरण, 'भर्गोदेवस्य धीमहि' द्वितीय चरण, 'धियो यो नः प्रचोदयात्' तृतीय चरण है । तीनों तारों का क्या तात्पर्य है ? इसमें क्या सन्देश निहित है ? यह बात समझनी हो तो गायत्री के इन तीन चरणों को भली प्रकार जान लेना चाहिये ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उपवीत में तीन प्रकार की शाखाएं और एक ब्रह्म ग्रन्थि होती है। गायत्री के तीन व्याहृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः) और एक प्रणव (ॐ) है। गायत्री के आरम्भ में ओंकार और भूः भुवः स्वः का जो तात्पर्य है, उसी ओर यज्ञोपवीत की तीन शाखाएं संकेत करती हैं। उन्हें समझने से यह जाना जा सकता है कि यह जनेऊ मनुष्य जाति के लिये क्या-क्या संदेश देती है।

इस महाविज्ञान को अच्छी प्रकार समझने के लिये इसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। १— प्रणव तथा तीनों व्याहृतियाँ अर्थात् यज्ञोपवीत की चारों ग्रन्थियाँ, २— गायत्री का प्रथम चरण अर्थात् यज्ञोपवीत की प्रथम लड़, ३— द्वितीय चरण अर्थात् द्वितीय लड़, ४— तृतीय चरण अर्थात् तृतीय लड़। आइये अब इन पर विचार करें।

१. प्रणव का संदेश यह है— "परमात्मा सर्वत्र समस्त प्राणियों में समाया हुआ है, इसलिये लोक-सेवा के लिये निष्काम भाव से कर्म करना चाहिये और अपने मन को स्थिर तथा शुद्ध रखना चाहिये।"

२. भूः का तात्पर्य यह है— "शरीर अस्थायी औजार मात्र है, इसलिये उस पर अत्यधिक आसक्त न होकर आत्मबल बढ़ाने का, श्रेष्ठ मार्ग का, सत्कर्मों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।"

३. भुवः का रहस्य है— "पापों के विरुद्ध रहने वाला मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है। जो पवित्र आदर्शों और साधनों को अपनाता है, वही बुद्धिमान् है।"

४. स्वः की परिभाषा यह है— "विवेक द्वारा शुद्ध बुद्धि से सत्य जानने, संयम और त्याग की नीति का आचरण करने के लिये अपने को तथा दूसरों को प्रेरणा देनी चाहिये।"

यह चतुर्मुखी नीति यज्ञोपवीतधारी की होती है। इस सबका सारांश यह है कि उचित मार्ग से अपनी शक्तियों को बढ़ाओ और अन्तःकरण को उदार रखते हुए अपनी शक्तियों का अधिकांश भाग जनहित के लिये लगाते रहो। इसी आध्यात्मिक नीति पर चलने से मनुष्य व्यष्टि रूप से तथा समस्त संसार में समष्टि रूप से सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है, उसका जो संदेश मनुष्य जाति के लिये है, उसके

अतिरिक्त और कोई मार्ग ऐसा नहीं, जिससे वैयक्तिक तथा सामाजिक सुख-शान्ति स्थिर रह सके।

सुरलोक में एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर जिस वस्तु की कामना की जाए, वही वस्तु तुरन्त सामने उपस्थित हो जाती है। जो भी इच्छा की जाए तुरन्त पूर्ण हो जाती है। वह कल्पवृक्ष जिनके पास होगा, वे कितने सुखी और संतुष्ट होंगे, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

पृथ्वी पर भी एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसमें सुरलोक के कल्पवृक्ष की सभी सम्भावनायें छिपी हुई हैं। उसका नाम है—गायत्री। गायत्री मन्त्र को स्थूल दृष्टि से देखा जाए, तो वह २४ अक्षरों और नौ पदों की शब्द-शृंखला मात्र है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक अवलोकन किया जाए, तो उसके प्रत्येक पद और अक्षर में ऐसे तत्त्वों का समावेश किया हुआ मिलेगा, जिनके द्वारा कल्पवृक्ष के समान ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है।

अगले पृष्ठ पर गायत्री कल्पवृक्ष का चित्र दिया हुआ है। इसमें बताया गया है- "ॐ" ईश्वर, अखिलेश्वर ही भारतीय धर्म का मूल है। इससे आगे बढ़कर इसके तीन विभाग होते हैं—भूः भुवः स्वः। भूः का अर्थ है—आत्मज्ञान। भुवः का अर्थ है—कर्मयोग। स्वः का तात्पर्य है—स्थिरता, समाधि। इन तीनों शाखाओं में से प्रत्येक से तीन-तीन टहनियाँ निकलती हैं, उनमें से प्रत्येक के भी अपने-अपने तात्पर्य हैं। तत्—जीवन विज्ञान। सवितुः—शक्ति सञ्चय। वरेण्यं—श्रेष्ठता। भर्गो—निर्मलता। देवस्य—दिव्य दृष्टि। धीमहि—सद्गुण। धियो—विवेक। यो नः—संयम। प्रचोदयात्—सेवा। गायत्री हमारी मनोभूमि में इन्हीं को बोती है। फलस्वरूप जो खेत उगता है, वह कल्पवृक्ष से किसी प्रकार कम नहीं होता।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि कल्पवृक्ष के सब पत्ते रत्नजटित हैं। वे रत्न ऐसे सुशोभित और बहुमूल्य होते हैं। गायत्री कल्पवृक्ष के उपर्युक्त नौ पत्ते निस्सन्देह नौ रत्नों के समान मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण हैं। 'प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक गुण' एक रत्न से किसी प्रकार कम नहीं है। "नौलखा हार" की प्रशंसा में बहुत प्रशंसा है। जो लाख रुपये की लागत से बना हुआ 'नौलखा हार' पहनते वाले अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझते हैं। यदि गम्भीर तात्त्विक और सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए, तो यज्ञोपवीत भी नवरत्न जड़ित नौलखा हार से किसी प्रकार कम महत्त्व का नहीं है।

गायत्री गीता के अनुसार यज्ञोपवीत के नौ तार, जिन नौ गुणों को धारण करने का आदेश करते हैं, वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि नौ रत्नों की तुलना में इन गुणों की ही कीमत अधिक है।

१. जीवन विज्ञान की जानकारी होने से मनुष्य जन्म-मरण के रहस्य को समझ जाता है। उसे मृत्यु का डर नहीं लगता, सदा निर्भय रहता है, उसे शरीर का तथा सांसारिक वस्तुओं का लोभ-मोह भी नहीं होता, फलस्वरूप जिन असाधारण हानि-लाभों के पीछे लोग बेतरह दुःख के समुद्र में डूबते और हर्ष के मद में उछलते फिरते हैं, उन उन्मादों से बच जाता है।

२. शक्ति संचय की नीति अपनाने वाला दिन-दिन अधिक स्वस्थ, विद्वान्, बुद्धिमान्, धनी, सहयोग सम्पन्न, प्रतिष्ठावान् बनता जाता है। निर्बलों पर प्रकृति के, बलवानों के तथा दुर्भाग्य के जो आक्रमण होते रहते हैं, उनसे वह बचा रहता है और शक्ति सम्पन्नता के कारण जीवन के नाना विध आनन्दों को स्वयं भोगता तथा अपनी शक्ति द्वारा दुर्बलों की सहायता करके पुण्य का भागी बनता है। अनीति वहीं पनपती है, जहाँ शक्ति का सन्तुलन नहीं होता। शक्ति-संचय का स्वाभाविक परिणाम है—अनीति का अन्त, जो कि सभी के लिये कल्याणकारी है।

३. श्रेष्ठता का अभिप्राय परिस्थितियों में नहीं, विचारों से होता है। जो व्यक्ति धन-सम्पदा में बड़े-बड़े हैं, परन्तु लक्ष्य, सिद्धान्त, आदर्श एवं अन्तःकरण की दृष्टि से गिरे हुए हैं, उन्हें निकृष्ट ही कहा जायेगा। ऐसे निकृष्ट अपनी आत्मा की दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में और दूसरे गंभीर विवेकवान् व्यक्तियों की दृष्टि में नीच श्रेणी के ठहरते हैं, अपनी नीचता के दण्ड स्वरूप आत्म-ताड़ना, ईश्वरीय दण्ड और बुद्धि-भ्रम के कारण मानसिक अशान्ति में डूबे रहते हैं। इसके विपरीत कोई व्यक्ति चाहे ही गरीब, साधनहीन हो, पर उसका आदर्श, सिद्धान्त, उद्देश्य, अन्तःकरण उच्च तथा उदार है, तो वह श्रेष्ठ ही कहा जाएगा। यह श्रेष्ठता उसके लिये इतने आनन्द का उद्भव करती रहती है, जो बड़ी से बड़ी सांसारिक सम्पदा से भी सम्भव नहीं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org

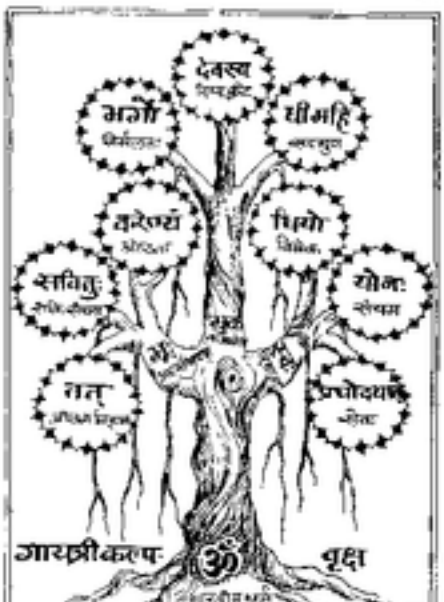

४. निर्मलता का अर्थ है—सौन्दर्य। सौन्दर्य वह वस्तु है, जिसे मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंग तक पसन्द करते हैं। यह निश्चित है कि कुरूपता का कारण गन्दगी है। मलिनता जहाँ कहीं भी होगी, वहाँ कुरूपता रहेगी और वहाँ से दूर रहने की सबकी इच्छा होगी। शरीर के भीतर मल भरे होंगे तो मनुष्य कमजोर और बीमार रहेगा। इसी तरह कपड़े, भोजन, स्थान, बाल, उपयोगी पदार्थ आदि में गन्दगी होगी, तो वह दुर्गन्धयुक्त, अस्वास्थ्यकर, विकृत एवं निस्तेज हो जाएँगे। मन में, बुद्धि में, अन्तःकरण में मलिनता हो, तब तो कहना ही क्या है? इन्सान का स्वरूप शैतान और हैवान से भी बुरा हो जाता है। इन विकृतियों से बचने का एकमात्र उपाय 'सर्वतोमुखी निर्मलता' है। जो भीतर-बाहर सब ओर से निर्मल है, जिसकी आदतें, विचार, भाव, देह, वाणी, पोशाक, झोपड़ी, उपयोगी सामग्री निर्मल हैं, स्वच्छ हैं, शुद्ध हैं, वह सब प्रकार से सुन्दर, आकर्षक, प्रफुल्ल, प्रसन्न एवं तन्दुरुस्त दिखाई देगा।

५. दिव्य दृष्टि से देखने का अर्थ है—संसार के दिव्य तत्त्वों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना। हर पदार्थ अपने सजातीय पदार्थों को अपनी ओर खींचता है और उन्हीं की ओर स्वयं खिंचता है। जिसका दृष्टिकोण संसार की अच्छाइयों को देखने, समझने और अपनाने का है, वह चारों ओर अच्छे व्यक्तियों को देखता है। लोगों के

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

उपकार, आत्मसम्मान, सेवा-भाव, सहयोग और सज्जनों पर ध्यान देने से देखा प्रतीत होता है कि लोगों में बुराइयों की अपेक्षा अच्छाइयाँ अधिक हैं और संसार हमारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार कहीं अधिक कर रहा है। आँखों पर जिस रंग का चश्मा लगा लिया जाए, उसी रंग की सब वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं। जिनकी दृष्टि दूषित है, उनके लिये प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राणी बुरा है, पर जो दिव्य दृष्टि वाले हैं, वे प्रभु की इस परम पुनीत फुलवाड़ी में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बरसता देखते हैं।

६. सद्गुण—अपने में अच्छी आदतें, अच्छी योग्यताएँ, अच्छी विशेषताएँ धारण करना सद्गुण कहलाता है। विनय, नम्रता, शिष्टाचार, मधुर भाषण, उदार व्यवहार, सेवा-सहयोग, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, समय की पाबन्दी, नियमितता, मितव्ययिता, धार्मिक रुचि, कर्तव्य परायणता, जागरूकता, प्रसन्न मुख-मुद्रा, धैर्य, साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ, आशा, उत्साह यह सब सद्गुण हैं। संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, व्यापार, वक्तृता, व्यवसाय, उद्योग, शिक्षण आदि योग्यताएँ होना सद्गुण है। इस प्रकार के सद्गुण जिसके पास हैं, वह आनन्दमय जीवन बितायेगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

७. विवेक—एक प्रकार का आत्मिक प्रकाश है, जिसके द्वारा सत्य असत्य की, उचित-अनुचित की, आवश्यक-अनावश्यक की, हानि-लाभ की परीक्षा होती है। संसार में असंख्यों परस्पर विरोधी मान्यताएँ, रिवाजें, विचारधाराएँ प्रचलित हैं और उनमें से हर एक के पीछे कुछ आधार, कुछ उदाहरण तथा कुछ युक्तियाँ एवं भावनाएँ के आधार अवश्य सम्बन्धित होते हैं। ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन होता है कि इन परस्पर विरोधी बातों में क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य? इस सम्बन्ध में देश, काल, परिस्थिति, उपयोगिता, औचित्य आदि बातों को ध्यान में रखते हुए सद्बुद्धि से जो निर्णय किया जाता है, वही वास्तविक एवं ग्राह्य होता है। जिसने उचित निर्णय कर लिया, तो समझिये कि उसने सरलतापूर्वक सुख-शान्ति के लक्ष्य तक पहुँचने की सीधी राह पा ली। संसार में अधिकांश कलह, क्लेश, पाप एवं दुःखों का कारण दुर्बुद्धि, भ्रम तथा अज्ञान होता है। विवेकवान् व्यक्ति इन सब उलझनों से अनायास ही बच जाता है।

८. संयम—इन्द्रियों की शक्ति का, विचार शक्ति का, भोगेच्छा का, श्रम का सन्तुलन ठीक रखना ही संयम है। न इनको घटने देना, न नष्ट-विकृत होने देना और न अनुचित मार्ग से व्यय होने देना संयम का तात्पर्य है। मानव शरीर आश्चर्यजनक शक्तियों का केन्द्र है। यदि इन शक्तियों का अपव्यय रोककर उपयोगी दिशा में लगाया जाए, तो अनेक आश्चर्यजनक सफलतायें मिल सकती हैं और जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति हो सकती है।

९. सेवा—सहायता, सहयोग, प्रेरणा, उन्नति की ओर, सुविधा की ओर किसी को बढ़ाना, यह उसकी सबसे बड़ी सेवा है। इस दिशा में हमारा शरीर और मस्तिष्क सबसे अधिक हमारी सेवा का पात्र है, क्योंकि वह हमारे सबसे अधिक निकट है। आमतौर से दान देना, मुफ्त देना या बिना मूल्य अपनी शारीरिक, मानसिक शक्ति किसी को देना सेवा कहा जाता है और यह अपेक्षा नहीं की जाती कि हमारी इस सहायता से दूसरों में कोई क्रिया शक्ति, आत्म-निर्भरता, स्फूर्ति, प्रेरणा, जागृति हुई या नहीं। इस प्रकार की सेवा व्यक्ति को आलसी, परावलम्बी और भाग्यवादी बनाने वाली हानिकारक सेवा भी है। हम दूसरों की इस प्रकार सेवा करें, जो उत्साह, आत्म-निर्भरता और क्रियाशीलता को सजग करने में सहायक हो। सेवा का फल है—उन्नति। सेवा द्वारा अपने को तथा दूसरों को समुन्नत बनाना, संसार को अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाना महान् पुण्य कार्य है। इस प्रकार के सेवाभावी पुण्यात्मा सांसारिक और आत्म-दृष्टि से सदा सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं।

यह नवगुण निस्संदेह नवरत्न हैं। लाल, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदूर्य—ये नौ रत्न कहे जाते हैं। कहते हैं कि जिनके पास ये रत्न होते हैं, वे सर्वसुखी समझे जाते हैं, पर भारतीय धर्मशास्त्र कहता है कि जिनके पास यज्ञोपवीत और गायत्री निर्मित आध्यात्मिक नवरत्न हैं, वे इस भूतल के कुबेर हैं। चाहे ही उनके पास धन-दौलत, जमीन-जायदाद न हो। यह नवरत्न जटित कल्पवृक्ष जिसके पास है, वह विवेकयुक्त यज्ञोपवीतधारी सदा सुरलोक की सम्पदा भोगता है। उसके लिये यह भू लोक ही स्वर्ग है, यह कल्पवृक्ष उसे यहीं फल देता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों सम्पदाओं से हमें परिपूर्ण कर देता है।

साधकों के लिये उपवीत आवश्यक है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मिले हिस्से होता है, कर्णवेधन से उन्हें ही छेद कर स्पर्श कर पाते हैं। सूत्र अलग हट जाता है और पसीने का जमाव होने एवं शुद्धि में प्रमाद होने के खतरे से बचाव हो जाता है, इसलिये इसे पहले कनिष्ठ पहनने का रिवाज चलाया गया।

पूर्वकाल में न सही, आंशिक रूप से सही, गायत्री के साधकों को यज्ञोपवीत अवश्य धारण करना चाहिये, क्योंकि उपनयन गायत्री का मूर्तिमान् प्रतीक है, उसे धारण किये बिना गायत्री की साधना का धार्मिक अधिकार नहीं मिलता। ओवरकोट और फैशन में जेवरों का रिवाज कम होता जा रहा है, फिर भी गले में तावीज किसी न किसी रूप में स्त्री-पुरुष धारण करते हैं। प्राचीन शिल्प काल के मन्दिरों की मूर्तियाँ धारण करती हैं। इन आभूषणों के नाम हार, नेकलेस, जंजीर, माला आदि रखे गये हैं, पर वह वास्तव में यज्ञोपवीतों के ही प्रतीक हैं। चाहे किसी के पास कोई अन्य आभूषण हो चाहे न हो, परन्तु इतना निश्चित है कि भारतीयों की गर्दन में गरीब स्त्रियाँ भी किसी न किसी रूप में अवश्य धारण करती हैं। इससे प्रकट है कि भारतीय जातियों ने अपने प्राचीन धर्म-चिह्न को किसी न किसी रूप में जीवित रखा है और उपवीत को किसी न किसी प्रकार धारण किया है।

जो लोग उपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं कहे जाते, जिन्हें कोई दीक्षा नहीं देता, वे भी गले में तीन तार का या नौ तार का डोरा चार गाँठ लगाकर धारण कर लेते हैं। इस प्रकार चिह्न पूजा हो जाती है। पूरे यज्ञोपवीत का एक तिहाई लम्बा यज्ञोपवीत गले में डाले रहने का भी कहीं-कहीं रिवाज है।

गायत्री साधना का उद्देश्य

नये विचारों से पुराने विचार बदल जाते हैं। कोई व्यक्ति किसी बात को गलत रूप से समझ रहा है, तो उसे तर्क, प्रमाण और उदाहरणों के आधार पर नई बात समझाई जा सकती है। यदि वह आग्रही, दुराग्रही, मूढ़, उत्तेजित या मदान्ध नहीं है, तो प्रायः सही बात को समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। सही बात समझ जाने पर प्रायः गलत मान्यता बदल जाती है। स्वार्थ या पक्षपात के कारण कोई आदमी पूर्व मान्यता को चरितार्थ करता रहे, पर मान्यता और विश्वास क्षेत्र में उसका विचार परिवर्तन अवश्य हो जाता है। ज्ञान द्वारा अज्ञान को हटा दिया जाना कुछ विशेष कठिन नहीं है।

परन्तु स्वभाव, रुचि, इच्छा, भावना और प्रकृति के बारे में यह बात नहीं है, इन्हें साधारण रीति से नहीं बदला जा सकता है। यह जिस स्थान पर जमी होती है, वहाँ से आसानी से नहीं हटती। चूँकि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में, जीव-जन्तुओं की क्षुद्र योनियों में भ्रमण करता हुआ नर-देह में आता है, इसलिये स्वभावतः उसके पिछले जन्म-जन्मान्तरों के पाशविक नीच संस्कार बड़ी दृढ़ता से अपनी जड़ मनोभूमि में जमाये होते हैं, उनमें परिवर्तन होता रहता है, पर उसका विशेष प्रभाव एवं कर्मोत्साहपूर्वक उसके आत्म-चिन्तन करने से मनुष्य भलाई और बुराई के, धर्म-अधर्म के अन्तर को भली प्रकार समझ जाता है। उसे अपनी भूलें, बुराइयाँ और अनुपयोगिताएँ भली प्रकार प्रतीत हो जाती हैं। बौद्धिक स्तर पर वह सोचता है और चाहता है कि इन बुराइयों से उसे छुटकारा मिल जाए, कई बार तो वह अपनी बुराइयों की भर्त्सना भी करता है। इतने पर भी वह अपनी चिर संचित कुप्रवृत्तियों से, बुरी आदतों से अपने को अलग नहीं कर पाता।

नशेबाज, चोर, क्रूर, दुराचारी यह भली-भाँति जानते हैं कि हम गलत मार्ग अपनाये हुए हैं। वे बहुधा यह सोचते रहते हैं कि काश, इन बुराइयों से हमें छुटकारा मिल जाता, पर इनकी इच्छा एक निर्बल कामना मात्र रह जाती है, उनके मनोरथ निष्फल ही होते रहते हैं, बुराइयाँ छूटतीं नहीं। जब भी प्रलोभन का अवसर आता है, तभी मनोभूमि में गहरे जमाये हुए, पड़ी हुई कुप्रवृत्तियाँ आँधी-तूफान की तरह उमड़ पड़ती हैं और वह व्यक्ति आदत से मजबूर होकर उन्हीं बुरे कार्यों को फिर से कर बैठता है। विचार और संस्कार इन दोनों की तुलना में संस्कार की शक्ति असाधारण प्रबल है। विचार एक बच्चा या शिशु है, तो संस्कार परिपुष्ट प्रौढ़। दोनों के युद्ध में प्रायः ऐसा ही परिणाम देखा जाता है कि शिशु की हार होती है और प्रौढ़ की जीत। यद्यपि कई बार मनस्वी व्यक्ति श्रीकृष्ण द्वारा पूतना और राम द्वारा ताड़का-वध का उदाहरण उपस्थित करके अपने विचार-बल द्वारा कुसंस्कारों

पर विजय प्राप्त करते हैं, पर अधिकांश लोग कुसंस्कारों के चंगुल में, जाल में फँसे पक्षी की तरह तड़पते हुए देखे जाते हैं। अनेकों धर्मोपदेशक, ज्ञानी, विद्वान्, नेता, [illegible] व्यक्तियों का निजी चरित्र जब कुकर्मयुक्त देखा जाता है, तो यही मानना पड़ता है कि इनकी ऊँची बुद्धि-योग्यता भी अपने कुसंस्कारों पर विजय न दिला सकी। कई बार तो अच्छे-अच्छे ईमानदार और त्यागी मनुष्य किसी विशेष प्रलोभन के अवसर पर, ऐसे फिसल जाते हैं, जिसके लिये पीछे उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है। फिर संचित पाशविक वृत्तियों का तूफान जब आता है, तो बड़े-बड़े मनस्वियों के अत्यन्त प्रयत्न से बनाये हुए सुधार की दीवार हिल जाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य यह नहीं है कि विचार-शक्ति निरर्थक वस्तु है और उसके द्वारा कुसंस्कारों के जीतने में सहायता नहीं मिलती। इन पंक्तियों में यह कहा जा रहा है कि स्वाध्याय, सत्संग की सहायता से मनोभूमि का परिमार्जन करने में बहुत अधिक सहायता मिलती है, परन्तु शनैः-शनैः आगे बढ़ती है, अनेकों बार उन्हें निराशा और असफलता का मुँह देखना पड़ता है। इस पर भी यदि कठिनाइयों का क्रम जारी रहे, तो अवश्य ही कालान्तर में कुसंस्कारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। अध्यात्म विद्या के आचार्य इतने अनिश्चित कार्य को इतने विलम्ब तक पड़ा रहने देना नहीं चाहते। इसलिये उन्होंने इस सम्बन्ध में अत्यधिक गम्भीरता, सूक्ष्म दृष्टि और मनोयोगपूर्वक विचार, निरीक्षण किया है और वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मनःक्षेत्र के ऊपरी स्तर पर विचार के माध्यम क्रियाशील रहते हैं, उससे कहीं अधिक गहरे स्तर पर संस्कारों की जड़ें होती हैं।

जैसे पृथ्वी ऊपर से एक ही प्रकार की दिखाई पड़ती है, पर उसके भीतर विभिन्न जाति की मिट्टियों के पर्त मिलते हैं, वैसे ही मनोभूमि के भी कितने ही पर्त हैं। उनके कार्य, गुण और क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। ऊपर वाले दो पर्त (१) मन (२) बुद्धि हैं। मन में इच्छायें, लालसायें, वासनायें पैदा होती हैं, बुद्धि उन पर विचार करता, मार्ग ढूँढ़ता और निर्णय करता है। यह दोनों पर्त मनुष्य के विचार सम्पर्क में हैं। इन्हें स्थूल मनःक्षेत्र कहते हैं। सत्संग से तथा परिस्थितियों के परिवर्तन से इनमें आसानी से हेर-फेर हो जाता है।

इस स्थूल क्षेत्र से गहरे पर्त को सूक्ष्म मनःक्षेत्र कहते हैं। इसके प्रमुख भाग दो हैं—(१) चित्त (२) अहंकार। चित्त में संस्कार, आदत, रुचि, स्वभाव, गुण की जड़ें रहती हैं। अहंकार "अपने सम्बन्ध में मान्यता" को कहते हैं। अपने को जो व्यक्ति जैसा [illegible], पापी-पुण्यात्मा, अभागा-सौभाग्यशाली, स्त्री-पुरुष, मूर्ख-बुद्धिमान्, क्षुद्र-महान्, जीव-ब्रह्म, बद्ध-मुक्त आदि जैसा भी कुछ मान लेता है, वह वैसे ही अहंकार वाला माना जाता है। आत्मा के अहम् के सम्बन्ध में मान्यता का नाम ही अहंकार है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के अनेकों भेद-उपभेद हैं और उनके गुण, कर्म अलग-अलग हैं, उनका वर्णन इन पंक्तियों में नहीं किया जा सकता है। यहाँ तो संक्षिप्त परिचय देना इसलिये आवश्यक हुआ कि कुसंस्कारों के निवारण के बारे में कुछ बातें भली प्रकार जानने में पाठकों को सुविधा हो।

जैसे मन और बुद्धि का जोड़ा है, वैसे ही चित्त और अहंकार का जोड़ा है। मन में नाना प्रकार की इच्छायें, कामनायें रहती हैं, पर बुद्धि उनका निर्णय करती है कि कौन-सी इच्छा प्रकट करने योग्य है, कौन-सी दबा देने योग्य है? इसे बुद्धि जानती है और वह सभ्यता, लोकाचार, सामाजिक नियम, धर्म, कर्तव्य, असम्भव आदि का ध्यान रखते हुए अनुपयुक्त इच्छाओं को भीतर दबाती रहती है। जो इच्छा कार्य रूप में लाने योग्य होती है, उन्हीं के लिये बुद्धि अपना प्रयत्न आरम्भ करती है। इस प्रकार यह दोनों मिलकर मस्तिष्क क्षेत्र में अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं।

अन्तःकरण क्षेत्र में चित्त और अहंकार का जोड़ा अपना कार्य करता है। जीवात्मा अपने को जिस श्रेणी का, जिस स्तर का अनुभव करता है, चित्त में उस श्रेणी के, उसी स्तर के पूर्व संस्कार, रुचियाँ और योग्यतायें रहती हैं। कोई व्यक्ति अपने को ब्राह्मण, चमार, पठान, अंग्रेज, इत्यादि किसी वर्ग का मानता है, तो उसका यह अहंकार उसके चित्त को उसी जाति के संस्कारों को ग्रहण करने और स्थिर रखने के लिये मजबूर करेगा। जो गुण, कर्म, स्वभाव इस श्रेणी के लोगों के होते हैं, वे सभी उसके चित्त में संस्कार रूप से जड़ जमाकर बैठ जायेंगे। यदि उसका अहंकार अपनी मान्यता का परित्याग करके लोकसेवी, महात्मा, राजनीतिक एवं [illegible] होने

की उसकी मान्यता स्थिर कर ले, तो अति शीघ्र उसकी पुरानी आदतें, आकांक्षायें, अभिलाषायें बदल जायेंगी और वह वैसा ही बन जायगा, जैसा कि अपने सम्बन्ध में उसका विश्वास है। केवल सोचना पूरी बात है, उसका मात्र तात्पर्यांश से उसकी बात कहना मुश्किल है, क्योंकि हर कोई जानता है कि क्या बुराई है, क्या भलाई है? ऐसे विचार तो उनके मन में पहले भी अनेकों बार आ चुके होते हैं। बात तभी पूरी बन सकती है, जब वह अपने अहंकार को प्रतिष्ठित नागरिक की मान्यता में बदले और यह अनुभव करे कि ये आदतें मेरे जीवन के, स्तर के, व्यवहार के अनुरूप हैं। अन्तःकरण की एक ही पुकार से, एक ही हुंकार से, एक ही चीत्कार से जमे हुए कुसंस्कार उखड़ कर एक ओर गिर पड़ते हैं और उनके स्थान पर नये, उपयुक्त, आवश्यक, अनुरूप संस्कार कुछ ही समय में जम जाते हैं। जो कार्य मन और बुद्धि द्वारा अत्यन्त कष्ट-साध्य मालूम पड़ता था, वह अहंकार परिवर्तन की एक चुटकी में ठीक हो जाता है।

अहंकार तक सीधी पहुँच साधना के अतिरिक्त और किसी मार्ग से नहीं हो सकती। मन और बुद्धि को शान्त, सुस्थिर, शिथिल अवस्था में छोड़कर सीधे अहंकार तक कोई मार्ग हो जाना का उद्देश्य है। गायत्री साधना का विधान भी इसी प्रकार का है। उसका सीधा प्रभाव अहंकार पर पड़ता है। "मैं ब्राह्मी शक्ति का आधार हूँ, ईश्वरीय स्फुरणा गायत्री मेरे रोम-रोम में ओत-प्रोत हो रही है, मैं उसे अधिकाधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करके ब्राह्मी-भूत हो रहा हूँ।" यह मान्यतायें मानवीय अहंकार को साधारण स्तर से बहुत ऊँचा उठा ले जाती हैं और उसे देवभाव में अवस्थित करती हैं। मान्यता कोई साधारण वस्तु नहीं है। गीता कहती है—'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' जो अपने सम्बन्ध में जैसी श्रद्धा-मान्यता रखता है, वस्तुतः वैसा ही होता है। गायत्री-साधना अपने साधक को दैवी आत्म-विश्वास, ईश्वरीय अहंकार प्रदान करती है और वह कुछ ही समय में वस्तुतः वैसा ही हो जाता है। जिस स्तर पर उसकी आत्म-मान्यता है, उसी स्तर पर चित्त-वृत्तियाँ रहेंगी। वैसी आदतें, इच्छायें, रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ, क्रियायें उसमें दीख पड़ेंगी। जो दिव्य मान्यता से ओत-प्रोत है—निश्चय ही उसकी इच्छायें, आदतें और क्रियायें वैसी ही होंगी। यह साधना प्रक्रिया मानव अन्तःकरण का कायाकल्प कर देती है। जिस आत्मसुधार के लिये उपदेश सुनना और पुस्तक पढ़ना विशेष सफल नहीं होता था, वह कार्य साधना द्वारा सुविधापूर्वक पूरा हो जाता है। यही साधना का रहस्य है।

उच्च मनःक्षेत्र (सुपर मेण्टल) ही ईश्वरीय दिव्य शक्तियों के अवतरण का उपयुक्त स्थान है। हवाई जहाज वहीं उतरता है, जहाँ अड्डा होता है। ईश्वरीय दिव्य शक्ति मानव प्राणी के इसी उच्च मनःक्षेत्र में उतरती है। यदि वह साधना द्वारा निर्मित नहीं कर लिया गया है, तो अति सूक्ष्म दिव्य शक्तियों को अपने में नहीं उतारा जा सकता। साधना, साधक के उच्च मनःक्षेत्र को उपयुक्त हवाई अड्डा बनाती है जहाँ वह दैवी शक्ति उतर सके।

आत्म-कल्याण और आत्मोत्थान के लिये अनेक प्रकार की साधनाओं का प्रयोग किया जाता है। देश, काल और पात्र भेद के कारण ही साधना-मार्ग का निर्णय करने में बहुत कुछ विचार और परिवर्तन करना पड़ता है। 'स्वाध्याय' में चित्त लगाने से सन्मार्ग की ओर रुचि होती है। 'सत्संग' से स्वभाव और संस्कार शुद्ध बनते हैं। 'कीर्तन' से एकाग्रता और तन्मयता की वृद्धि होती है। 'दान-पुण्य' से त्याग और उदारता की भावना पुष्ट होती है। 'पूजा-उपासना' से आस्तिकता, श्रद्धा और ईश्वर विश्वास की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न उद्देश्यों और आवश्यकताओं को दृष्टिगोचर रखकर ऋषियों ने अनेक प्रकार की साधनाओं का उपदेश दिया है, पर इनमें सर्वोपरि 'जप' की साधना ही है। जप की अग्नि से आत्मा के पाप-विक्षेप और मल-जाल बहुत शीघ्र भस्म हो जाते हैं और आत्मा में एक अपूर्व ज्योति का आविर्भाव होता है। गायत्री-उपासना सर्वश्रेष्ठ जप-साधना है। इसके फलस्वरूप साधक को जो दैवी-शक्ति प्राप्त होती है, उससे सच्चा आत्मिक आनन्द प्राप्त करके उसके द्वारा भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य को वह प्राप्त कर सकता है।

यह अपरा प्रकृति का परा प्रकृति में रूपान्तरित करने का विज्ञान है। मनुष्य की पाशविक वृत्तियों के स्थान पर ईश्वरीय सत् शक्ति को प्रतिष्ठित करना ही आध्यात्म विज्ञान का कार्य है। क्षुद्र को महान्, सीमित को असीम, अणु को विभु, बद्ध को मुक्त, पशु को देव बनाना साधना का उद्देश्य है। यह परिवर्तन होने के साथ-साथ ये

सामर्थ्य-शक्तियाँ भी मनुष्य में आ जाती हैं, जो उस महा-शक्ति में सन्निहित हैं और जिन्हें ऋद्धि-सिद्धि आदि नामों से पुकारते हैं। साधना आध्यात्मिक कायाकल्प की एक वैज्ञानिक प्रणाली है और निःसन्देह ही अन्य साधना-पद्धतियों में गायत्री-साधना सर्वोत्तम है।

निष्काम साधना का तत्त्व-ज्ञान

गायत्री की साधना चाहे निष्काम भाव से की जाए, चाहे सकाम भाव से, पर उसका फल अवश्य मिलता है। भोजन चाहे सकाम भाव से किया जाए, चाहे निष्काम भाव से, उससे भूख शान्त होगी और शरीर को पोषण अवश्य मिलेगा। गीता आदि सत्-शास्त्रों में निष्काम कर्म करने पर इसीलिए जोर दिया गया है कि उचित रीति से सत्कर्म करने पर भी यह निश्चय नहीं कि हम जो फल चाहते हैं, वह नियत समय में मिल ही जायेगा। कई बार ऐसा देखा गया है कि पूरी सावधानी और तत्परता से करने पर भी वह काम पूरा नहीं होता, जिसकी इच्छा से वह काम किया गया था। ऐसी असफलता के अवसर पर साधक खिन्न, निराश, अश्रद्धालु न हो जाए और श्रेष्ठ मार्ग से उदासीन न हो जाए, इसलिये शास्त्रकारों ने निष्काम कर्म को, निष्काम साधना को अधिक श्रेष्ठ बताया है और उसी पर अधिक जोर दिया है।

इसका अर्थ यह नहीं कि साधना का फल निरर्थक चला जाता है या साधना उपहासास्पद ही सीमित है। इसकी आध्यात्मिकता और निष्कामता में संदेह करने की तनिक भी गुंजायश नहीं है। इस दिशा में किये गये प्रयत्न का एक कण भी निरर्थक नहीं जाता। जो लोग किसी भी इस दिशा में कदम बढ़ाते हैं, उन्हें अपने श्रम का भरपूर प्रतिफल अवश्य मिलता है। केवल एक अन्तर है कि सदा अभीष्ट मनोकामना पूर्ण हो जाए, यह सुनिश्चित नहीं है।

कारण यह है कि सकाम कर्मों का परिणाम होता, जो पहले बन चुकी है उन कर्म रेखाओं को मिटाना कठिन होता है। यह रेखायें कई बार तो सामान्य होती हैं और प्रयत्न करने से उनमें हेर-फेर हो जाता है और कई बार वे ऐसी इतनी प्रबल और सुनिश्चित होती हैं कि उनका टलना संभव नहीं होता। ऐसे कठिन प्रारब्धों के सम्बन्ध में बड़े-बड़ों को सम्भव और उनकी भावनाओं को कुचलना पड़ा है।

राम का वन गमन, सीता का परित्याग, कृष्ण का व्याध के बाण से आहत होकर स्वर्ग सिधारना, हरिश्चन्द्र का स्त्री-पुत्र तक को बेचना, नल द्वारा दमयन्ती का परित्याग, पाण्डवों का हिमालय में गलना, [illegible] द्वारा बन्दी होकर मरना, जैसी अनेकों घटनायें इतिहास में ऐसी आती हैं, जिनसे आश्चर्य होता है कि ऐसे लोगों पर ऐसी आपत्तियाँ किस कारण आ गयीं? इसके विपरीत ऐसी घटनाएँ हैं कि मूर्ख, साधनहीन और विपन्न परिस्थितियों के लोगों ने बड़े-बड़े पद तथा ऐश्वर्य पाये, जिन्हें देख कर आश्चर्य होता है कि किसी दैवी सहायता से यह तुच्छ मनुष्य इतना उत्कर्ष प्राप्त करके किस बल से समर्थ हो गये। ऐसी घटनाओं का समाधान प्रारब्ध के भले-बुरे भोगों की अनिवार्यता के आधार पर ही होता है। जो होनहार है वो होकर रहता है, प्रयत्न करने पर भी उसका टलना सम्भव नहीं होता।

यहाँ यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि जब प्रारब्ध ही प्रबल है, तो प्रयत्न करने से क्या लाभ? ऐसा सन्देह करने वालों को समझना चाहिये कि जीवन के सभी कार्य प्रारब्ध पर निर्भर नहीं होते। कोई विशेष परिस्थितियाँ ही ऐसी होती हैं, जो टल न सकें। जीवन का अधिकांश भाग ऐसा होता है जिसमें तात्कालिक कर्मों का फल प्राप्त होता रहता है, किये का परिणाम प्रतिफल हाथों-हाथ मिल जाता है। पर कभी-कभी इसमें ऐसे अपवाद आते रहते हैं कि भला करते बुरा होता है और बुरा करते भलाई हो जाती है। कठोर परिश्रमी और चतुर व्यक्ति घाटे में रहते हैं और मूर्ख तथा आलसी अनायास लाभ से लाभान्वित हो जाते हैं, ऐसे अपवाद सदा नहीं होते, कभी-कभी ही देखे जाते हैं। यदि ऐसी औंधी-सीधी घटनाएँ रोज घटित हों, तब तो संसार की सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाए, कर्तव्य मार्ग ही नष्ट हो जाए। कर्म और फल का बन्धन यदि न दीख पड़ेगा, तो लोग कर्तव्य के कष्ट-साध्य मार्ग को छोड़कर जब जैसे भी बन पड़े, वैसे प्रयोजन सिद्ध करने या भाग्य के भरोसे बैठे रहने की नीति अपना लेंगे और संसार में घोर अव्यवस्था फैल जाएगी। ऐसी उलटबाँसी सदा ही नहीं हो सकती। केवल कभी-कभी ही

ऐसे अपवाद देखने में आते हैं। गायत्री की सकाम साधना जहाँ अधिकतर अभीष्ट प्रयोजन में सफलता उत्पन्न करती है, वहाँ कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वैसा न हो, प्रयत्न निष्फल होता रहे या विपरीत परिणाम हो। ऐसे अपवादों पर प्रारब्ध की प्रबलता ही समझनी चाहिये।

अभीष्ट फल भी न मिले तो भी गायत्री साधना का श्रम निरर्थक नहीं जाता, उससे दूसरे प्रकार के लाभ तो प्राप्त हो ही जाते हैं। जैसे कोई नवयुवक किसी पहलवान को कुश्ती में पछाड़ने के लिये व्यायाम और पौष्टिक भोजन द्वारा अपने शरीर को सुदृढ़ बनाने की उत्साहपूर्वक तैयारी करता है। पूरी तैयारी के बाद भी कदाचित् वह कुश्ती पछाड़ने में असफल रहता है, तो ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उसकी तैयारी निरर्थक चली गयी। वह भी अपने स्थान पर हितकारिणी ही। शरीर की सुदृढ़ता, चेहरे की कान्ति, अंगों की सुडौलता, फेफड़ों की मजबूती, बल-वीर्य की अधिकता, नीरोगिता, दीर्घ जीवन, कार्यक्षमता, बलवान् सन्तान आदि अनेकों लाभ उस बढ़ी हुई तन्दुरुस्ती से प्राप्त होकर रहेंगे।

कुश्ती की सफलता से वंचित रहना पड़ा, ठीक है पर शरीर की बल वृद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले अन्य लाभों से उसे कोई वंचित नहीं कर सकता। गायत्री साधक अपने काम्य प्रयोजन में सफल न हो सके, तो भी उसे अन्य-अन्य अनेकों मार्गों से ऐसे लाभ मिलेंगे, जिनकी आशा बिना साधना के नहीं की जा सकती थी।

मनुष्य ऐसी कामना भी करता है, जो उसे अपने लिये लाभदायक एवं आवश्यक प्रतीत होती है, पर ईश्वरीय दृष्टि में वह कामना उसके लिये अनावश्यक एवं हानिकारक होती है, ऐसी कामनाओं को प्रभु पूरा नहीं करते। बालक अनेकों चीजें माँगता रहता है, पर माता जानती है कि उसे क्या दिया जाना चाहिये, क्या नहीं? बालक के रोने चिल्लाने पर भी माता ध्यान नहीं देती और उस वस्तु से उसे वंचित ही रखती है, जो उसके लिये उपयोगी नहीं। रोगियों के आग्रह भी ऐसे ही होते हैं। कुपथ्य करने के लिये अक्सर माँगा किया करते हैं, पर चतुर परिचारक उनकी माँग को पूरा नहीं करते, क्योंकि वे देखते हैं कि इससे रोगी के प्राणों का खतरा है। बालक या रोगी अपनी माँग के उचित होने में कोई सन्देह नहीं करते, वे समझते हैं कि उनकी माँग उचित, आवश्यक एवं निर्दोष है। इतना होने पर भी वस्तुतः उनका दृष्टिकोण गलत होता है। गायत्री साधकों में बहुत से लोग बालक और रोगी बुद्धि के भी होते हैं। अपनी दृष्टि से उनकी कामना उचित है पर ईश्वर ही जानता है कि किसी व्यक्ति के लिये क्या वस्तु उपयोगी है? वह अपने पुत्रों को उनकी योग्यता, स्थिति, आवश्यकता के अनुकूल ही देता है। असफल गायत्री साधकों में से सम्भव है किन्हीं को बाल-बुद्धि की भावना के कारण ही असफल होना पड़ा हो।

माता अपने किसी बच्चे को खिलौने और मिठाई देकर दुलार करती और किसी को अस्पताल में आपरेशन की कठोर पीड़ा दिलाने ले जाती एवं कड़वी दवा पिलाती है। बालक इस व्यवहार को माता का पक्षपात, अन्याय, निर्दयता या और चाहे जो कुछ समझता है पर माता के हृदय को खोलकर देखा जाय, तो उसके अन्तःकरण में दोनों बालकों के लिये समान प्यार होता है। बालक जिस कार्य को अपने साथ अन्याय या जुल्म समझता है, माता की दृष्टि में वही दुलार का सर्वश्रेष्ठ प्रकार है। हमारी असफलतायें, हानियाँ तथा बाधायें भी कई बार हमारे लाभ के लिये होती हैं। माता हमारी भारी आपत्तियों को उस छोटे कष्ट द्वारा निकाल देना चाहती है। उसकी दृष्टि विशाल है, उसका हृदय बुद्धिमत्तापूर्ण है, क्योंकि उसी में हमारा हित समाया हुआ होता है। दुःख, दारिद्रय, रोग, हानि, क्लेश, अपमान, शोक, वियोग आदि देकर भी वह हमारे ऊपर अपनी महती कृपा का प्रदर्शन करती है। इन कड़वी दवाओं को पिलाकर वह हमारे अन्दर छिपी हुई भयंकर व्याधियों का शमन करके भविष्य के लिये पूर्ण नीरोग बनाने में लगी रहती है। यदि ऐसा अवसर आए, तो गायत्री साधकों को अपना धैर्य न छोड़ना चाहिये और न निराश होना चाहिये, क्योंकि जो माता की गोदी में अपने को डालकर निश्चिन्त हो चुका है, वह घाटे में नहीं रहता। निष्काम भावना से साधना करने वाला भी सकाम साधना वालों से कम लाभ में नहीं रहता। माता से यह छिपा नहीं है कि उसके किस पुत्र को वास्तव में किस वस्तु की आवश्यकता है। जो आवश्यकता उसकी दृष्टि में उचित है, उससे वह अपने किसी बालक को वंचित नहीं रहने देती।

अच्छा हो कि हम निष्काम साधना करें और चुपचाप देखते रहें कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में वह माता

शक्ति किस प्रकार सफलता ला रही है। श्रद्धा और विश्वास के साथ जिसने माता का आश्रय लिया है, वह अपने जीवन में एक दैवी सहायता का प्रतिक्षण अनुभव करेगा और अपनी जीवन आवश्यकताओं से वंचित नहीं रहेगा। यह ध्रुव सत्य है कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती।

इन साधनाओं में अनिष्ट का कोई भय नहीं

मन्त्रों की साधना की एक विशेष विधि-व्यवस्था होती है। नियत साधना-पद्धति के निर्धारित कर्मकाण्ड के अनुसार मन्त्रों का अनुष्ठान करना, पुरश्चरण करना होता है। आमतौर से विधि-पूर्वक किया गया अनुष्ठान साधक के लिये हितकारक सिद्ध होता है और उसके अभाव में उसमें अनिष्ट की सम्भावना रहती है।

ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं कि किसी व्यक्ति ने किसी मन्त्र की या किसी देवता की साधना अथवा कोई योगाभ्यास या तांत्रिक अनुष्ठान किया। साधना की विधि में कोई भूल हो गई या किसी प्रकार अनुष्ठान खण्डित हो गया तो उसके कारण साधक को भारी विपत्ति में पड़ना पड़ता है। ऐसे प्रसंग इतिहास पुराणों में भी हैं। वृत्र और इन्द्र की कथा इसी प्रकार की है, जिन मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण करने पर उन्हें भयंकर संकट सहना पड़ा था।

अन्य वेद मन्त्रों की भाँति गायत्री का भी शुद्ध सस्वर उच्चारण होना और विधिपूर्वक साधना करना उचित है। विधिपूर्वक किये हुए अनुष्ठान सदा शीघ्र सिद्ध होते हैं और उत्तम परिणाम उपस्थित करते हैं। इतना होते हुए भी वेदमाता गायत्री में एक विशेषता है कि कोई भूल होने पर अनिष्ट का कोई भय नहीं होता। जिस प्रकार दयालु, उदार और बुद्धिमती माता अपने बालकों की सदा हितचिन्तना करती है, उसी प्रकार गायत्री शक्ति द्वारा भी साधक का हित ही सम्पादन होता है। माता के प्रति बालक गलतियाँ भी करते रहते हैं, उनके सम्मान में बालक से त्रुटि भी रह जाती है और कई बार तो वे उल्टा आचरण कर बैठते हैं। इतने पर भी माता न तो उनके प्रति दुर्भाव मन में लाती है और न उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है। जब साधारण माताएँ इतनी दयालुता और क्षमा प्रदर्शित करती हैं तो जगज्जननी वेदमाता, सद्गुणों की देवी गायत्री से और भी अधिक आशा की जा सकती है। वह अपने बालकों की अपने प्रति श्रद्धा भावना को देखकर वात्सल्य से गद्गद हो जाती है, बालक की भक्ति भावना को देखकर माता का हृदय उमड़ पड़ता है। उसके आशीर्वाद की अमृत निर्झरिणी फूट पड़ती है, जिससे विधि व्यवस्था में साधना की छोटी-मोटी भूलें, कर्मकाण्ड में अज्ञानवश हुई त्रुटियाँ क्षमा हो जाती हैं।

सतोगुणी भावना का विपरीत फल न होने का विश्वास भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में दिलाया है—

> नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
> स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ — श्रीमद्भगवद्गीता २।४०

अर्थात्—सद्भावना के आरम्भ का नाश नहीं होता, वह निष्फल नहीं जाता। उसका उल्टा फल कभी नहीं निकलता। ऐसा कभी नहीं होता कि सद् इच्छा से किया हुआ कार्य असत् हो जाए और उसका अशुभ परिणाम निकले। थोड़ा भी धर्म-कार्य बड़े भयों से रक्षा करता है।

गायत्री साधना ऐसा ही सात्त्विक सत्कर्म है, जिसे एक बार आरम्भ कर दिया जाए तो मन की प्रवृत्तियाँ उस ओर आकृष्ट ही आकर्षित होती हैं और बीच में किसी कारण छूट जाए, तो फिर भी उसका स्मरण बार-बार आता है और साधक को पुनः आरम्भ करने की इच्छा उठती रहती है। किसी स्वादिष्ट पदार्थ का एक बार स्वाद मिल जाता है, तो बार-बार उसे प्राप्त करने की इच्छा हुआ करती है। गायत्री ऐसा ही अमृतोपम स्वादिष्ट आध्यात्मिक आहार है, जिसे प्राप्त करने के लिए आत्मा बार-बार मचलती है, बार-बार चीख-पुकार करती है। उसकी साधना में कोई भूल रह जाए तो भी उसका उल्टा परिणाम नहीं निकलता। किसी विपत्ति, संकट या अनिष्ट का सामना नहीं करना पड़ता। त्रुटियों का परिणाम यह हो सकता है कि आशा से कम फल मिले या अधिक से अधिक यह कि वह निष्फल चला जाए। इस साधना को किसी थोड़े से भी रूप में प्रारम्भ कर देने से उसका फल तो तुरन्त ही उत्पन्न होता है। उस फल के कारण उन भक्तों को मुक्ति मिल जाती है, जो अन्य उपायों से बड़ी कठिनाइयों से हटाये या मिटाये जा सकते हैं।

इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये भागवत के आठवें स्कन्ध में नारदजी ने भगवान् नारायण से यही प्रश्न किया था कि आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिसे अल्प शक्ति के मनुष्य भी सहज में कर सकें और जिससे माता प्रसन्न होकर उसका कल्याण करें। क्योंकि सभी देवताओं की साधना में प्रायः आचार-विचार, विधि-विधान, व्रत-उपवास के कठिन नियम बतलाये गये हैं, जिनको साधारण श्रेणी और थोड़ी शिक्षा-बुद्धि वाले व्यक्ति पूरा नहीं कर सकते। इस पर भगवान् ने कहा—"हे नारद! मनुष्य अन्य कोई अनुष्ठान करें या न करें, पर एकमात्र गायत्री में ही जो दृढ़ निष्ठा रखते हैं, वे अपने जीवन को धन्य बना लेते हैं। हे महामुने! जो संध्या में अर्घ्य देते हैं और प्रतिदिन गायत्री का तीन हजार जप करते हैं, वे देवताओं द्वारा भी पूजने योग्य बन जाते हैं। जप करने से पहले उसका न्यास किया जाता है क्योंकि शास्त्रकारों का कथन है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'। अर्थात्—'देव जैसा बनकर देवों का भजन करना।' परन्तु किसी कठिनाई या प्रमाद से न्यास न कर सके और अधिष्ठातादेव गायत्री का निराकार भाव से ध्यान करके केवल उसका ही जप करता रहे, तो भी पर्याप्त है। गायत्री का एक अक्षर सिद्ध हो जाने से भी उत्तम ब्राह्मण विष्णु, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि के साथ स्पर्धा करता है। जो साधक नियमानुसार गायत्री की उपासना करता है, वह उसी के द्वारा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।' इस कथानक से विदित होता है कि इस युग में गायत्री की सात्विक और निष्काम साधना ही सर्वश्रेष्ठ है। उससे निश्चित रूप से आत्म कल्याण होता है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए साधकों को निर्भय मन से समस्त आशंकाओं एवं भय को छोड़कर गायत्री की उपासना करनी चाहिये। यह साधारण भ्रम नहीं है, जिसके लिये विशेष भूमिका बाँधे बिना काम न चले। मनुष्य यदि किन्हीं गुरुजन, बड़े-बड़े लोगों को पकड़ना चाहे, तो उसके लिये बहुमूल्य उपायों की आवश्यकता पड़ती है; परन्तु बच्चा अपनी माँ को पकड़ना चाहे तो उसे केवल भक्ति से 'माँ' पुकार देना मात्र काफी होता है। माँ बच्चा खुशी हो जाती है, वात्सल्य के साथ बच्चे को पकड़ने लपकती है और उसे अपने पयोधरों से दुग्धपान कराने लगती है। आइये, हम भी वेदमाता को इसी आकांक्षा से भक्तिभावना से तीव्र पुकारें और उनके अनुग्रह से मिलता हुआ अमृत रस-पान करें।

हमें शास्त्रीय साधना-पद्धति से गायत्री साधना करने का उचित यह प्रयत्न करना चाहिये। अकारण भूल करने से क्या प्रयोजन? अपनी माता अनुचित व्यवहार को भी क्षमा कर देती है, पर इसका मतलब यह नहीं कि उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति में कुछ ढील या उपेक्षा की जाए। जहाँ तक बन पड़े पूर्ण सावधानी के साथ साधना करनी चाहिये, पर साथ ही इस आशंका को मन से निकाल देना चाहिये कि "किञ्चित् मात्र भूल हो गयी, तो बुरा होगा।" इस भय के कारण गायत्री-साधना से वंचित रहने की आवश्यकता नहीं है। स्पष्ट है कि वेदमाता अपने बच्चों की भक्ति-भावना का प्रधान रूप से ध्यान रखती हैं और अज्ञानवश हुई छोटी-मोटी भूलों को क्षमा करती हैं।

साधकों के लिये कुछ आवश्यक नियम

गायत्री साधना करने वालों के लिये कुछ आवश्यक जानकारियाँ नीचे दी जाती हैं—

१—शरीर को शुद्ध करके साधना पर बैठना चाहिये। साधारणतः स्नान के द्वारा ही शुद्धि होती है, पर किसी विवशता, ऋतु-प्रतिकूलता या अस्वस्थता की दशा में हाथ-मुँह धोकर या गीले कपड़े से शरीर पोंछकर भी काम चलाया जा सकता है।

२—साधना के समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिये। शीत की अधिकता हो, तो कसे हुए कपड़े पहनने की अपेक्षा कम्बल आदि ओढ़कर शीत-निवारण कर लेना अच्छा है।

३—साधना के लिये एकान्त खुली हवा की एक ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिये, जहाँ का वातावरण शान्तिमय हो। खेत, बगीचा, जलाशय का किनारा, देव-मन्दिर इस कार्य के लिये उपयुक्त होते हैं, पर जहाँ ऐसा स्थान मिलने की असुविधा हो, वहाँ घर का कोई स्वच्छ और शान्त भाग भी चुना जा सकता है।

४—धुला हुआ वस्त्र पहनकर साधना करना उचित है।

५—पालथी मारकर सीधे-सादे ढंग से बैठना चाहिये। कष्टसाध्य आसन लगाकर बैठने से शरीर को कष्ट

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

होता है और मन बार-बार उचटता है, इसलिये इस तरह बैठना चाहिये कि देर तक बैठे रहने में असुविधा न हो ।

६—रीढ़ की हड्डी को सदा सीधा रखना चाहिये । कमर झुका कर बैठने से मेरुदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा पड़ती है ।

७—बिना बिछाये जमीन पर साधना करने के लिए न बैठना चाहिये । इससे साधना-काल में उत्पन्न होने वाली शारीरिक विद्युत् जमीन पर उतर जाती है । घास या पत्तों से बने हुए आसन सर्वोत्तम हैं । कुश का आसन, चटाई, रस्सियों का बना फर्श सबसे अच्छे हैं । इनके बाद सूती आसनों का नम्बर है । ऊन तथा चर्म के आसन तांत्रिक कर्मों में प्रयुक्त होते हैं ।

८—माला, तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिये । रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शंख आदि की माला गायत्री के तांत्रिक प्रयोगों में प्रयुक्त होती है ।

९—प्रातःकाल २ घण्टे तड़के से जप आरम्भ किया जा सकता है । सूर्य अस्त होने के एक घण्टे बाद तक जप समाप्त कर लेना चाहिये । एक घण्टा शाम का, २ घण्टे प्रातःकाल के, कुल ३ घण्टों को छोड़कर रात्रि के अन्य भागों में गायत्री की दक्षिणमार्गी साधना नहीं करनी चाहिये । तांत्रिक साधनायें अर्ध रात्रि के आस-पास की जाती हैं ।

१०—साधना के लिए चार बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये—(अ) चित्त एकाग्र रहे, मन इधर-उधर न उछलता फिरे । यदि चित्त बहुत दौड़े, तो उसे माता की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाना चाहिये । (ब) माता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास हो, अविश्वासी और शंका-शंकित मति वाले पूरा लाभ नहीं पा सकते । (स) दृढ़ता के साथ साधना पर अड़े रहना चाहिये । अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना, अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में आना साधना के विघ्न हैं । इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते जाना चाहिये । (द) निरन्तरता साधना का आवश्यक नियम है । अत्यन्त कार्य होने या विषम स्थिति आ जाने पर भी किसी न किसी रूप में चलते-फिरते ही सही, पर माता की उपासना अवश्य कर लेनी चाहिये । किसी भी दिन नागा या भूल नहीं करनी चाहिये । समय को रोज-रोज नहीं बदलना चाहिये । कभी सबेरे, कभी दोपहर, कभी तीन बजे तो कभी दस बजे ऐसी अनियमितता ठीक नहीं । इन चार नियमों के साथ की गयी साधना बड़ी प्रभावशाली होती है ।

११—कम से कम एक माला अर्थात् १०८ मन्त्र नित्य जपने चाहिये, इससे अधिक जितने बन पड़ें उतने उत्तम हैं ।

१२—किसी अनुभवी तथा सदाचारी को साधना गुरु नियत करके तब साधना करनी चाहिये । अपने लिये कौन-सी साधना उपयुक्त है, इसका निर्णय उसी से कराना चाहिये । रोगी अपने रोग को स्वयं समझने और अपने आप दवा तथा पथ्य का निर्णय करने में समर्थ नहीं होता, उसे किसी वैद्य की सहायता लेनी पड़ती है । इसी प्रकार अपनी मनोभूमि के अनुकूल साधना बताने वाला, भूलों तथा कठिनाइयों का समाधान करने वाला साधना-गुरु होना अति आवश्यक है ।

१३—प्रातःकाल की साधना के लिये पूर्व को मुँह करके बैठना चाहिये और शाम को पश्चिम की ओर मुँह करके । प्रकाश की ओर, सूर्य की ओर मुँह करना उचित है ।

१४—पूजा के लिये फूल न मिलने पर चावल या नारियल की गिरी को कद्दूकस पर कस कर उसके बारीक पत्तों को काम में लाना चाहिये । यदि किसी विधान में रंगीन पुष्पों की आवश्यकता हो, तो चावल या गिरी के पत्तों को केसर, हल्दी, गेरु, मेंहदी के देशी रंगों से रंगा जा सकता है । विदेशी अशुद्ध चीजों से बने रंग काम में नहीं लेने चाहिये ।

१५—देर तक एक पालथी से, एक आसन में बैठे रहना कठिन होता है, इसलिये जब एक तरफ से बैठे-बैठे पैर थक जाएँ, तब उन्हें बदला जा सकता है । आसन बदलने में दोष नहीं

१६—मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिये साधना के बीच में उठना पड़े, तो शुद्ध जल से

हाथ-मुँह धोकर तब दुबारा बैठना चाहिए और विक्षेप के लिये एक माला का अतिरिक्त जप प्रायश्चित स्वरूप करना चाहिये ।

१७—यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधना स्थगित करनी पड़े, तो दूसरे दिन एक माला अतिरिक्त जप दण्डस्वरूप करना चाहिये ।

१८—जन्म या मृत्यु का सूतक हो जाने पर शुद्धि होने तक माला आदि की सहायता से किया जाने वाला विधिवत् जप स्थगित रखना चाहिये । केवल मानसिक जप मन ही मन चालू रख सकते हैं । यदि इस प्रकार का अवसर सवालक्ष जप के अनुष्ठान काल में आ जाए, तो उतने दिनों अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिये, सूतक निवृत्त होने पर उसी संख्या पर से जप आरम्भ किया जा सकता है, जहाँ से छोड़ा था । उस विक्षेप काल की शुद्धि के लिये एक हजार जप विशेष रूप से करने चाहिये ।

१९—लम्बे सफर में होने, स्वयं रोगी हो जाने या तीव्र रोगी की सेवा में संलग्न रहने की दशा में स्नान आदि पवित्रताओं की सुविधा नहीं रहती । ऐसी दशा में मानसिक जप बिस्तर पर पड़े-पड़े, रास्ता चलते या किसी भी अपवित्र दशा में किया जा सकता है ।

२०—साधक का आहार-विहार सात्त्विक होना चाहिये । आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाये हुए पदार्थ होने चाहिए । अधिक मिर्च-मसाले, तले हुए पकवान, मिष्ठान्न, बासी, बुसे, दुर्गन्धित, मांस, नशीले, अभक्ष्य, उष्ण, दाहक, अनीति उपार्जित, गन्दे मनुष्यों द्वारा बनाये हुए, तिरस्कार पूर्वक दिये हुए भोजन से जितना बचा जा सके, उतना ही अच्छा है ।

२१—व्यवहार जितना भी प्राकृतिक, धर्म-संगत, सरल एवं सात्त्विक रह सके, उतना ही उत्तम है । फैशनपरस्ती, रात्रि में अधिक जगना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच-रंग अधिक देखना, पर निन्दा, छिद्रान्वेषण, कलह, दुराचार, ईर्ष्या, निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मत्सर से जितना बचा जा सके, बचने का प्रयत्न करना चाहिये ।

२२—यों ब्रह्मचर्य तो सदा ही उत्तम है, पर गायत्री-अनुष्ठान के ४० दिन में उसकी विशेष आवश्यकता है ।

२३—अनुष्ठान के दिनों में कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है, जो इस प्रकार है—(१) ठोड़ी के सिवाय सिर के बाल न कटावें, ठोड़ी के बाल अपने हाथ से ही बनावें । (२) चारपाई पर न सोवें, तख्त या जमीन पर सोना चाहिये । (३) इन दिनों अधिक पुष्ट बने पैरों न फिरें । चाम के जूते के स्थान पर खड़ाऊँ आदि का उपयोग करना चाहिये । (४) इन दिनों एक समय आहार, एक समय फलाहार लेना चाहिये । (५) अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम से कम होने दें ।

२४—एकान्त में जप करते समय माला खुले रूप में जपनी चाहिये । जहाँ बहुत आदमियों की दृष्टि पड़ती हो, वहाँ कपड़े से ढक लेना चाहिये या गोमुखी में हाथ डाल लेना चाहिये ।

२५—साधना के उपरान्त पूजा के बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ-तहाँ ऐसी जगह नहीं फेंक देना चाहिये जहाँ वह पैरों तले कुचलती फिरे । उन्हें किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव-मन्दिर, कपास, जौ, चावल का खेत आदि पवित्र स्थानों पर विसर्जित करना चाहिये । चावल चिड़ियों के लिये डाल देना चाहिये । नैवेद्य आदि बालकों को बाँट देना चाहिये । जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य देना चाहिये

२६—वेदोक्त रीति की वैदिक दक्षिण-मार्गी क्रियाओं में और तन्त्रोक्त वाममार्गी क्रियाओं में अन्तर है । दक्षिणमार्गी सरल विधियाँ इस पुस्तक में लिखी हुई हैं, उनमें कोई विशेष कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं है । शाप मोचन, कवच, कीलक, अर्गला, मुद्रा, अंग न्यास आदि कर्मकाण्ड तान्त्रिक साधनाओं के लिये हैं । इस पुस्तक के आधार पर साधना करने वालों को उनकी आवश्यकता नहीं है ।

२७—गायत्री का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन द्विजातियों को है । वर्ण जन्म से भी होते हैं और गुण, कर्म, स्वभाव से भी । आजकल जन्म से जातियों में बड़ी गड़बड़ी हो गयी है । यहाँ तक वर्ण व्यवस्था के नेता

के दोष उन्हीं के पीछे पड़े रहते हैं और कई बार उल्टा अनिष्ट कर डालते हैं। जहाँ अविश्वास के वातावरण में कुछ गड़बड़ी की आशंका हो, वहाँ अपनी स्थिति के पत्र से "शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार" से विशेष परामर्श कर सकता है।

२८—कोई गलती का प्रायश्चित्त करना उचित होता है, पर जब लोग सम्मिलित रूप से गायत्री का उच्चारण नहीं कर सकते। इसलिये उन्हें इस प्रकार जप करना चाहिये कि कण्ठ से ध्वनि होती रहे, होंठ हिलते रहें, पर पास बैठा हुआ व्यक्ति भी स्पष्ट रूप से मन्त्र को न सुन सके। इस प्रकार किया हुआ जप दोष-बाधाओं से मुक्त होता है।

२९—साधना की अनेकों विधियाँ हैं। अनेक लोग अनेक प्रकार से करते हैं। अपनी साधना विधि दूसरों को बताई जाय, तो कुछ न कुछ मीन-मेख निकाल कर संदेह और भ्रम उत्पन्न कर देंगे। इसलिये अपनी साधना विधि हर किसी को नहीं बतानी चाहिये। यदि इसमें परिवर्तन करना पड़े, तो अपने मार्गदर्शक गुरु से ही परामर्श करना चाहिये। यदि कोई दोष की बात होगी, तो अपना मार्गदर्शक उसका सुधार कर देगा। साधक के निर्दोष और सच्चा गुरु होने से उसकी साधना का भी फल मिलता है। वाल्मीकि भी उल्टा राम नाम जप कर सिद्ध हो गये थे।

३०—गायत्री साधना माता की भाँति कल्याणकारी है, वह कभी निष्फल नहीं होती। उसका कोई उल्टा परिणाम भी नहीं होता, भूल हो जाने पर अनिष्ट की कोई आशंका नहीं। इसलिये निर्भय और प्रसन्न चित्त से उपासना करनी चाहिये। अन्य मन्त्र अविधिपूर्वक जपे जाने पर अनिष्ट करते हैं, पर गायत्री में यह बात नहीं है। वह सर्वसुलभ, अत्यन्त सरल और सब प्रकार सुरक्षित है। हाँ, तांत्रिक विधि से की गयी उपासना पूर्ण विधि-विधान के साथ होनी चाहिये, उसमें अन्तर पड़ना हानिकारक है।

३१—जैसे मिठाई को अकेले-अकेले ही चुपचाप खा लेना और बालकों एवं लोगों को उसे न चखाना बुरा है, वैसे ही गायत्री साधना को स्वयं तो करते रहना, पर अन्य प्रियजनों, मित्रों, कुटुम्बियों को उसके लिये प्रोत्साहित न करना, एक बहुत बड़ी बुराई तथा भूल है। इस बुराई से बचने के लिये हर साधक को चाहिये कि अधिक से अधिक लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित करें।

३२—कोई बात समझ में न आती हो या संदेह हो, तो जानकारी के लिये "शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार" से अपना निवारण करा लेना चाहिये।

३३—साधना अपने समय पर ही आरम्भ कर सबसे बड़ा नियम का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एक साधना पूरी करके उसे नवीनता से थोड़े से विश्राम पीछे भी आप उसको ही मानस बना लेना चाहिये। इस प्रकार साधना पूरी होने पर उस बात उठाकर ही नया आरम्भ करना चाहिये।

अपनी पूजा सामग्री ऐसी जगह रखनी चाहिये, जिसे अन्य लोग अधिक स्पर्श न करें।

साधना एकाग्रता और स्थिर चित्त से होनी चाहिये

साधना के लिये एकाग्र और शान्त चित्त की आवश्यकता है। चित्त को एकाग्र करने का यही अर्थ है कि इधर-उधर भटकना, उद्वेग, चिन्ता और भविष्य की कल्पनाओं से रहित हो, एक ही जगह एकत्र होती है। यदि यह सब बातें साधक के पास न हों, तो साधना पूर्ण सफल नहीं होती। उद्विग्न, अशान्त, चिन्तित, क्रोधित, भय आदि आवेशों में ग्रस्त मन एक जगह नहीं ठहरता, वह अस्त-व्यस्त इधर-उधर भागता है। कभी भय के चित्र सामने आते हैं, कभी दुर्दशा की बात करते हैं। ऐसी स्थिति में साधना कैसे हो सकती है? एकाग्रता न होने से साधना के समय पर न मन लगता है न ध्यान। उस समय बड़ी कठिनाई से मन बहलाव करता है, फिर जल्दी समाप्त करता है। यह स्थिति साधना के लिये उपयुक्त नहीं। जब तक मन सब ओर से हट कर, सब बातें भुलाकर एकाग्रता और तन्मयता के साथ श्रद्धा पूर्वक माता के चरणों में नहीं लगता, तब तक उसमें वह चुम्बक शक्ति पैदा नहीं होगी जो माता को आकर्षित करे और अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में उसकी सहायता प्राप्त कर सके।

दूसरी कठिनाई है—श्रद्धा की कमी। कितने ही मनुष्यों की मनोभूमि बड़ी शुष्क एवं अश्रद्धालु होती है, उन्हें आध्यात्मिक तत्त्वों पर मन से कभी विश्वास नहीं होता। किसी के बहुत कहने-सुनने पर, वे परीक्षा करने का कौतूहल

मन में उठता है कि देखें यह मन्त्र कहाँ तक सच है ? इस सन्देह को जानने के लिये किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की पूर्ति की कसौटी बनाते हैं और उस कार्य की तुलना में पैसा परिश्रम नहीं करना चाहते। वे चाहते हैं कि १०-२० माला मन्त्र जपते ही उनका महत्त्वपूर्ण मनोरथ आनन-फानन में पूरा हो जाए। कोई-कोई सज्जन तो ऐसी मनौती मानते देखे गये हैं कि हमारा अमुक कार्य पहले पूरा हो जाए तो अमुक मात्रा में गायत्री साधना पीछे करेंगे। उनका कहना ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि पहले जमीन से निकल कर पानी हमारे खेत को सींच दे, तब हम जल—'देवता को प्रकट करने के लिये कुआँ खुदवा देंगे।' वे सोचते हैं कि शायद अदृश्य शक्तियाँ हमारी उपासना के बिना भूखी बैठी होंगी, हमारे बिना उनका काम रुका पड़ा रहेगा, इसलिये उनसे वायदा कर दिया जाए कि पहले अमुक मजदूरी कर दो, तब तुम्हें खाना खिला देंगे या तुम्हारे रुके हुए काम पूरा करने में सहायता देंगे। यह वृत्ति उपहासास्पद है, उनके अविश्वास तथा ओछेपन को प्रकट करती है।'

अविश्वासी, अश्रद्धालु, अस्थिर चित्त के मनुष्य भी यदि गायत्री साधना को नियमपूर्वक करते चलें, तो कुछ समय में उनके यह तीनों दोष दूर हो जाते हैं और श्रद्धा, विश्वास एवं एकाग्रता उत्पन्न होने से सफलता की ओर तेजी से कदम बढ़ने लगते हैं। इसलिये चाहे किसी की मनोभूमि अविश्वासी तथा अस्थिर ही क्यों न हो, पर साधना में लग ही जाना चाहिये। एक न एक दिन त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी और माता की कृपा प्राप्त होकर ही रहेगी।

श्रद्धा और विश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। इसके द्वारा मनुष्य असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाता है। भगीरथ ने श्रद्धा के बल से ही हिमालय पर्वत में मार्ग बनाकर गंगा को पृथ्वी पर अवतरण कराया। श्रद्धा और विश्वास के प्रभाव से ही ध्रुव और प्रह्लाद जैसे छोटे बालकों ने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया। इसी आधार पर तुलसीदास और सूरदास जैसे वासनाग्रस्त व्यक्ति सन्त शिरोमणि बन गये। इसलिये यदि हम इस महान् शक्ति का आश्रय लें, तो हमारे चित्त की चंचलता और अस्थिरता क्रमशः अवश्य दूर हो जायेंगे। आवश्यकता इतनी ही है कि हम नियमपालन का ध्यान रखें और जो संकल्प किया है, उस पर दृढ़ बने रहें। इसके फल से हमारी मानसिक दुर्बलता अथवा शारीरिक अशक्ति का निराकरण स्वयं होता जायेगा और हमारी साधना अन्त में अवश्य सफल होगी।

शास्त्र कहता है—**'संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः'** सन्देह करने से मन्त्र हत हो जाता है और व्यग्रचित्त से किया हुआ जप निष्फल रहता है। अतएव, भय, अश्रद्धालु और अस्थिर होने पर कोई विशेष प्रयोजन सफल नहीं हो सकता। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने एक उपाय दूसरों द्वारा साधना कराना बताया है। किसी अधिकारी व्यक्ति को साधना कार्य में लगा देना और उसकी समुचित पूर्ति स्वयं कर, देना एक सीधा-सादा निर्दोष परिवर्तन है। किसान अन्न देकर कपड़ा लेता है और जुलाहा कपड़ा। आवश्यकता होने पर अन्न और कपड़े की अदला-बदली हो जाती है। जिस प्रकार वकील, डॉक्टर, अध्यापक, कारीगर आदि का श्रम, मूल्य देकर खरीदा जा सकता है और उस खरीदे हुए श्रम का मनचाहा उपयोग अपने प्रयोजन के लिये किया जा सकता है, उसी प्रकार किसी शुद्ध चरित्र सत्पुरुष को गायत्री-उपासना के लिये नियुक्त किया जा सकता है। इसमें सन्देह और अस्थिर चित्त होने के कारण जो कठिनाइयाँ मार्ग में आती हैं, उनका हल आसानी से हो जाता है।

कार्य-व्यस्त और अशिक्षित धार्मिक-मनोवृत्ति के लोग बहुधा अपनी शान्ति, सुरक्षा और उन्नति के लिये गोपाल सहस्रनाम, विष्णु सहस्रनाम, महामृत्युंजय, दुर्गासप्तशती, शिव-महिम्न, गंगालहरी आदि का पाठ नियमित रूप से कराते हैं। वे किसी ब्राह्मण से मासिक दक्षिणा पर नियत समय के लिये अनुबन्ध कर लेते हैं, जितने समय वह पाठ करता है, उसका पारिश्रमिक मूल्य दक्षिणा के रूप में उसे दिया जाता है। इस प्रकार वर्षों यह क्रम निर्बाधगति चलता रहता है। किसी विशेष अवसर या विशेष रूप से विशेष प्रयोजन के लिये विशेष अनुष्ठानों के आयोजन भी होते हैं। नव-दुर्गाओं के अवसर पर बहुधा लोग दुर्गा पाठ कराते हैं, शिवरात्रि को शिव महिम्न, गंगा दशहरा को गंगा लहरी, दीवाली को श्रीसूक्त का पाठ अनेकों पण्डितों को बैठाकर अपनी सामर्थ्यानुसार लोग अधिकाधिक कराते हैं। मन्दिर में भगवान् की पूजा के लिये पुजारी नियुक्त कर दिये जाते हैं। मन्दिरों के संचालक की ओर से वे पूजा करते हैं और संचालक उनके परिश्रम का मूल्य चुका देते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन गायत्री साधना में

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

भी हो सकता है। अपने शरीर, वस्त्र, पवित्रता और व्यवहारों की शुद्धता तथा शक्ति के लिये गायत्री का जप एक, दो हजार की संख्या में नित्य करें, ऐसे कुछ आवश्यक सौभाग्य लोग आपको मिल सकते हैं। इस प्रकार कोई लाभ होने पर उसकी प्रसन्नता, शुभ आशा के लिये उसका निमित्त निकालकर भी गायत्री अनुष्ठान किसी सत्पात्र ब्राह्मण द्वारा कराया जा सकता है। ऐसे अवसरों पर साधना करने वाले ब्राह्मण को अन्न, वस्त्र, दक्षिणा तथा दक्षिणा रूप में उचित पारिश्रमिक प्रसन्नतापूर्वक देना चाहिये। सन्तुष्ट ब्राह्मण का सच्चा आशीर्वाद उस प्रयोजन के फल को और भी बढ़ा देता है। ऐसे अनुष्ठान कराने वालों को भी ऐसा सन्तोषी होना चाहिये कि थोड़ा-बहुत मिलने पर भी सन्तुष्ट रहें और आशीर्वादात्मक भावनायें मन में रखें। असन्तुष्ट होकर दुर्भावनायें प्रेरित करने पर तो दोनों का ही समय, श्रम तथा धन निष्फल होता है।

अच्छा तो यह है कि हर साधक अपनी साधना स्वयं करे। कहावत है—'आप काज सो महाकाज।' परन्तु यदि मजबूरी के कारण ऐसा न हो सके, कार्य-व्यस्तता, अस्वस्थता, अशिक्षा, मित्र, विघ्नकारक स्थिति आदि के कारण यदि अपने से साधना न बन पड़े, तो अनुष्ठान पद्धति के निर्देश एवं छोटे-बड़े विधान के अनुसार योग्य अधिकारी पात्रों से वह कार्य कराया जा सकता है। यह प्रक्रिया भी काफी प्रभावपूर्ण और लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसे ब्राह्मण एवं अधिकारी अनुष्ठानकर्ता तलाश करने में शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार संस्थान से सहायता ली जा सकती है।

गायत्री द्वारा सन्ध्यावन्दन

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनका नित्य करना मनुष्य का अनिवार्य कर्तव्य है, ऐसे कर्मों को नित्यकर्म कहते हैं। नित्यकर्मों के उद्देश्य हैं, १—आवश्यक तत्त्वों का संचय। २—अनावश्यक तत्त्वों का त्याग। शरीर को प्रायः नित्य ही कुछ न कुछ नई आवश्यकता होती है। प्रत्येक गतिशील वस्तु अपनी गति को स्थिर रखने के लिये कहीं न कहीं से नई शक्ति प्राप्त करती है, यदि वह न मिले तो उसका अन्त हो जाता है। रेल के लिये कोयला-पानी, मोटर के लिये पेट्रोल, तार के लिये बैटरी, इंजन के लिये तेल, सिनेमा के लिये बिजली की आवश्यकता होती है। जीवों का जीवन खाद्य-पानी पर निर्भर रहता है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, प्रकृति के अनुसार अन्न, जल, वायु लेकर ही जीवन धारण करते हैं। यदि आहार न मिले तो शरीर-यात्रा असम्भव है। कोई भी गतिशील वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव, अपनी गतिशीलता को स्थिर रखने के लिये आहार अवश्य चाहेगी।

इसी प्रकार प्रत्येक गतिशील पदार्थ में प्रतिक्षण कुछ न कुछ मल जमता रहता है, जिसे जल्दी साफ करने की आवश्यकता पड़ती है। रेल के कोयले की राख, मशीनों में तेल की कीट जमा होती है। शरीर में प्रतिक्षण मल बनता है और वह मूत्र, पसीना, मल, थूक, कफ, आँसू, नाखून आदि के रूप में निकलता रहता है। यदि सफाई न हो, तो देह में इतना विष एकत्रित हो जाएगा कि दो चार दिन में ही जीवन संकट उपस्थित हुए बिना न रहेगा। मकान में बुहारी न लगायी जाए, कपड़े को न धोया जाए, बर्तन को न माँजा जाए, शरीर को स्नान न कराया जाए तो एक-दो दिन में ही मैल जम जाएगा और गन्दगी, कुरूपता, बदबू, मलिनता तथा विकृति उत्पन्न हो जाएगी।

आत्मा सबसे अधिक गतिशील और चैतन्य है, उसे भी आहार की और मल-विसर्जन की आवश्यकता पड़ती है। स्वाध्याय, सत्संग, आत्म-चिन्तन, उपासना, साधना आदि साधनों द्वारा आत्मा को आहार प्राप्त होता है और वह बलवान्, चैतन्य तथा क्रियाशील रहती है। जो लोग इन आहारों से अपने अन्तःकरण को वंचित रखते हैं और सांसारिक झंझटों में ही हर घड़ी लगे रहते हैं, उनका शरीर चाहे कितना ही मोटा हो, धन-दौलत कितना ही उनका क्यों न हो जाए, पर आत्मा भूखी ही रहती है। इस भूख के कारण वह निर्बल, निस्तेज, शिथिल और अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़ी रहती है। इसीलिये शास्त्रकारों ने आत्म-साधना को नित्यकर्म में सम्मिलित करके मनुष्य के लिये उसे एक आवश्यक कर्तव्य घोषित किया है।

आत्मिक साधना से आत्म-शक्ति और मल-विसर्जन दोनों महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न रूप से होते हैं। आत्मिक भावना, विचारधारा और अन्तर्ज्योति को बलवान्, चैतन्य एवं क्रियाशील बनाने वाली पद्धति को साधना कहते हैं। यह साधना उन विकारों, कषायों एवं विषों की भी सफाई करती है, जो सांसारिक विषयों और उलझनों के कारण

जिस पर धूल जमने से साफ ही करते रहते हैं। शरीर को दो बार स्नान कराना, दो बार शौच जाना आवश्यक समझा जाता है। आत्मा के लिये भी यह क्रिया दो बार होनी आवश्यक है, इसी को सन्ध्या कहते हैं। शरीर से आत्मा का महत्त्व अधिक होने के कारण त्रिकाल सन्ध्या की साधना का शास्त्रों में वर्णन है। तीन बार न बन पड़े, तो प्रातः-सायं दो बार से काम चलाया जा सकता है। जिनकी रुचि इधर बहुत ही कम है, वे एक बार तो कम से कम यह समझकर करें कि सन्ध्या हमारा आवश्यक नित्य कर्म है, धार्मिक कर्त्तव्य है। उसे न करने से पाप विकारों का जमाव होता रहता है, फलतः आत्मा मलिन होती जाती है, यह दोषों से बचने पाप कर्मों से सुधार है। अतएव पातक भार से बचने के लिये भी सन्ध्या को हमारे आवश्यक नित्य कर्मों में स्थान मिलना उचित है।

सन्ध्या वन्दन की अनेक विधियाँ हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं। उनमें सबसे सरल, सुगम, सीधी एवं अत्यधिक प्रभावशाली उपासना गायत्री मन्त्र द्वारा होने वाली 'ब्रह्मसन्ध्या' है। इसमें केवल एक ही गायत्री मन्त्र याद करना होता है। अन्य सन्ध्या विधियों की भाँति अनेक मन्त्र याद करने और अनेक प्रकार के विधि-विधान याद रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सूर्योदय या सूर्यास्त समय को सन्ध्याकाल कहते हैं। यही समय सन्ध्यावन्दन का है। सुविधानुसार इसमें थोड़ा आगे-पीछे भी कर सकते हैं। नित्यप्रति सन्ध्या करने वालों के लिये नियत समय निश्चित होना ठीक है। नित्यकर्म से निवृत्त होकर शरीर को स्वच्छ करके सन्ध्या के लिए बैठना चाहिये, उस समय देह पर कम से कम वस्त्र होने चाहिये। खुली हवा का एकान्त स्थान मिल सके, तो सबसे अच्छा, अन्यथा घर का ऐसा भाग तो चुनना चाहिये, जहाँ कम खटपट और शुद्धता रहती हो। कुश का आसन, चटाई, टाट या चौकी बिछाकर, पालथी मारकर मेरुदण्ड सीधा रखते हुए सन्ध्या के लिये बैठना चाहिये। प्रातःकाल पूर्व की ओर, सायंकाल को पश्चिम की ओर मुँह करके बैठना चाहिये। पास में जल से भरा पात्र रख लेना चाहिये, सन्ध्या के पाँच कर्म हैं उनका वर्णन नीचे लिखा जाता है।

(१) आचमन

जल से भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करना चाहिये। बाँये हाथ से पात्र को उठाकर हथेली में थोड़ा-सा गड्ढा करके उसमें जल भरें और गायत्री मन्त्र पढ़ें, मन्त्र पूरा होने पर उस जल को पी लें। तीनों बार इसी प्रकार करें। तीन बार आचमन करने के उपरान्त दाहिने हाथ को पानी से धो डालें। पास में रखे हुए अँगोछे से हाथ-मुँह पोंछ लें, जिससे हथेली, ओंठ और मुँह आदि पर आचमन किये जाने का अंश शेष न रह जाय।

आचमन त्रिगुणमयी माता की त्रिविध शक्तियों को अपने अन्दर धारण करने के लिये है। प्रथम आचमन के साथ सतोगुणी विश्वव्यापी सूक्ष्म शक्ति 'ह्रीं' का ध्यान करते हैं और भावना करते हैं कि विद्युत् सदृश सूक्ष्म नील-किरणें मेरे अन्तःकरण के ओत-प्रोत सब ओर से इस जल में प्रवेश कर रही हैं और यह जल शक्ति से ओत-प्रोत हो रहा है। आचमन करने के साथ वे परिपूरित सब शक्तियाँ अपने अन्दर प्रवेश करने की भावना रखनी चाहिये कि मेरे अन्दर सद्गुणों का पर्याप्त मात्रा में प्रवेश हुआ है, इसी प्रकार दूसरे आचमन के साथ रजोगुणी 'श्रीं' शक्ति की पीतवर्ण किरणों को जल में आकर्षित होने और तीसरे आचमन में तमोगुणी 'क्लीं' भावना की रक्त वर्ण शक्तियों को अपने में धारण होने का भाव जाग्रत् होना चाहिये।

जैसे बालक माता का दूध पीकर उसके गुणों और शक्तियों को अपने में धारण करता है और परिपुष्ट होता है, इसी प्रकार साधक मन्त्र बल से अभिमन्त्रित किये जल को गायत्री-माता के दूध के समान पान करता है और उसका पान करके अपने आत्मबल को बढ़ाता है। इस आचमन से उसे त्रिविध ह्रीं, श्रीं, क्लीं की शक्ति से युक्त आत्म-बल मिलता है, तदनुसार उसको आत्मिक पवित्रता, सांसारिक समृद्धि को सुदृढ़ बनाने वाली शक्ति प्राप्त होती है।

(२) शिखा-बन्धन (वन्दन)

आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिये, जो सिरा नीचे से खुल जाय। इसे आधी गाँठ कहते हैं। गाँठ लगाते समय गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते जाना चाहिये।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

शिखा, मस्तिष्क के केन्द्र बिन्दु पर स्थापित है। जैसे रेडियो के ब्राडकास्ट स्टेशनों में ऊँचे खम्भे लगे होते हैं और वहाँ से ब्राडकास्ट की तरंगें चारों ओर फेंकी जाती हैं, इसी प्रकार हमारे मस्तिष्क का विद्युत् भण्डार शिखा स्थान पर है, इस केन्द्र में से वे तरंगें विचार, संकल्प और शक्ति परमाणु हर घड़ी बाहर निकल-निकलकर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिये शिखा में गाँठ लगा देते हैं। सदा गाँठ लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत-सा अपव्यय बच जाता है।

सन्ध्या करते समय विशेष रूप से गाँठ लगाने का प्रयोजन यह है कि रात्रि को सोते समय वह गाँठ प्रायः शिथिल हो जाती है या खुल जाती है। फिर स्नान करते समय केश शुद्धि के लिये शिखा को खोलना पड़ता है। सन्ध्या करते समय अनेक सूक्ष्म तत्त्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थिर होते हैं, वे सब मस्तिष्क केन्द्र से निकलकर बाहर न उड़ जाएँ और कहीं अपने को खाली न रहना पड़े, इसलिये शिखा में गाँठ लगा दी जाती है। फुटबाल के भीतर की रबड़ में हवा भरने की एक नली होती है। इसमें गाँठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकल पाती। साइकिल के पहियों में भरी हुई हवा को रोकने के लिये भी एक छोटी-सी वाल्वट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है, जिससे भीतर हवा भीतर तो जा सकती है, बाहर नहीं आ सकती। गाँठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूरा होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण करता है। भीतर के तत्त्वों का अनावश्यक व्यय नहीं होने देती।

आचमन से पूर्व शिखा बन्धन इसलिये नहीं होता, क्योंकि उस समय विविध शक्ति का आकर्षण नहीं होता, वह आचमन के बाद केन्द्र द्वारा ही होता है। इस प्रकार शिखा खुली रहने से कुछ लाभ होता है। तत्पश्चात् उसे बाँध दिया जाता है।

(३) प्राणायाम

सन्ध्या का तीसरा कोष है प्राणायाम अथवा प्राणाकर्षण। गायत्री की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्व पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि सृष्टि दो प्रकार की है—(१) जड़ अर्थात् परमाणुमयी, (२) चैतन्य अर्थात् प्राणमयी। निर्जीव जगत् में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग—वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं, उसी प्रकार चैतन्य प्राण-तत्त्व की हलचलों से चैतन्य जगत् की विविध घटनाएँ घटित होती हैं। जैसे वायु आकाश में भरी हुई है, उसी प्रकार वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्म चैतन्य प्राण तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। इस तत्त्व की न्यूनाधिकता से हमारा मानस-क्षेत्र निर्बल तथा बलवान् होता है। इस प्राणतत्त्व को जो जितनी मात्रा में आकर्षित कर लेता है, धारण कर लेता है, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलशाली हो जाती है। आत्मतेज, शूरता, दृढ़ता, पुरुषार्थ, विशालता, महानता, सहनशीलता, धैर्य, स्थिरता सरीखे गुण प्राण शक्ति के परिचायक हैं। जिनमें प्राण कम होता है, वे शरीर से स्थूल भले ही हों, पर डरपोक, दब्बू, झेंपने वाले, कायर, अस्थिर मति, संकीर्ण, अनुदार, स्वार्थी, अपराधी मनोवृत्ति के, चटोरे, आलसी, तुच्छ, दीन विचारों में ग्रस्त एवं चंचल मनोवृत्ति के होते हैं। इन बुराइयों के होते हुए कोई व्यक्ति महान् नहीं बन सकता। इसलिये साधक को प्राण शक्ति अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करने की आवश्यकता होती है। जिस क्रिया द्वारा विश्वव्यापी प्राणतत्त्व में से खींचकर अधिक मात्रा में प्राणशक्ति को हम अपने अन्दर धारण करते हैं, उसे प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम में सदैव मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठना चाहिए, क्योंकि मेरुदण्ड में स्थित इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा प्राणशक्ति का आवागमन होता है और यदि रीढ़ टेढ़ी झुकी रहे, तो मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक प्राण की धारा निर्बाध गति से न पहुँच सकेगी। अतः प्राणायाम का वास्तविक लाभ न मिल सकेगा।

प्राणायाम के चार भाग हैं—(१) पूरक (२) अन्तः कुम्भक (३) रेचक (४) बाह्य कुम्भक। वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर ही रोके रहने के नाम को अन्तः कुम्भक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना साँस के रहने को वायु को बाहर रोके रहने को बाह्य कुम्भक कहते हैं। इन चारों के लिये गायत्री

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

मन्त्र के चार भागों की नियुक्ति की गई है। पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः स्वः', अन्तः कुम्भक के साथ 'तत्सवितुर्वरेण्यं', रेचक के साथ 'भर्गो देवस्य धीमहि', बाह्य कुम्भक के साथ 'धियो यो नः प्रचोदयात्' मन्त्र का जप होना चाहिये।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिये, नेत्रों को बन्द या अधखुले रखिये। अब साँस को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिये और 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र भाग का मन ही मन उच्चारण करते चलिये और भावना कीजिये कि 'विश्वव्यापी दुःखनाशक, सुख स्वरूप ब्रह्म की चैतन्य प्राण शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ।' इस भावना और इस मन्त्र के साथ धीरे-धीरे साँस खींचिये और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें, भर लीजिये।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिये और 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस भाग का जप कीजिये, साथ ही भावना कीजिये कि 'नासिका द्वारा खींचा हुआ यह प्राण श्रेष्ठ है। सूर्य के समान तेजस्वी है। इसका तेज मेरे अंग-प्रत्यंग में, रोम-रोम में भरा जा रहा है।' इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को भीतर रोके रखें।

(स) अब नासिका द्वारा वायु धीरे-धीरे बाहर निकालना आरम्भ कीजिये और 'भर्गो देवस्य धीमहि' इस मन्त्र भाग को जपिये तथा भावना कीजिये कि 'यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है।' वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिये, जितना कि वायु खींचने में लगाया था।

(द) जब भीतर की सब वायु बाहर निकल जाए, तो जितनी देर वायु को भीतर रोके रखा था, उतनी ही देर बाहर रोके रखें अर्थात् बिना साँस लिये रहें और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मन्त्र भाग को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि भगवती वेदमाता आद्य-शक्ति गायत्री सद्बुद्धि की जागृति कर रही हैं।

यह एक प्राणायाम हुआ। अब इसी प्रकार पुनः इन क्रियाओं की पुनरावृत्ति करते हुए दूसरा प्राणायाम करें। सन्ध्या में यह पाँच प्राणायाम करने चाहिये, जिससे शरीर में स्थित प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नामक पाँचों प्राणों का व्यायाम, संस्फुरण और परिमार्जन हो जाता है।

(४) अघमर्षण

अघमर्षण कहते हैं—पाप के नाश करने को। गायत्री को सूक्ष्म साधक के प्रवेश करने से पाप का नाश होता है। प्रकाश के आगमन के साथ-साथ अन्धकार नष्ट हो जाता है, शुभ संकल्पों के उदय के साथ-साथ पापों का भी संहार होता है। सद्-बुद्धि के साथ-साथ निर्बलता का अन्त हो चलता है। यह सन्ध्या की सारी भावनाएँ हमारे अघ का मर्षण करती रहती हैं।

अघमर्षण के लिये दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसे दाहिने नथुने के समीप ले जाना चाहिये। समीप का अर्थ है—छः अंगुल दूर। बायें हाथ के अँगूठे से बायाँ नथुना बन्द कर लें और दाहिने नथुने से धीरे-धीरे साँस खींचना आरम्भ करें। साँस खींचते समय ऐसी भावना करें कि गायत्री माता का शुभ्र तेजोमय यह जल अपनी दिव्य शक्ति से संचित पापों का संहार करने के लिये साँस के साथ मेरे अन्दर प्रवेश कर रहा है और भीतर के पापों का, कषाय-कल्मषों का, विकारों का संहार कर रहा है।

जब पूरी साँस खींच चुकें, तो बायाँ नथुना खोल दें और दाहिना नथुना अँगूठे से बन्द करें और साँस बाहर निकालना आरम्भ करें। दाहिनी हथेली पर रखे हुए जल को अब बायें नथुने के सामने करें और भावना करें कि 'नष्ट हुए पापों की लाशों का समूह साँस के साथ बाहर निकल कर इस जल में गिर रहा है।' जब साँस पूरी तरह बाहर निकल जाए, तो उस जल को बिना देखे घृणापूर्वक बायीं ओर पटक देना चाहिये।

अघमर्षण क्रिया के जल को हथेली में भरते समय 'ॐ भूर्भुवः स्वः' दाहिने नथुने से साँस खींचते समय 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इतना मन्त्र भाग जपना चाहिये और बायें नथुने से साँस छोड़ते समय 'भर्गो देवस्य धीमहि' और जल पटकते समय 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिये जिससे काया के, वाणी के, मन के त्रिविध पापों का संहार हो सके।

(५) न्यास

न्यास कहते हैं धारण करने को। प्रधान अंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति को धारण करने, स्थापित करने, भरने, ओत-प्रोत करने के लिये न्यास किया जाता है। गायत्री के प्रत्येक शब्द का महत्त्वपूर्ण अवयवों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे सितार के अमुक भाग को, अंगुली आदि के साथ उँगली का आघात लगाने से अमुक स्वर निकलते हैं, उसी प्रकार शरीर के अंगों को मन्त्र के शब्दों के साथ दिव्य भाव से संकृत किया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि अपवित्र अंगों से पूजा करने वाले पुरुष से दैवी शक्तियाँ ठीक प्रकार से नहीं हो सकतीं, इसलिये उसके प्रमुख स्थानों में ऐसा भावनात्मक संस्थापन करके उनमें इतनी मात्रा दैवी तत्त्वों की स्थापित कर दी जाती है कि वह दैवी साधना का अधिकारी बन जाए।

न्यास के लिये किसी बहुत उपकरण की आवश्यकता नहीं, केवल जल से उँगलियों को भिगोकर स्पर्श करना पर्याप्त है। गायत्री के न्यास में अँगूठा और अनामिका उँगली का प्रयोग प्रयोजनीय बताया गया है। अँगूठा और अनामिका उँगलियों को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिये कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्र तथा बलवान् हो रहे हैं। अंग स्पर्श के साथ किस प्रकार मन्त्रोच्चार करना चाहिये—

ॐ भूर्भुवः स्वः—मूर्धायै
तत्सवितुः—नेत्राभ्यां
वरेण्यं—कर्णाभ्यां
भर्गो—मुखाय
देवस्य—कण्ठाय
धीमहि—हृदयाय
धियो यो नः—नाभ्यै
प्रचोदयात्—हस्तपादाभ्यां

यह न्यास अन्य शरीर ब्रह्माण्ड के साथ योग में आवश्यक भी बताये कि आत्मशक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं। शरीर ब्रह्माण्ड के साथ जिन ग्रन्थियों का सम्बन्ध रहता है, वे पाँच मानी जाती हैं पर गायत्री योग के अन्तर्गत सात इन्द्रियाँ मानी जाती हैं—

१. मूर्धा (मस्तिष्क, बाल) २. नेत्र ३. कर्ण ४. वाणी और रसना ५. हृदय, अन्तःकरण ६. नाभि, जननेन्द्रिय ७. कर्मेन्द्रिय (हाथ-पैर) इन सातों में अपवित्रता न रहे, इनके द्वारा कुकर्म न होने पायें, अनीतिपूर्ण आचरण न हो, इस दृष्टिकोण से न्यास किया जाता है। इस तरह अंगों में गायत्री की सात शक्तियाँ निवास करती हैं। उन्हें जागृत न्यास द्वारा किया जाता है। जाग्रत हुई शक्तियाँ अपने-अपने स्थान की रक्षा करती हैं, अवांछनीय तत्त्वों का प्रवेश रोकती हैं। इस प्रकार साधक का अन्तःप्रदेश बाह्य शक्ति का सुदृढ़ दुर्ग बन जाता है।

इस पंचकोश का विनियोग करने के पश्चात्, आचमन, शिखा-बन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गायत्री का जप आरम्भ करना चाहिये। अथवा उच्चारण जप में मन्त्रोच्चार इस प्रकार करना चाहिये कि कंठ से ध्वनि होती रहे, ओष्ठ हिलते रहें, पर पास बैठा हुआ व्यक्ति भी सुन न सके।

जप करते हुए वेदमाता गायत्री का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये मानो यह हमारे हृदय सिंहासन पर बैठी अपनी ज्योतिपूर्ण किरणों को चारों ओर बिखेर रही है और उससे हमारा अन्तःप्रदेश आलोकित हो रहा है। इस प्रकार नेत्र बन्द करके ध्यान करना चाहिये। अपने हृदयाकाश में आकाश के समान ही एक विस्तृत शून्य लोक की कल्पना करके उसमें सूर्य के समान प्रकाशवान् ज्योति की कल्पना भी करते रहना चाहिये। यह ज्योति और प्रकाश गायत्री माता को ही प्रतिमा रूप में होता है। इसका अनुभव साधक को कुछ समय की साधना के पश्चात् स्पष्ट रीति से होने लगता है। इस प्रकार की साधना के फलस्वरूप नेत्र बन्द करने पर ज्योति में विविध रंगों के दर्शन होते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे साधक सिद्धि की ओर बढ़ता है और ध्यान के उच्च सोपान पर पहुँच जाता है।

गायत्री का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व सुलभ ध्यान

मानव-मस्तिष्क बड़ा ही आश्चर्यजनक, शक्तिशाली एवं चुम्बक गुण वाला यन्त्र है। उसकी एक-एक नस-नाड़ी इतनी विलक्षण है कि उसकी गतिविधि, कार्यक्षमता और क्रियाशीलता को देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक दंग रह जाते हैं। इन अणुओं को जब किसी विशेष दिशा में नियोजित कर दिया जाता है, तो उसी दिशा में एक सनसनाती हुई अग्नि शिखा जलने लगती है। जिस दिशा में मनुष्य इच्छा, आकांक्षा और लालसा करता है, उसी दिशा में, उसी ढंग से, उसी स्वरूप में शरीर की शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं।

पहले भावनाएँ मन में आती हैं। फिर जब उन भावनाओं पर चित्त एकाग्र होता है, तब वह एकाग्रता, एक चुम्बक शक्ति आकर्षण के रूप में प्रकट होती है और अपने अभीष्ट तत्त्वों को अखिल आकाश में से खींच लाती है। ध्यान का यही विज्ञान है। इस विज्ञान के आधार पर, प्रकृति के अन्तराल में निवास करने वाली सूक्ष्म आध्यात्मिक ब्रह्मस्वरूपा गायत्री को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। उसके शक्ति भण्डार को प्रचुर मात्रा में अपने अन्दर धारण किया जा सकता है।

जप के समय अथवा किसी अन्य सुविधा के समय में नित्य गायत्री का ध्यान किया जाना चाहिये। एकान्त, कोलाहल रहित, शान्त वातावरण के स्थान में स्थिर चित्त होकर ध्यान के लिये बैठना चाहिये। शरीर शिथिल रहे। यदि जप काल में ध्यान किया जा रहा है, तब तो पालथी मारकर, मेरुदण्ड सीधा रखकर ध्यान करना उचित है। यदि अलग समय में करना हो, तो आरामकुर्सी पर लेटकर या मसनद, दीवार, वृक्ष आदि का सहारा लेकर ध्यान करना चाहिये। शरीर बिल्कुल शिथिल कर दिया जाए, इतना शिथिल मानो देह निर्जीव हो गयी हो। इस स्थिति में नेत्र बन्द करके दोनों हाथों को गोदी में रखकर ऐसा ध्यान करना चाहिये कि "इस संसार में सर्वत्र केवल नील आकाश है, उसमें कहीं कोई वस्तु नहीं है।" प्रलयकाल में जैसी स्थिति होती है, आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता, वैसी स्थिति की कल्पना चित्त पर में भलीभाँति अंकित करना चाहिये। जब यह कल्पना चित्त भूमिका में भली-भाँति अंकित हो जाय, तो सुदूर आकाश में एक छोटे ज्योति पिण्ड को सूक्ष्म नेत्रों से देखना चाहिये। सूर्य के समान प्रकाशवान् एक छोटे तारे के रूप में गायत्री का ध्यान करना चाहिये। यह ज्योति पिण्ड, अधिक निकट आता है, बड़ा होता जाता है और तेज अधिक प्रखर हो जाता है।

चन्द्रमा या सूर्य के मध्य भाग में ध्यानपूर्वक देखा जाए, तो उसमें काले-काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं, इसी प्रकार उस गायत्री तेज पिण्ड में ध्यानपूर्वक देखने से आरम्भ में भगवती गायत्री की धुँधली-सी प्रतिमा दीख पड़ती है। धीरे-धीरे ध्यान करने वाले को वह मूर्ति अधिक स्पष्ट, अधिक स्वच्छ, अधिक चैतन्य, हँसती, बोलती, चेष्टा करती, संकेत करती तथा भाव प्रकट करती हुई दिखाई पड़ती है। हमारी इस गायत्री महाविज्ञान पुस्तक के आरम्भ में ब्रह्मरूपी गायत्री का एक चित्र दिया हुआ है। उस चित्र का ध्यान आरम्भ करने से पूर्व कई बार बड़े ध्यान से, भली-भाँति अंग-उपांगों का निरीक्षण करके उस मूर्ति को मनःक्षेत्र में इसी प्रकार बिठाना चाहिये कि ज्योति पिण्ड में ठीक वैसी ही प्रतिमा की झाँकी होने लगे। कोई दिनों के बाद दैवीकरण से साक्षीभूत गायत्री की छवि अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त हृदयग्राही रूप में ध्यानावस्था में दृष्टिगोचर होने लगती है।

जैसे सूर्य की किरणें धूप में बैठे हुए मनुष्य के ऊपर पड़ती हैं और वह किरणों की उष्णता को प्रत्यक्ष अनुभव करता है, वैसे ही यह ज्योति पिण्ड जब समीप आने लगता है, तो ऐसा अनुभव होता है मानो कोई दिव्य तेजपुञ्ज अपने मस्तक में, अन्तःकरण और शरीर के रोम-रोम में प्रवेश करके अपना अधिकार जमा रहा है, जैसे अग्नि में पड़ने से लोहा भी धीरे-धीरे गरम और लाल रंग का अग्निवर्ण हो जाता है, वैसे ही अपने गायत्री माता के तेज को ध्यानावस्था में साधक अपने अन्दर धारण करता है, तो वही सच्चिदानन्द स्वरूप, ज्योतिर्मय होकर ब्रह्मतेज में झिलमिलाने लगता है। उसे अपना सम्पूर्ण शरीर तप्त स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल अनुभव होता है और अन्तःकरण में एक अलौकिक दिव्य रूप का प्रकाश सूर्य के समान प्रकाशित हुआ दीखता है। इस तेज संस्थान में आत्मा के ऊपर पड़े हुए अपने कलुष-कल्मष जल-जल कर भस्म हो जाते हैं और साधक अपने को पापरहित, निर्मल, निर्भय, निष्पाप, निरामय अनुभव करता है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इस तेज धारण, ध्यान में कई बार रंग बिरंगे प्रकाश दिखाई पड़ते हैं, कई बार प्रकाश के छोटे-मोटे रंग बिरंगे तारा प्रकट होते, जगमगाते और छिपते दिखाई पड़ते हैं। वे एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर चलते हैं तथा उलटे वापस लौट पड़ते हैं। कई बार चमत्कार एवं धूम्र की तरह तेजी से इस दिशा में चलते हुए छोटे-मोटे प्रकाश खण्ड दिखाई पड़ते हैं। यह सब सफलता देने वाले चिह्न हैं। अन्तःभूमि में गायत्री-शक्ति की वृद्धि होने से छोटी-छोटी अनेकों शक्तियाँ एवं गुप्तशक्तियाँ विकसित होती हैं, वे भी ऐसे छोटे-छोटे रंग-बिरंगे प्रकाश बिन्दुओं के रूप में परिलक्षित होता है।

जब साधना अधिक प्रगाढ़, पुष्ट और परिपक्व हो जाती है, तो मस्तिष्क के मध्य भाग या हृदय स्थान पर वही गायत्री तेज स्थिर हो जाता है। यही सिद्धावस्था है। जब यह तेज बाह्य आकाश से खिसककर अपने अन्दर स्थिर हो जाता है, तो ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे अपना शरीर और गायत्री का तेज एक ही स्थान पर सम्मिलित हो गये हों। भूत-प्रेत का आवेश शरीर में आ जाने पर मनुष्य उस प्रेतात्मा की इच्छानुसार काम करता है, वैसे ही गायत्री शक्ति का आवेश अपने अन्दर हो जाने से साधक विचार, कार्य, आचरण, स्वभाव, रुचि, इच्छा, आकांक्षा एवं ध्येय में पवित्रता अनुभव करता है। उसकी मनुष्यता में से पशुता घटती जाती है और देवत्व की मात्रा बढ़ती जाती है।

सद्बुद्धि प्रदान करना गायत्री का प्रधान गुण है। जब गायत्री तेजःपिण्ड की किरणें अपने ऊपर पड़ने की ध्यान-भावना की जा रही हो, तब यह भी अनुभव करना चाहिये कि ये किरणें सद्बुद्धि, सात्विकता एवं सदाचार को उसी प्रकार हमारे ऊपर डाल रही हैं, जिस प्रकार कि सूर्य की किरणें गर्मी तथा [illegible] प्रदान करती हैं। इस ध्यान से थोड़े ही समय में साधक अनुभव करता है कि उसके मस्तिष्क में सद्बुद्धि, अन्तःकरण में सात्विकता तथा शरीर में सदाचार की मात्रा बढ़ रही है। यह वृद्धि यदि थोड़ी-थोड़ी करके भी निरन्तर होती रहे, तो धीरे-धीरे कुछ ही समय में वह बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाती है, जिससे साधक, ब्रह्मतेज का एक बड़ा भण्डार बन जाता है। ब्रह्म-तेज तो वह हुण्डी है, जिसे लोक व परलोक दोनों में से किसी भी बैंक में भुनाया जा सकता है, उसके बदले में दैवी या सांसारिक सुख कोई भी वस्तु प्राप्त की जा सकती है।

पापनाशक और शक्तिवर्द्धक तपश्चर्याएँ

अग्नि की उष्णता से संसार के सभी पदार्थ जल, गल या पक जाते हैं। कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें अग्नि का संसर्ग होने पर भी परिवर्तन न होता हो। तपस्या की अग्नि भी ऐसी ही है। वह पापों के समूह को विविध रूप से गलाकर नष्ट कर देती है, फलस्वरूप मन-प्रदेश उज्ज्वल बना देती है अथवा जलाकर भस्म कर देती है।

जो अशुभ-कर्म मनुष्य के संचित में जड़ जमा और प्रारब्ध बन चुके हैं, जिनका भोगना प्रायः अनिवार्य रेखा की भाँति सुनिश्चित हो चुका है, वे कष्ट-साध्य भोग, तपस्या की अग्नि के कारण गलकर नष्ट हो जाते हैं। उनका भोगना अनावश्यक हो जाता है। जो पाप परिपाक हो चुके हैं और भयंकर दुर्भाग्य होकर प्रकट होने वाला था, वह साधारण-सा कष्ट देकर या छोटी-मोटी घटनाओं के रूप में आकर चला जाता है। जिस पाप के कारण हाथ या पैर कट जाते, भारी रक्तस्राव होने की संभावना थी, वह मामूली ठोकर लगने से या काँटा आदि चुभने से दस-बीस बूँद खून बहकर निवृत्त हो जाता है। जन्म-जन्मान्तरों के संचित वे पाप जो कई-कई जन्मों तक चलते रहते, वे छोटी-मोटी सिद्ध पुरुष के रूप में प्रकट होकर इसी जन्म में निवृत्त हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग, मुक्ति का आनन्द निष्कंटक जन्म मिलने का मार्ग साफ हो जाता है। देखा गया है कि तपस्वियों को इस जन्म में प्रायः कुछ आपत्तियाँ रहती हैं। इसका कारण यह है कि जन्म-जन्मान्तरों के संचित पाप समूह का भुगतान इसी जन्म में होकर आगे का मार्ग साफ हो जाए। इसलिये ईश्वरीय कानून की तरह इनमें भुगतने कुछ कठिनाइयाँ भी मिलते रहते हैं। [illegible]

वस्तुतः इस प्रकार होता है कि पाप का फल जो भुगतना पड़ता है, उसका स्वरूप बड़ा व्यापक हो जाता है। पापों के लिए, अनीति के लिए, नरक, पीड़ा और [illegible] के लिए जो कष्ट सहने पड़ते हैं, वे ऐसे ही हैं जैसे [illegible]

पीड़ा। प्रसूता को प्रसवकाल में पीड़ा तो होती है, पर उसके साथ-साथ एक उत्कंठा भी रहता है। बच्चे के मुख का सुन्दर बालक देखकर तो वह पीड़ा बिल्कुल भुला दी जाती है। राजा हरिश्चन्द्र, दधीचि, प्रह्लाद, मोरध्वज आदि को जो कष्ट सहने पड़े, उनके लिये उस काल में भी वे आत्मसन्तोष से, अन्ततः अमर कीर्ति और सद्गति की दृष्टि से तो वे कष्ट उनके लिये सब प्रकार मंगलमय हो गये। दान देने में जहाँ पाप मुक्ति होती है, वहाँ यश तथा शुभ गति की भी प्राप्ति होती है। तप द्वारा इस प्रकार 'उधार पर खाना और मेहमान जीम जाना' दो कार्य एक साथ हो जाते हैं।

दूसरा लाभ इस प्रकार का होता है कि जो पाप अभी प्रारब्ध नहीं बने हैं, भूल, अज्ञान या मजबूरी से बने हैं, वे छोटे-मोटे अशुभ कर्म तप की अग्नि में जलकर अपने आप भस्म हो जाते हैं। सूखे हुए घास-पात के ढेर को अग्नि की छोटी-सी चिनगारी जला डालती है, वैसे ही इस श्रेणी के पाप कर्म आत्मग्लानि, प्रायश्चित्त और भविष्य में वैसा न करने के दृढ़ निश्चय से अपने आप नष्ट हो जाते हैं। प्रकाश के सम्मुख जिस प्रकार अन्धकार विलीन हो जाता है, वैसे ही तपस्वी के अन्तःकरण की प्रखर किरणों से पिछले कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं और साथ ही उन कुसंस्कारों की छाया, दुर्भाग्य, कष्टकारक परिस्थितियों की घटा का भी अन्त हो जाता है।

तपश्चर्या से पूर्वकृत पापों का शमन, कष्टसहन एवं आत्मबल होता हो सो बात भी नहीं है, वरन् तपस्वी में एक नवीन प्रकार की आत्मिक अग्नि पैदा होती है। इस अग्नि को दैवी विद्युत् शक्ति, आत्म-तेज, तपोबल आदि नामों से भी पुकारते हैं। इस बल से अन्तःकरण में छिपी हुई गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं, दिव्य सद्गुणों का विकास होता है। स्फूर्ति, उत्साह, साहस, धैर्य, दूरदर्शिता, संयम, सन्मार्ग में प्रवृत्ति आदि अनेकों गुणों की विशेषता प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगती है। कुसंस्कार, कुविचार, कुटेव, कुकर्म से छुटकारा पाने के लिये तपश्चर्या एक रामबाण अस्त्र है। प्राचीन काल में अनेक देव-दानवों ने तपश्चर्याएँ करके मनोरथ पूरा करने वाले वरदान पाये हैं।

घिसने की रगड़ से गर्मी पैदा होती है। अपने को तपस्या के पत्थर पर घिसने से आत्म-शक्ति का उद्भव होता है। समुद्र को मथने से चौदह रत्न निकले। दूध के मथने से घी निकलता है। काम मन्थन से प्राणधारी बालक की उत्पत्ति होती है। भूमि मन्थन से अन्न उपजता है। तपस्या द्वारा आत्म-मन्थन से उच्च आध्यात्मिक तत्त्वों की वृद्धि का लाभ प्राप्त होता है। पत्थर पर घिसने से चाकू तेज होता है। अग्नि में तपाने से सोना निर्मल बनता है। तप से तपा हुआ मनुष्य भी पापमुक्त, तेजस्वी और विवेकवान् बन जाता है।

तपस्वी आत्मशक्ति के गायत्री उपासकों का प्रसंग बहुत महत्त्वपूर्ण है। नीचे कुछ पाप नाशिनी और आत्मतेज-वर्द्धिनी तपश्चर्याएँ बताई जाती हैं—

(१) अस्वाद तप

तप उन कष्टों को कहते हैं, जो अभ्यस्त वस्तुओं के अभाव में सहने पड़ते हैं। भोजन में नमक और मीठा ये दो स्वाद की प्रधान वस्तुएँ हैं। इनमें से एक भी वस्तु न डाली जाय, तो वह भोजन स्वाद रहित हो जाता है। सब लोगों को स्वादिष्ट भोजन करने का अभ्यास होता है। इन दोनों स्वाद तत्त्वों को या इनमें से एक को छोड़ देने से जो भोजन बनता है, उसे सात्त्विक प्रकृति वाला ही कर सकता है। राजसिक प्रकृति वालों का मन इससे नहीं भरता। जैसे-जैसे स्वाद रहित भोजन में सन्तोष पैदा होता है, वैसे ही वैसे सात्त्विकता बढ़ती जाती है। अपनी सुविधा से एक सप्ताह, एक मास या एक ऋतु के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। आरम्भ में बहुत लम्बे समय के लिये नहीं करना चाहिये। यह अस्वाद-तप हुआ।

(२) तितिक्षा तप

सर्दी या गर्मी के कारण शरीर को जो कष्ट होता है, उसे थोड़ा-थोड़ा सहन करना चाहिये। जाड़े की ऋतु में मोजे और दुपट्टा या कुर्ता दो वस्त्रों में गुजारा करना, रात को रुई का कपड़ा ओढ़कर या कम्बल से काम चलाना, गरम पानी का प्रयोग न करके ताजे जल से स्नान करना, अग्नि न तापना, यह शीत सहन के तप हैं। पंखा, छाता और बर्फ का त्याग यह गर्मी की तपश्चर्या है।

(३) कर्षण तप

खासकर एक-दो घण्टे रोज ऐसे शारीरिक परिश्रमों में लगा जाय, अपने हाथ से बनाया भोजन करना, अपने लिये स्वयं जल भरकर लाना, अपने हाथ से वस्त्र धोना, अपने शरीर स्वयं मलना आदि अपनी सेवा के काम दूसरों से कम से कम कराना। जूता न पहनकर खड़ाऊँ या नंगे पैर से काम चलाना, पलंग पर शयन न करके तख्त या भूमि पर शयन करना, धातु के पात्र प्रयोग न करके पत्तल या हाथ में भोजन करना, वस्तुओं की सवारी न करना, सादी पोशाक, पैदल यात्रा करना आदि कर्षण तप है। इसमें अतिरिक्त शारीरिक सुविधाओं का त्याग और असुविधाओं को सहन करना पड़ता है।

(४) उपवास

गीता में उपवास को विषय विकार से निवृत्त करने वाला बताया गया है। एक समय अन्नाहार और एक समय फलाहार, आरम्भिक उपवास है, धीरे-धीरे इसकी कठोरता बढ़ानी चाहिये। दो समय फल, दूध, दही आदि का आहार इससे कठिन है। केवल दूध या छाछ पर रहकर या केवल जल पीकर किया जा सकता है। आठ पहर एक उपवास में कई बार अधिक मात्रा में बिना प्यास के भी पानी पीना चाहिये। जो लोग उपवास में जल नहीं पीते या कम पीते हैं, वे भारी भूल करते हैं। इससे पेट की अग्नि आँतों में पड़े मल को सुखाकर गाँठें बना देती है। इसलिये उपवास में कई बार पानी पीना चाहिये। उसमें नीबू, सोडा, शक्कर मिला लिया जाए, तो स्वास्थ्य और आत्म-शुद्धि के लिए और भी अच्छा है।

(५) गव्य कल्प तप

शरीर और मन के अनेक विकारों को दूर करने के लिये गव्यकल्प अद्भुत है। राजा दिलीप जब निःसन्तान रहे, तो उन्होंने कुल गुरु के आश्रम में गौ चराने की तपस्या करके सन्तान प्राप्त की थी। वशिष्ठ जी की गौ वे चराते थे और गोरस का सेवन करके ही रहते थे। गाय का दूध, गाय का दही, गाय की छाछ, गाय का घी सेवन करना, गाय के गोबर के कण्डों से दूध गरम करना चाहिये। गोमूत्र की शरीर पर मालिश करके फिर में स्नान करना, दाद, खाज, चर्म रोगों तथा रक्त विकारों के लिये बड़ा लाभदायक है। गाय के शरीर से निकलने वाला तेज बड़ा सात्विक एवं बलदायक होता है, इसलिये गौ चराने का भी बड़ा सूक्ष्म लाभ है। गौ के दूध, दही, घी, छाछ पर मनुष्य रहकर काम निर्वाह करे, तो उससे शरीर का एक प्रकार से कल्प हो जाता है।

(६) प्रदातव्य तप

अपने पास जो शक्ति हो, उसमें से कम मात्रा में अपने लिये रखकर दूसरों को अधिक मात्रा में दान देना है। धनी आदमी धन का दान करते हैं। जो धनी नहीं हैं, वे अपने समय, बुद्धि, ज्ञान, चातुर्य, सहयोग आदि को उधार या दान देकर दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं। शरीर का, मन का दान भी धन-दान की ही भाँति महत्त्वपूर्ण है। अनीति उपार्जित धन का सबसे अच्छा उपयोग यही है कि उसको सत्कार्य के लिये दान कर दिया जाए। कमाई का कुछ न कुछ भाग लोकसेवा के लिये लगाना आवश्यक है। दान देते समय पात्र और कार्य का ध्यान रखना आवश्यक है। कुपात्र को दिया हुआ, अनुपयुक्त कर्म के लिये दिया गया दान व्यर्थ है। मनुष्येतर प्राणी भी दान के अधिकारी हैं। गौ, चींटी, चिड़ियाँ, कुत्ते आदि उपकारी जीव जन्तुओं को भी अन्न-जल का दान देने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

स्वयं कष्ट सहकर, अभावग्रस्त रहकर भी दूसरों की अनेक सहायता करना, उन्हें उत्साहित, शिक्षित, सद्गुणी बनाने में सहायता करना, सुविधा देना दान का वास्तविक उद्देश्य है। इस प्रसंग में धर्म-शास्त्रों का कहा-सुना भरा हुआ है। इसलिये मनुष्य के उपार्जन में अधिक भाग दान जाए। वेद ने कहा है— "सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से दान करो।"

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

(७) निष्कासन तप

अपनी बुराइयों और पापों को गुप्त रखने से मन भारी रहता है । पेट में मल भरा रहे, तो उससे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अपने पापों को छिपाकर रखा जाए, तो वह पुराना सड़े हुए मल की तरह बदबू और सड़न पैदा करने वाले समस्त मानसिक क्षेत्र को दूषित कर देता है । इसलिये कुछ ऐसे मित्र चुनने चाहिये जो काफी गम्भीर और विश्वस्त हों । उनसे अपनी बात कहकर मन हल्का कर देना चाहिये । अपनी कठिनाइयाँ, दुःख गाथाएँ, इच्छाएँ, अनुभूतियाँ एवं इसी प्रकार किन्हीं ऐसे लोगों से कहते रहना चाहिये, जो उसे उदार हों कि उन्हें सुनकर घृणा न करें और कभी विरोधी हो जाने पर उन्हें दूसरों से प्रकट करके हानि न पहुँचायें । यह गुप्त बातों का प्रकटीकरण एक प्रकार का आध्यात्मिक जुलाब है, जिससे मनोभूमि निर्मल होती है ।

शास्त्रों में "दोष प्रकाशन" का महत्त्वपूर्ण स्थान है । गौहत्या हो जाने का प्रायश्चित्त शास्त्रों ने यह बताया है कि मरी गौ की पूँछ हाथ में लेकर एक-सौ गाँवों में वह व्यक्ति उच्च स्वर से चिल्ला-चिल्लाकर यह कहे कि मुझसे गौ-हत्या हो गयी । इस दोष प्रकाशन से भी हत्या का दोष छूट जाता है । जिसके साथ बुराई की हो उससे क्षमा माँगनी चाहिये, क्षतिपूर्ति करनी चाहिये और जिस प्रकार वह संतुष्ट हो सके वह करना चाहिये । यदि यह भी न हो तो कम से कम दोष प्रकाशन द्वारा अपनी अन्तरात्मा का एक भारी बोझ तो हल्का करना ही चाहिये । इस प्रकार के दोष प्रकाशन के लिये 'शान्तिकुञ्ज हरिद्वार' को एक विश्वसनीय मित्र समझकर पत्र द्वारा अपने दोषों को लिखकर उनके सम्बन्ध में सुधार की सलाह प्रसन्नतापूर्वक ली जा सकती है ।

(८) साधना तप

गायत्री का चौबीस हजार जप नौ दिन में पूरा करना, सवा लक्ष जप चालीस दिन में पूरा करना, गायत्री पाठ, गायत्री की नोट लिखना, पुरश्चरण, पूजन, स्तोत्र पाठ आदि साधनाओं से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है । कम पढ़े लोग "गायत्री चालीसा" का पाठ नित्य करके अपनी गायत्री भक्ति को बढ़ा सकते हैं और इस साधना से बढ़ी हुई शक्ति के द्वारा तपोबल के अधिकारी बन सकते हैं ।

(९) ब्रह्मचर्य तप

वीर्य-रक्षा, मैथुन से बचना, काम-विकार पर काबू रखना ब्रह्मचर्य तप है । मानसिक काम-सेवन शारीरिक काम-सेवन की ही भाँति हानिकारक है । मन को कामक्रीड़ा की ओर न जाने देने का सबसे अच्छा उपाय उसे उच्च आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारों में लगाये रहना है । बिना इसके ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो सकती । मन को ब्रह्म में, सत् तत्त्व में लगाये रहने से आत्मोन्नति भी होती है, धर्म साधना भी और वीर्य रक्षा भी । इस प्रकार एक ही उपाय से तीन लाभ प्राप्त करना गायत्री साधना चाहने वालों के लिये श्रेष्ठ उपाय है ।

(१०) चान्द्रायण तप

यह व्रत पूर्णमासी से आरम्भ किया जाता है । पूर्णमासी को अपनी जितनी पूर्ण खुराक हो, उसका सोलहवाँ भाग प्रतिदिन कम करते जाना चाहिये । जैसे आपका पूर्ण आहार एक सेर है, तो प्रतिदिन एक छटाँक आहार कम करते जाना चाहिये, कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा जैसे १-१ कला नित्य घटता है, वैसे ही १-१ सोलहवाँश नित्य कम करते चलना चाहिये । अमावस्या और प्रतिपदा को चन्द्रमा बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता । उन दो दिनों बिल्कुल भी आहार न लेना चाहिये । फिर शुक्ल पक्ष की दौज को चन्द्रमा एक कला से निकलता है और धीरे-धीरे बढ़ता है वैसे ही १-१ सोलहवाँश बढ़ाते हुए पूर्णमासी तक पूर्ण आहार पर पहुँच जाना चाहिये । एक मास में आहार विहार का संयम, स्वाध्याय, सत्संग में प्रवृत्ति, आत्मिक ओजस्विता तथा गायत्री साधना में उत्साहपूर्वक संलग्न रहना चाहिये ।

अर्ध चान्द्रायण व्रत पन्द्रह दिन का होता है । उसमें भोजन का आठवाँ भाग आठ दिन कम करना और आठ दिन बढ़ाना होता है । आरम्भ में अर्ध चान्द्रायण ही करना चाहिये । जब एक बार सफलता मिल जाए, तो पूर्ण चान्द्रायण के लिये कदम बढ़ाना चाहिये ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उपवास, स्वास्थ्य का बड़ा प्रभावशाली साधन है। प्रकृति ने उपवास काल में जो दूषित अवयवों का परिशोधन होता रहता है, उससे शरीर में पुष्टिकर या निःस्वास्थ्य तत्व की वृद्धि हो जाती है। उपवास काल में जब पेट खाली रहता है, तो जठराग्नि उन दोषों को ही पचाने लगती है। इससे शरीर शुद्ध होता है और रक्त स्वच्छ हो जाता है। किसी भी रोग में निराहार रहना नहीं होने और अधिकतर में दवाओं का परीक्षण करना होगा, एकाएक किसी रोग या बीमारी का निराकरण हो ही नहीं सकता। इसलिये स्वास्थ्यकामी पुरुष के लिये उपवास बहुत बड़े महत्त्व वस्तु के समान है। अन्य उपवासों से चान्द्रायण व्रत में यह विशेषता है कि इसमें भोजन का घटाना और बढ़ाना एक नियम और क्रम से होता है, जिससे उसका विपरीत प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ता। अन्य लम्बे उपवासों में जिनमें भोजन को एकदम दस-पन्द्रह दिन के लिये छोड़ दिया जाता है, उपवास को खत्म करते समय बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और अधिकांश व्यक्ति उस समय अधिक मात्रा में अनुपयुक्त आहार कर लेने से व्याधित रोगों के शिकार हो जाते हैं। यह चान्द्रायण व्रत में बिल्कुल नहीं होता।

(११) मौन तप

मौन से शक्तियों का क्षरण रुकता है, आत्म-बल एवं संकल्प बढ़ता है, दैवी शक्तियों की वृद्धि होती है, चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, शान्ति का अनुभव होता है, चोरी-चुगली झूठ जैसी बुराइयाँ न होने से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रतिदिन या सप्ताह में अथवा मास में कोई नियत समय मौन रहने के लिये निश्चित करना चाहिये। कई दिन या लगातार भी ऐसा व्रत रखा जा सकता है। अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार मौन की अवधि निर्धारित करनी चाहिये। मौन समय का अधिकांश भाग एकान्त में स्वाध्याय अथवा ब्रह्म चिन्तन में व्यतीत करना चाहिये।

(१२) अर्जन तप

विद्याध्ययन, शिल्प-शिक्षा, देशाटन, कला-शिक्षा, संगीत आदि किसी भी प्रकार की उत्पादक, उपयोगी शिक्षा प्राप्त करके अपनी शक्ति, योग्यता, चतुरता, क्रियाशीलता, उपयोगिता बढ़ाना अर्जन तप है। विद्यार्थी को यह उतना पड़ता है, जिस प्रकार तप सहना पड़ता है और सुविधाएँ छोड़कर कठिनाइयों से भरा कार्यक्रम अपनाना पड़ता है, वह तप ही कहलाता है। केवल बालकपन में ही नहीं, गृहस्थावस्था और वृद्ध पर्यन्त किसी न किसी रूप में अर्जन करते रहने का प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञान में थोड़ा या अधिक जो कुछ लाभ हो, उससे स्वयं लाभ उठाना ही चाहिये, जिससे अपनी योग्यताएँ बढ़ती चलें और उनके द्वारा अधिक लोक-सेवा करना सम्भव हो सके।

ऊपर की बारह तपश्चर्यायें ऐसी हैं, गायत्री के यह बारह तप हैं। इनमें से जो जब, जिस प्रकार सम्भव हो, उसे अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार अपनाते रहना चाहिये। ऐसा भी हो सकता है कि वर्ष के बारह महीनों में एक-एक महीने एक-एक तप करके वर्ष पूरा तप वर्ष मनाया जाए।

साथ में दिनचर्या तप में एक-दो तप नियमित किये जा सकते हैं। दिन को अपनी डायरी में एक खास तरह अपनी बुराइयाँ लिखते रहना चाहिये और उन्हें अपने पथ-प्रदर्शक को दिखाना चाहिये। यह क्रम अधिक दिन तक जारी रखा जाए, तो और भी उत्तम है। महात्मा गाँधी साबरमती आश्रम में अपने आश्रमवासियों की डायरी बड़े गौर से जाँचा करते थे।

अन्य तपों में तितिक्षा को प्रवीण करने के लिये अनेकों रीतियाँ हो सकती हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी अवधि के लिये निर्धारित करके अपना अभ्यास और साहस बढ़ाना चाहिये। आरम्भ में थोड़े और सरल तप अपनाने से पीछे दीर्घकाल तक और कठिन तपश्चर्या साधना करना भी सुलभ हो जाता है।

गायत्री साधना से पापमुक्ति

गायत्री की अनन्य कृपा से पापियों को उपकार मिलता है और पापियों के पाप नाश होते हैं। इस तथ्य पर विचार करते हुए हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि आत्मा, अविनाशी, निर्विकार, पवित्र, शुद्ध, बुद्ध और निर्लिप्त है। जैसे काँच या पारदर्शी पात्र में किसी रंग का पानी भर दिया जाए, तो उसी रंग का दीखने लगेगा,

अर्थात् उसे उसी रंग का मान लिया जाएगा। इसके बाद भी काँच का मूल स्वरूप रंग रहित ही रहता है। एक रंग का काँच हटा दिया जाए, तो फिर इस परिवर्तन के साथ ही काँच दूसरे रंग का दिखाई देने लगेगा। मनुष्य की यही स्थिति है। आत्मा स्वभावतः निर्विकार है, पर उसमें जिस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव भर जाते हैं, वह उसी प्रकार का दिखाई देने लगता है।

गीता में कहा है कि—"विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल आदि को जो समान बुद्धि से देखता है, वही पण्डित है।" इस कथन का मतलब यह है कि आत्मा सर्वथा निर्विकार है, उसकी मूल स्थिति में परिवर्तन नहीं होता, केवल मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्तःकरण चतुष्टय ऐसे विकारग्रस्त हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य अस्वाभाविक, विषम, विकृत दशा में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। इस स्थिति में यदि परिवर्तन हो जाए, तो आज के दुष्ट का कल ही सन्त बन जाना कुछ भी कठिन नहीं है। इतिहास बताता है कि एक ब्राह्मण कुलोत्पन्न तस्कर बदलकर महर्षि वाल्मीकि हो गया। जीवन भर वेश्यावृत्ति करने वाली गणिका आन्तरिक परिवर्तन के कारण परम साध्वी देवियों को प्राप्त होने वाली सद्गति की अधिकारिणी हुई। कसाई का पेशा करते हुए जिन्दगी गुजार देने वाले अजामिल और सदन परम भागवत भक्त कहलाये। इस प्रकार अनेकों नीच काम करने वाले उच्चता को प्राप्त हुए हैं और हीन कुलोत्पन्नों को उच्च वर्ण की प्रतिष्ठा मिली है। रैदास चमार, कबीर जुलाहे, रामानुज शूद्र, शठकोपाचार्य चाण्डाल, तिरुवल्लुवर अन्त्यज वर्ण में उत्पन्न हुए थे, पर उनकी स्थिति अनेकों ब्राह्मणों से ऊँची थी। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने थे।

जहाँ पतित स्थिति से ऊपर चढ़ने के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है, वहाँ उच्च स्थिति के लोगों के पतित होने के भी उदाहरण कम नहीं हैं। पुलस्त्य के उत्तम ब्रह्मकुल में उत्पन्न हुआ चारों वेदों का महापण्डित रावण, मनुष्यता से भी पतित होकर राक्षस कहलाया। खोटा अन्न खाने से द्रोण और भीष्म जैसे ज्ञानी पुरुष, अन्यायी कौरवों के समर्थक हो गये। विश्वामित्र ने क्रोध में आकर वसिष्ठ के निर्दोष बालकों की हत्या कर डाली। पाराशर ने धीवर की कुमारी कन्या से व्यभिचार करके सन्तान उत्पन्न की, विश्वामित्र ने वेश्या पर आसक्त होकर उसे लम्बे समय तक अपने पास रखा, चन्द्रमा जैसा देवता गुरु पत्नी के साथ कुमार्गगामी बना, देवताओं के राजा इन्द्र को व्यभिचार के कारण शाप का भाजन होना पड़ा, ब्रह्मा अपनी पुत्री पर ही मोहित हो गये, ब्रह्मचारी नारद मोहग्रस्त होकर विवाह करने स्वयंवर में पहुँचे, अनेक पत्नी वाले वयोवृद्ध च्यवन ऋषि को सुकुमारी सुकन्या से विवाह करने की सूझी, बलि राजा के दान में बाधा डालते हुए शुक्राचार्य ने अपनी आँख फोड़ी, धर्मराज युधिष्ठिर तक ने अश्वत्थामा के मरने की पुष्टि करके अपने गुरु पर आक्रमण होने और भी ये 'नरो वा कुञ्जरो वा' गुनगुनाकर अपने को झूठ से बचाने की चेष्टा की। कहाँ तक कहें, जिस-जिस को कहें, इस दृष्टि से इतिहास देखते हैं, तो बड़े-बड़ों को स्खलन प्रस्तुत हुआ पाते हैं। इससे प्रकट होता है कि आन्तरिक स्थिति में हेर-फेर हो जाने से भले मनुष्य बुरे और बुरे मनुष्य भले बन सकते हैं।

शास्त्र कहता है कि जन्म से सभी मनुष्य शूद्र पैदा होते हैं। पीछे संस्कार के प्रभाव से द्विज बनते हैं। असल में यह संस्कार ही हैं, जो शूद्र को द्विज और द्विज को शूद्र बना देते हैं। गायत्री के तत्त्वज्ञान को हृदय में धारण करने से ऐसे संस्कारों की उत्पत्ति होती है, जो मनुष्य को एक विशेष प्रकार का बना देते हैं। उस रंग में रंगा हुआ मनुष्य पक्का सुन्दर रंग विकसित हो जाता है और उसके स्वभाव का शील वर्ण परिलक्षित होने लगता है।

पापों का नाश आत्मतेज की प्रचण्डता से होता है। यह तेजी जितनी अधिक होती है, उतना ही संस्कार का कार्य शीघ्र और अधिक परिमाण में होता है। बिना धार की लोहे की छड़ से वह कार्य नहीं हो सकता, जो तीक्ष्ण तलवार से होता है। यह तेजी किस प्रकार आए? इसका उपाय तपाना और रगड़ना है। लोहे को आग में तपाकर उसमें धार बनाई जाती है और पत्थर पर रगड़कर उसे तेज किया जाता है। तब वह अनेकों दुश्मनों को तोड़ने का मुकाबला करने योग्य होती है। हमें भी अपनी आत्म-शक्ति तेज करने के लिये इसी तपाने, घिसने वाली प्रणाली को अपनाना पड़ता है— इसे आध्यात्मिक भाषा में 'तप' या 'तपश्चर्या' नाम से पुकारते हैं।

अपराधों की निवृत्ति के लिये हर जगह दण्ड का विधान काम में लाया जाता है। बच्चे ने गलती की, कि

बात को इधर-उधर कही, जिसने प्रकट किया कि गुरु ने अपनी [illegible] सामाजिक नियमों को भंग किया, कि पंचायत ने दण्ड दिया । कानून का उल्लंघन हुआ कि पुलिस ने, जेल, कानून [illegible] पर पकड़ा [illegible] ईश्वर, दैविक, दैहिक, भौतिक दुःख देकर कर्मों का दण्ड देता है । दण्ड-विधान औचित्य का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है । 'ब्रह्म की [illegible] वसूल' की जानकारी कथा के कारण नहीं, दण्ड विधान का निर्माण उच्च आध्यात्मिक विज्ञान के आधार पर किया गया है । कारण यह है कि दुष्ट कर्म जो बाद दिये जाते हैं, उनसे मनुष्य के भीतर एक जलनशील पदार्थों की प्रतिक्रिया होती है, वे जो आती हैं, जिससे उसका गुप्त मानस चौंक पड़ता है और भूल को छोड़कर उचित मार्ग पर आ जाता है । 'दण्ड में ऐसी शक्ति है । दण्ड की गर्मी से अन्तःकरण उज्ज्वल होता है ।'

दूसरों द्वारा दण्ड रूप में कष्ट सहकर पाप कर्मों की शुद्धि की जाती है । इस प्रणाली को हम स्वयं ही अपनायें, अपने गुप्त अथवा प्रकट पापों का दण्ड स्वयं ही अपने को देकर, स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहें, तो यह दूसरों द्वारा बलात् कष्ट देने की अपेक्षा अधिक उत्तम है । इसमें न अपमान होता है, न प्रतिहिंसा एवं न आत्म-ग्लानि से चित्त क्षोभित होता है; वरन् स्वेच्छा तप से एक आध्यात्मिक आनन्द आता है, [illegible] और साहस प्रकट होता है तथा दूसरों की दृष्टि में अपनी श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा बढ़ती है । पापों की निवृत्ति के लिये आत्मतेज की अग्नि चाहिये, इस अग्नि की उत्पत्ति से दूना लाभ होता है, एक तो दुष्कर्मजन्य संस्कारों का, कषाय-कल्मषों का नाश होता है, दूसरे उसकी उष्मा और प्रकाश से दैवी-तत्त्वों का विकास, पोषण एवं अभिवर्द्धन होता है, जिसके कारण साधक, तपस्वी, मनस्वी एवं तेजस्वी बन जाता है । हमारे धर्म-शास्त्रों में पग-पग पर व्रत, उपवास, दान, ध्यान, आत्मसंयम-नियम आदि के विविध विधान इसी दृष्टि से किये गये हैं कि उनके आधार पर मनुष्य इन दुहरे लाभों को उठा सके ।

'अपने से कोई भूल, पाप या दुष्कर्म बन पड़ा हो, तो उनके अशुभ फलों के निवारण के लिये सबसे उत्तम [illegible] यही है कि उन्हें फिर न करने का दृढ़ निश्चय किया जाए, पर यदि इस निश्चय के साथ-साथ थोड़ी तपश्चर्या भी की जाए, तो उसे प्रतिज्ञा का बल मिलता है और उसके पालन में दृढ़ता आती है । साथ ही यह तपश्चर्या सद्भावनाओं की शक्ति में वृद्धि करती है, चेतनता उत्पन्न करती है और ऐसे उत्प्रेरक गुण, कर्म, स्वभावों को उत्पन्न करती है, जिनसे पवित्रता, [illegible], मंगलमय जीवन बिताना सुलभ हो जाता है । गायत्री शक्ति के आधार पर की गयी तपश्चर्या बड़े-बड़े पापियों को भी निष्पाप बनाके, उनके पाप-दुष्कर्मों को नष्ट करके उज्ज्वल भविष्य के लिये उन्हें निष्पाप रहने योग्य बना सकती है ।'

जो कार्य, पाप दिखाई पड़ते हैं, वे सर्वदा वैसे पाप नहीं होते, जैसे कि समझते हैं । कहा गया है कि कोई भी कार्य न तो पाप है न पुण्य, कार्य की भावना के अनुसार पाप-पुण्य होते हैं । जो कार्य एक मनुष्य के लिये पाप है, वही दूसरे के लिये पाप-रहित है और किसी के लिये वह पुण्य भी है । हत्या करना एक कार्य है, वह तीन व्यक्तियों के लिये तीन विभिन्न परिस्थितियों के कारण भिन्न परिणाम वाला बन जाता है । कोई व्यक्ति दूसरे का धन अपहरण करने के लिये किसी की हत्या करता है, वह हत्या घोर पाप हुई । कोई न्यायाधीश या जल्लाद समाज के शत्रु अपराधी को न्याय रक्षा के लिये प्राण-दण्ड देता है, वह उसके लिये कर्तव्य पालन है । कोई व्यक्ति आततायी डाकुओं के आक्रमण से निर्दोष के प्राण बचाने के लिये अपने को जोखिम में डालकर उन आततायियों का वध कर देता है, तो वह पुण्य है । हत्या तीनों ने ही की, पर तीनों की हत्यायें अलग-अलग परिणाम वाली हैं । तीनों हत्यारे डाकू, न्यायाधीश एवं आततायी से लड़कर उनका वध करने वाले—समान रूप से पापी नहीं ठहराये जा सकते ।

चोरी एक बुरा कार्य है, परन्तु परिस्थितियों वश यह भी सदा बुरा नहीं रहता । स्वयं सम्पन्न होते हुए भी जो अन्यायपूर्वक दूसरों का धन हरण करता है, वह पापयुक्त चोर है । दूसरा उदाहरण लीजिये—भूख से प्राण जाते हों, मजबूरी में किसी धनवान व्यक्ति का कुछ चुराकर प्राण-रक्षा करना कोई बहुत बड़ा पाप नहीं है । तीसरी स्थिति में किसी दुष्ट की अधर्म-सामग्री चुराकर उसे शक्ति-हीन बना देना और उस चुराई हुई सामग्री को सत्कार्य में लगा देना पुण्य हो जाता है । तीनों चोर समान रूप से पापी नहीं ठहराये जा सकते ।

परिस्थिति, मजबूरी, धर्म रक्षा तथा लोकहित, [illegible] निर्वाह के कारण कभी कई बार ऐसे कार्य होते हैं, जो

स्थूल दृष्टि से देखने में निन्दनीय मालूम पड़ते हैं, पर वस्तुतः उनके पीछे पाप भावना छिपी हुई नहीं होती, ऐसे कार्य पाप नहीं कहे जा सकते। बालक का फोड़ा चिरवाने के लिये माता को उसे अस्पताल ले जाना पड़ता है और बालक को कष्ट में डालना पड़ता है। रोगी की प्राण रक्षा के लिये डाक्टर को कसाई के समान अंग-भंग करने का कार्य करना पड़ता है। रोगी की कुपथ्यकारक इच्छाओं को टालने के लिये उपचारक को झूठे बहाने बनाकर किसी प्रकार समझाना पड़ता है। बालकों की जिद पर भी प्रायः ऐसा ही समाधान किया जाता है। विशाल शत्रुओं, आततायी शत्रुओं पर सामने से नहीं, बल्कि पीछे से आक्रमण करना पड़ता है।

प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि अनेक महापुरुषों को भी धर्म की स्थूल मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़ता है। लोकहित, धर्म वृद्धि और अधर्म नाश की सद्भावना के कारण उन्हें वैसा पापी नहीं समझा पड़ता जैसे कि वही काम करने वाले आदमी को साधारणतः समझा पड़ता है।

भगवान् विष्णु ने भस्मासुर से शंकर जी के प्राण बचाने के लिये मोहिनी रूप बनाकर उसे छल और वध किया। समुद्र मन्थन के समय अमृत-घट के बँटवारे पर जब देवताओं और असुरों में झगड़ा हो रहा था, तब भी विष्णु ने माया-मोहिनी रूप बनाकर असुरों को धोखे में रखा और अमृत देवताओं को पिला दिया। सती वृन्दा का सतीत्व डिगाने के लिये भगवान् ने जालन्धर का रूप बनाया था। राजा बलि को छलने के लिये वामन का रूप धारण किया था। पेड़ की आड़ में छिपकर राम ने अनुचित रूप से बाली को मारा था।

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा की मृत्यु का छलपूर्ण समर्थन किया। अर्जुन ने शिखण्डी की ओट में खड़े होकर भीष्म को मारा, कर्ण का रथ कीचड़ में फँस जाने पर भी उसका वध किया। घोर दुर्भिक्ष में क्षुधा पीड़ित होने पर विश्वामित्र ऋषि ने चाण्डाल के घर से कुत्ते का मांस चुराकर खाया, प्रह्लाद का पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना, बलि का गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा न मानना, विभीषण का भाई को त्यागना, भरत का माता की भर्त्सना करना, गोपियों का पर-पुरुष श्रीकृष्ण से प्रेम करना, मीरा का अपने पति को त्याग देना, परशुराम जी का अपनी माता का सिर काट देना आदि कार्य साधारणतः अधर्म प्रतीत होते हैं, पर इन कर्ताओं ने सदुद्देश्य से प्रेरित होकर किया था, इसलिये धर्म की सूक्ष्म दृष्टि से पाप कर्म नहीं गिने गये।

शिवाजी ने अफजल खाँ का वध कूटनीतिक चातुर्य से किया था। भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार के साथ जिस नीति को अपनाया था, उसमें चोरी, डकैती, जासूसी, हत्या, कत्ल, झूठ बोलना, छल, विश्वासघात आदि ऐसे सभी कार्यों का समावेश हुआ था, जो मोटे तौर से अधर्म कहे जाते हैं, परन्तु उनकी आत्मा पवित्र थी, असंख्य दीन-दुःखी प्रजा की कष्टदायक स्थिति से द्रवित होकर अन्यायी शासन को उलटने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया था। कानून उनको भले ही अपराधी बताए, पर वस्तुतः वे पापी कदापि नहीं कहे जा सकते।

अधर्म का नाश और धर्म की रक्षा के लिये भगवान् को युग-युग में अवतार लेकर अगणित हत्यायें करनी पड़ती हैं और रक्त की धार बहानी पड़ती है। इसमें पाप नहीं होता। सदुद्देश्य के लिये किया हुआ अनुचित कार्य भी उचित के समान ही उत्तम माना गया है। इस प्रकार मजबूर किये गये, सताये गये, बुभुक्षित, संकटग्रस्त, उत्तेजित, आवेशग्रस्त, अज्ञानी बालक, रोगी अथवा पागल कोई अनुचित कार्य कर बैठते हैं, तो वह क्षम्य माने जाते हैं, कारण यह है कि उस मनोभूमि का मनुष्य धर्म और कर्तव्य के दृष्टिकोण से किसी बात पर ठीक विचार करने में समर्थ नहीं होता।

पापियों की सूची में जितने लोग हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जिन्हें तात्कालिक किन्हीं कारणों से अनुचित कार्य करने पड़े, पीछे वे उनके स्वभाव में आ गये। परिस्थितियों ने, मजबूरियों ने, आदतों ने उन्हें लाचार कर दिया और वे बुराई की ढालू सड़क पर फिसलते चले गये। यदि दूसरे प्रकार की परिस्थितियाँ, सुविधायें उन्हें मिलतीं, ऊँचा उठाने वाले और सन्तोष देने वाले साधन मिल जाते, तो निश्चय ही वे अच्छे बने होते।

कानून और लोकमत चाहे किसी को कितना ही दोषी ठहरा सकता है, स्थूल दृष्टि से कोई आदमी अत्यन्त बुरा हो सकता है, पर वास्तविक पापियों की संख्या इस संसार में बहुत कम है। जो परिस्थितियों के कारण बुरे बन

सकते हैं, उन्हें भी सुधारा जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक जीव अविनाशी ईश्वर का अंश होने के कारण तत्त्वतः पवित्र है। बुराई उसके ऊपर छाया मैल है। मैल को साफ करना न तो असंभव है और न कष्टसाध्य, वरन् यह कार्य आसानी से हो सकता है।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि हमने अब तक इतने पाप किये हैं, इतनी बुराइयाँ की हैं, इतने प्रकट और अप्रकट पापों की सूची बहुत बड़ी है। अब हम सुधर नहीं सकते। हमें न जाने कब तक नरक में सड़ना पड़ेगा? हमारा उद्धार और कल्याण अब कैसे हो सकता है? ऐसा सोचने वालों को जानना चाहिये कि सन्मार्ग पर चलने का प्रण करते ही उसकी बुरी मैली-कुचैली चेतना नष्ट हो जाती है और उसमें भी पुराने बुरे भी उसी में गल जाते हैं। पाप-वासनाओं का परित्याग करने और उनका सच्चे हृदय से प्रायश्चित करने से पिछले पापों के बुरे फल से छुटकारा मिल सकता है। केवल वे संचित प्रारब्ध कर्म जो इस जन्म के लिये भाग्य बन चुके हैं, उन्हें तो किसी न किसी रूप में भोगना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जो संचित या क्रियमाण ऐसे कर्म हैं, जो अभी प्रारब्ध नहीं बने हैं, उनका अधिकांश बहुत नष्ट हो जाता है, जो इस जन्म के लिये दुःखदायी भोग हैं, वह भी अपेक्षाकृत बहुत हल्के हो जाते हैं और वे निरन्तर थोड़ा सा कष्ट दिखाकर सहज ही शान्त हो जाते हैं।

कोई मनुष्य अपने पिछले जीवन का अधिकांश भाग कुमार्ग में व्यतीत कर चुका है या बहुत-सा समय निरर्थक बिता चुका है, तो इसके लिये केवल दुःख मानने, पछताने या निराश होने से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा। जीवन का जो भाग शेष रहा है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। राजा परीक्षित को मृत्यु से पूर्व एक सप्ताह आत्म-कल्याण के लिये मिला था, उसने इस थोड़े से समय का सदुपयोग किया और अभीष्ट लाभ प्राप्त कर लिया। सूरदास को जन्म भर की व्यभिचारिणी आदतों से छुटकारा न मिलते देखकर अन्त में आँखें फोड़ लेनी पड़ी थीं। तुलसीदास का कामातुर होकर रातों रात ससुराल पहुँचना और परनाले में लटकता हुआ साँप पकड़कर स्त्री के पास जा पहुँचना प्रसिद्ध है। इस प्रकार के अगणित व्यक्ति अपने जीवन का अधिकांश भाग बुरे कामों में व्यतीत करने के उपरान्त सन्मार्गगामी हुए और थोड़े से ही समय में योगियों और महात्माओं को प्राप्त होने वाली सद्गति के अधिकारी हुए हैं।

यह एक रहस्यमय तथ्य है कि मन्दबुद्धि, मूर्ख, डरपोक, कमजोर तबियत के सीधे कहलाने वालों की अपेक्षा वे लोग अधिक जल्दी आत्मोन्नति कर सकते हैं, जो अब तक सक्रिय, जागरूक, चैतन्य, बलवान्, पुरुषार्थी एवं बदमाश रहे हैं। कारण यह है कि मन्द चेतना वालों में शक्ति का स्रोत बहुत ही न्यून होता है, वे पूरे सदाचारी और भक्त रहें, तो भी मन्द शक्ति के कारण उनकी प्रगति अत्यन्त मन्द गति से होती है, पर जो लोग शक्तिशाली हैं, जिनके अन्दर चैतन्यता और पराक्रम का निर्झर तूफानी गति से प्रवाहित होता है, वे जब भी जिस दिशा में भी लगेंगे, उधर ही वेग लगा देंगे। अब तक जिन्होंने बदमाशी में अपना झण्डा बुलन्द रखा है, वे निश्चय ही शक्ति सम्पन्न तो हैं, पर उनकी शक्ति सुमार्गगामिनी नहीं है। यदि वह शक्ति सत्पथ पर लग जाए, तो उस दिशा में भी आश्चर्यजनक सफलता उपस्थित कर सकते हैं। गलत मार्ग में जितना जोश होता है, उतना अच्छा एक दिन में ही हो सकता है। आत्मोन्नति भी एक पुरुषार्थ है, इस मंजिल पर वे ही लोग शीघ्र पहुँच सकते हैं, जो पुरुषार्थी हैं, जिनकी भुजाओं में बल और मन में अदम्य साहस तथा उत्साह है।

जो लोग पिछले जीवन में कुमार्गगामी रहे हैं, बड़ी उछल-कूद, मटरगश्त करते रहे हैं, वे भूले हुए पथभ्रष्ट तो अवश्य हैं, पर इस गलत प्रक्रिया द्वारा भी उन्होंने अपनी चैतन्यता, बुद्धिमत्ता, जागरूकता और क्रियाशीलता को बढ़ाया है। यह क्रियाशीलता एक अच्छी पूँजी है। पथ-भ्रष्टता के कारण जो पाप उनसे बन पड़े, वे पश्चात्ताप और दुःखों के हेतु अवश्य हैं और सन्तोष की बात इतनी है कि उस कटीली-पथरीली, लहू-लुहान करने वाली, ऊबड़-खाबड़, दुःखदायी मार्ग में भटकते हुए भी मंजिल की दिशा में ही यात्रा की है। यदि अब सँभल जाया जाए और सीधे राजमार्ग से पहले जैसे आधार से आगे बढ़ा जाए, तो पिछला ऊल-जलूल कार्यक्रम भी सहायक सिद्ध होगा।

पाप और रोगों का प्रधान कारण प्रायः दूषित मानसिक भावनायें ही हुआ करती हैं। इन गर्हित भावनाओं के कारण मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और इससे वह अनुचित कार्य करता रहता है। इन अनुचित बातों से

कुप्रवृत्तियाँ पाने का कारण यही है कि मनुष्य आदतवश बुरे-विचारों का शमन और निराकरण करे। जब मनोभूमि शुद्ध हो जाए, तो उसमें दुर्भावनात्मक विचारों की उत्पत्ति ही नहीं होगी और मनुष्य पाप मार्ग से हटकर सुमार्गगामी बन जायेगा। इसके लिये स्वाध्याय, सत्संग आदि को प्रभावशाली औषध बतलाया है। गायत्री मन्त्र सद्बुद्धि का प्रेरणात्मक होने से स्वाध्याय का एक बड़ा अंग माना जा सकता है। जब हमारा मन श्रेष्ठ विचारों की तरफ जाता है, तो असद्बुद्धि का प्रभाव ही अन्त होने लग जाता है। किसी भावना के लगातार चिन्तन से उसकी शक्ति होती है। जब हम लगातार सद्बुद्धि और शुभ विचारों का चिन्तन करते रहेंगे, तो पापमूलक भावनाओं का क्षीण होते जाना स्वाभाविक ही है।

विचारों से पाप नष्ट हो सकते हैं, कुमार्ग पर चलने से जो पाप हो चुके हैं, वे थोड़ा दुःख देकर, शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। इसके लिये चिन्ता एवं निराशा की कोई बात नहीं केवल अपनी रुचि और क्रिया को बदल देना है। यह परिवर्तन होते ही बड़ी तेजी से सीधे मार्ग पर उन्नति करते हैं और स्वल्पकाल में ही पापी महात्मा बन जाते हैं। जिन विशेषताओं के कारण वे बड़ा पातकी थे, वे ही विशेषताएँ उन्हें सफल सन्त बना देती हैं। गायत्री का आश्रय लेने से बुरे, पतित और दुराचारी स्त्री-पुरुष भी स्वल्पकाल में सन्मार्गगामी और पापरहित हो सकते हैं।

आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार

श्री गायत्री नित्य उपासना करने योग्य है। त्रिकाल सन्ध्या में प्रातः, मध्याह्न, सायं तीन बार इसी की उपासना करने का नित्य कर्म शास्त्रों में आवश्यक बतलाया गया है। जब भी जितनी अधिक मात्रा में गायत्री का जप, पूजन, चिन्तन, मनन किया जा सके, उतना ही अच्छा है, क्योंकि—**'अधिकस्य अधिकं फलम्।'**

परन्तु किसी विशेष प्रयोजन के लिये जब विशेष शक्ति का संचय करना पड़ता है, तो उसके लिये विशेष क्रिया की जाती है। इस क्रिया को अनुष्ठान के नाम से पुकारते हैं। जब कभी परदेश के लिये यात्रा की जाती है, तो रास्ते के लिये कुछ भोजन सामग्री तथा खर्च के लिये रुपये साथ रख लेना आवश्यक होता है। यदि यह मार्गव्यय साथ न हो, तो यात्रा बड़ी कष्टसाध्य हो जाती है। अनुष्ठान एक प्रकार का मार्गव्यय है। इस साधना को करने से जो पूँजी जमा हो जाती है, उसे साथ लेकर किसी भी भौतिक या आध्यात्मिक कार्य में 'जुट' जाएँ, तो यात्रा बड़ी सरल हो जाती है।

सिंह जब शिकार पर झपटता है, बिल्ली जब चूहे पर छापा मारती है, बगुला जब मछली पर आक्रमण करता है, तो उसे एक क्षण स्तब्ध होकर, साँस रोककर, जरा पीछे हटकर अपने अन्दर की छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत् और सतेज करना पड़ता है, तब वह अचानक अपने शिकार पर पूरी शक्ति के साथ टूट पड़ते हैं और मनोवांछित लाभ प्राप्त करते हैं। ऊँची या लम्बी छलाँग भरने से पहले खिलाड़ी लोग कुछ क्षण रुकते, उछलते और पीछे हटते हैं, तदुपरान्त छलाँग भरते हैं। कुश्ती लड़ने वाले पहलवान ऐसे ही पैंतरे बदलते हैं। बन्दूक चलाने वालों को भी घोड़ा दबाने से पहले पकड़ कसना पड़ता है। अनुष्ठान द्वारा यही कार्य आध्यात्मिक आधार पर होता है। किसी विपत्ति को उल्लंघन कर पार करना है या कोई सफलता प्राप्त करनी है, तो उस मार्ग पर बढ़ने के लिए, जो अधिक सामर्थ्य आवश्यक है वह अनुष्ठान द्वारा प्राप्त होती है।

बच्चा दिन भर माँ-माँ पुकारता रहता है, माता भी दिन भर बेटा, लल्ला कहकर उसका उत्तर देती रहती है, यह लाड़-दुलार यों ही दिन भर चलता रहता है, पर जब कोई विशेष आवश्यकता पड़ती है, कष्ट होता है, कठिनाई आती है, आशंका होती है या सहायता की जरूरत पड़ती है, तो बालक विशेष बलपूर्वक, विशेष स्वर से माता को पुकारता है। इस विशेष पुकार को सुनकर माता अपने अन्य कामों को छोड़कर बालक के पास दौड़ जाती है और उसकी सहायता करती है। अनुष्ठान साधक की ऐसी ही पुकार है, जिसमें विशेष बल एवं विशेष आकर्षण होता है, इस आकर्षण से गायत्री-शक्ति विशेष रूप से साधक के समीप एकत्रित हो जाती है।

कोई व्यावहारिक अड़चन सामने आ रही हो, आपत्ति का निवारण होने का मार्ग न सूझ पड़ता हो, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ हो, भविष्य निराशाजनक दिखाई दे रहा हो, परिस्थितियाँ दिन-दिन बिगड़ती जाती हों, कोशिश करते उल्टा परिणाम निकलता हो, तो स्वभावतः मनुष्य के हाथ-पैर फूल जाते हैं। चिन्तातुर और उद्विग्न मनुष्य

की त्रुटि ठीक समय नहीं पकती। जाल में फँसे कबूतर की तरह वह विवश छटपटाता है, उतना ही जाल में और फँसता जाता है। ऐसे अवसरों पर 'हारे को हरिनाम' होता है। गज, द्रौपदी, नरसी, प्रह्लाद आदि को इसी प्रकार का आश्रय लेना पड़ा था। देखा गया है कि जहाँ चार तरफ कोई आशाजनक प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता, वहाँ दैवी सहायता किनारे पर खड़ी दिखाई दे, कपाट खुल जाते हैं और निराशा की रात्रि के घोर अन्धकार को चीरती हुई ऐसी बिजली कौंध जाती है, जिसके प्रकाश में पार होने का रास्ता मिल जाता है। अनुष्ठान ऐसी ही प्रार्थना है। यह डूबते हुए का चीत्कार है, जिससे देवताओं का सिंहासन हिलता है। अनुष्ठान का विस्फोट दुःखदायक में एक ऐसे प्रकाश के रूप में होता है, जिसके द्वारा विपत्तिग्रस्त को पार होने का रास्ता दिखाई दे जाता है।

सांसारिक कठिनाइयों में, मानसिक उलझनों में, आन्तरिक उद्वेगों में गायत्री-अनुष्ठान से असाधारण सहायता मिलती है। यह ठीक है कि "किसी को कोई वस्तु उठाकर आसमान से गायत्री माता नहीं दे जाती" यह बात भी ठीक है कि उसके प्रभाव से अन्तर्भूमि में ऐसे मौलिक परिवर्तन होते हैं, जिससे साधक कठिनाइयों का उचित हल निकाल लेता है। उपासक में ऐसी बुद्धि, ऐसी प्रतिभा, ऐसी सूझ, ऐसी दूरदर्शिता पैदा हो जाती है, जिसके कारण वह ऐसा मार्ग प्राप्त कर लेता है, जो कठिनाइयों के निवारण में रामबाण की तरह कारगर सिद्ध होता है। भ्रमग्रस्त व्यक्ति में कुछ अनावश्यक, अनुचित और अवास्तविक विचारधाराएँ, भावनाएँ, कामनाएँ घुस पड़ती हैं, जिनके कारण वह व्यर्थ अकारण दुःखी बना रहता है। गायत्री साधना से मस्तिष्क का ऐसा परिमार्जन हो जाता है, जिसमें कुछ समय पहले की बातें अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण लगती थीं, वे ही पीछे अनावश्यक और अनुपयुक्त लगने लगती हैं। वह उस ओर से मुँह मोड़ लेता है। ऐसी दशा में आन्तरिक परिवर्तन इतना आनन्दमय सिद्ध होता है, जितना कि पूर्व कल्पित कामनाओं के पूर्ण होने पर भी सुख न मिलता। अनुष्ठान द्वारा ऐसे ही ज्ञात और अज्ञात परिवर्तन होते हैं, जिनके कारण दुःखी और चिन्तित व्यक्ति थोड़े ही समय में सुख-शान्ति का स्वर्गीय जीवन बिताने की स्थिति में पहुँच जाता है।

मनोवांछित मनोरथों के लिए भी अनुष्ठान करते हैं। हर वस्तु के पकने की कुछ मर्यादा होती है। आम, जामुन, ईख, कांच आदि के पकने के लिए एक नियत अवधि का समय आवश्यक होता है। मुर्गी का अण्डा एक नियत अवधि में पकता है, अपने अंडे पकने का समय पूरा कर लेते हैं, तब फूटते हैं। गर्भ में बालक जब अपना पूरा समय ले लेता है, तब जन्मता है। यदि उपर्युक्त क्रियाओं में नियत अवधि के पहले ही विघ्न उत्पन्न हो जाए, तो उनकी सफलता की आशा नहीं रहती। अनुष्ठान का अर्थ है, साधना का नियत प्रमाण, जब साधना परिपक्व हो जाती है, तब उसका परिणाम उत्पन्न होता है। पके हुए फल ही मधुर फल देते हैं।

अनुष्ठान की विधि

अनुष्ठान किसी भी मास में किया जा सकता है। तिथियों में पंचमी, एकादशी, पूर्णमासी शुभ मानी गयी हैं। पंचमी को दुर्गा, एकादशी को सरस्वती, पूर्णमासी को लक्ष्मी तत्त्व की प्रधानता रहती है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों में से किसी का निषेध नहीं है, किन्तु कृष्ण पक्ष की अपेक्षा शुक्लपक्ष अधिक शुभ है।

अनुष्ठान आरम्भ करते हुए नित्य गायत्री का आवाहन करें और अन्त करते हुए विसर्जन करना चाहिये। इस प्रतिष्ठा में भावना और निवेदन प्रधान है। श्रद्धापूर्वक "भगवती, जगज्जननी, भक्तवत्सला माँ गायत्री यहाँ प्रतिष्ठित होने का अनुग्रह कीजिये" ऐसी प्रार्थना संस्कृत या मातृभाषा में करनी चाहिये। विश्वास करना चाहिये कि प्रार्थना को स्वीकार करके वे कृपापूर्वक पधार गयी हैं। विसर्जन करते समय प्रार्थना करनी चाहिये कि "आदि शक्ति, भयहारिणी, शक्तिदायिनी, तरणतारिणी मातृके! अब आप विसर्जित हों।" इस भावना को संस्कृत में या अपनी मातृभाषा में कह सकते हैं। इस प्रार्थना के साथ-साथ यह विश्वास करना चाहिये कि प्रार्थना स्वीकार करके वे विसर्जित हो गयी हैं।

कई ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जप से दसवाँ भाग हवन, हवन से दसवाँ भाग तर्पण, तर्पण से दसवाँ भाग ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। यह नियम तन्त्रोक्त रीति से किये गये पुरश्चरण के लिये है। इन पंक्तियों

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. ...

में वैदिक-तांत्रिक विधि की दक्षिण मार्गी साधना बताई जा रही है। इसके अनुसार तर्पण की आवश्यकता नहीं है। अनुष्ठान के अन्त में १०८ आहुति का हवन तो कम से कम होना आवश्यक है, अधिक सामर्थ्य और सुविधा के अनुसार है। इसी प्रकार विप्रदा गायत्री के लिये कम से कम तीन ब्राह्मणों का भोजन भी होना ही चाहिये। दान के लिये इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं बाँधी जा सकती। यह साधक की श्रद्धा का विषय है, पर अन्त में दान करना अवश्य चाहिये।

किसी छोटी चौकी, चबूतरी या आसन पर फूलों का एक छोटा सुन्दर-सा आसन बनाना चाहिये और उस पर गायत्री की प्रतिष्ठा होने की भावना करनी चाहिये। साकार उपासना के समर्थक भगवती का कोई सुन्दर सा चित्र अथवा प्रतिमा को उन फूलों पर स्थापित कर सकते हैं। निराकार के उपासक निराकार भगवती की शक्ति पुञ्ज का एक स्फुलिंग वहाँ प्रतिष्ठित होने की भावना कर सकते हैं। कोई-कोई साधक धूपबत्ती, दीपक की अग्नि-शिखा में भगवती की चैतन्य ज्वाला का दर्शन करते हैं और उसी दीपक या धूपबत्ती को फूलों पर प्रतिष्ठित करके अपनी आराध्य शक्ति की उपस्थिति अनुभव करते हैं। विसर्जन के समय प्रतिमा को हटाकर शयन करा देना चाहिये, फूलों को जलाशय या पवित्र स्थान में विसर्जित कर देना चाहिये। अगरबत्ती धूपबत्ती या दीपक की बत्ती को बुझाकर उसे भी फूलों के साथ विसर्जित कर देना चाहिये। दूसरे दिन जली हुई बत्ती का प्रयोग फिर न होना चाहिये।

गायत्री पूजन के लिये पाँच वस्तुयें प्रधान रूप से मांगलिक मानी जाती हैं। इन पूजा पदार्थों में वह तत्त्व है, जो गायत्री के अनुकूल पड़ता है। इसलिये पुष्प आसन पर प्रतिष्ठित गायत्री के सम्मुख धूप जलाना, दीपक स्थापित करना, नैवेद्य चढ़ाना, चन्दन लगाना तथा अक्षतों की वृष्टि करनी चाहिये। अगर दीपक और धूप को गायत्री की स्थापना में रखा गया है, तो उसके स्थान पर जल का अर्घ्य देकर पाँचों पूजा पदार्थों की पूर्ति करनी चाहिये।

पूर्व वर्णित विधि से प्रातःकाल पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध भूमि पर शुद्ध होकर कुश के आसन पर बैठें। जल का पात्र समीप रख लें। धूप और दीपक जप के समय जलते रहने चाहिये। बुझ जाए तो उस बत्ती को हटाकर नई बत्ती डालकर पुनः जलाना चाहिये। दीपक या उसमें पड़े हुए घृत को हटाने की आवश्यकता नहीं है।

पुष्प आसन पर गायत्री की प्रतिष्ठा और पूजा के अनन्तर जप आरम्भ कर देना चाहिये। नित्य यही क्रम रहे। प्रतिष्ठा और पूजा अनुष्ठान काल में नित्य होती रहनी चाहिये। मन चारों ओर न दौड़े, इसलिये पूर्व वर्णित ध्यान भावना के अनुसार गायत्री का ध्यान करते हुए, जप करना चाहिये। साधना के इस आवश्यक अंग के ध्यान में मन लगा देने से वह एक कार्य में उलझा रहता है और जहाँ-तहाँ नहीं भागता। भागे तो उसे रोक-रोककर बार-बार ध्यान भावना पर लगाना चाहिये। इस विधि से एकाग्रता की दिन-दिन वृद्धि होती चलती है।

सवा लक्ष जप को चालीस दिन में पूरा करने का क्रम पूर्वकाल से चला आता है। पर निर्बल अथवा कम समय तक साधना कर सकने वाले साधक उसे दो मास में भी समाप्त कर सकते हैं। प्रतिदिन जप की संख्या बराबर होनी चाहिये, किसी दिन ज्यादा, किसी दिन कम ऐसा क्रम ठीक नहीं। यदि चालीस दिन में अनुष्ठान पूरा करना हो तो १२५०००/४० = ३१२५ मन्त्र नित्य जपने चाहिये। माला में १०८ दाने होते हैं, इतने मन्त्रों की ३१२५/१०८ = २९, इस प्रकार उन्तीस मालायें नित्य जपनी चाहिये। यदि दो मास में जप करना हो तो १२५०००/६० = २०८० मन्त्र प्रतिदिन जपने चाहिये। इन मंत्रों की मालायें २०८०/१०८ = २० मालायें प्रतिदिन जपी जानी चाहिये। माला की गिनती याद रखने के लिये खड़िया मिट्टी को गंगाजल में सान कर छोटी-छोटी गोली बना लेनी चाहिये और एक माला जपने पर एक गोली एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख लेनी चाहिये। इस प्रकार जब सब गोलियाँ इधर से उधर हो जाएँ, तो जप समाप्त कर देना चाहिये। इस क्रम से जप-संख्या में भूल नहीं पड़ती।

गायत्री आवाहन का मंत्र—

आयातु वरदे देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

गायत्री विसर्जन का मन्त्र—

उत्तमे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥

अनुष्ठान के अन्त में हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार दान और ब्रह्मभोज कराना चाहिये। ब्रह्मभोज उन्हीं ब्राह्मणों को कराना चाहिये जो वास्तव में ब्राह्मण हैं, वास्तव में ब्रह्म परायण हैं। कुपात्रों को दिया हुआ दान और कराया हुआ भोजन निष्फल जाता है, इसलिये निष्ठावान् या सुपात्र सच्चे ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिये। हवन की विधि नीचे लिखते हैं—

सदैव शुभ गायत्री यज्ञ

गायत्री अनुष्ठान के अन्त में या किसी भी शुभ अवसर पर 'गायत्री-यज्ञ' करना चाहिये। जिस प्रकार वेदमाता की आराधना, सन्ध्या, पाठ, जप, पुरश्चरण प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार गायत्री हवन भी अत्यन्त सुलभ है। इसके लिये बड़ी भारी मीन-मेख निकालने की या कर्मकाण्डी पण्डितों का ही आश्रय लेने की अनिवार्यता नहीं है। साधारण बुद्धि के साधक इसको भली प्रकार कर सकते हैं।

कुण्ड खोदकर या वेदी बनाकर, दोनों ही प्रकार से हवन किया जा सकता है। निष्काम बुद्धि से आत्म कल्याण के लिये किये जाने वाले हवन, कुण्ड खोदकर करना ठीक है और किसी कामना से मनोरथ की पूर्ति के लिये किये जाने वाले यज्ञ वेदी पर करने चाहिये। कुण्ड या वेदी की लम्बाई-चौड़ाई कम से कम अँगुलों की चौबीस-चौबीस अंगुल होनी चाहिये। कुण्ड खोदा जाय तो इसे चौबीस अंगुल ही गहरा भी खोदना चाहिये और इस प्रकार खोदना चाहिये कि नीचे तहखाने-तहखाने छः अंगुल चौड़ा और छः अंगुल लम्बा रह जाय। वेदी बनानी हो तो पीली मिट्टी की चार अंगुल ऊँची वेदी चौबीस-चौबीस अंगुल लम्बी-चौड़ी बनानी चाहिये। वेदी या कुण्ड को हवन करने से दो घण्टे पूर्व पानी से इस प्रकार लीप देना चाहिये कि वह समतल हो जाय, ऊँचाई-नीचाई अधिक न रहे। कुण्ड या वेदी से चार अंगुल हटकर एक डोरी सी नाली दो अंगुल गहरी खोद कर उसमें पानी भर देना चाहिये। वेदी या कुण्ड के आस-पास गेहूँ का आटा, हल्दी, रोली आदि मांगलिक द्रव्यों से चौक पूरकर अपनी कलाप्रियता का परिचय देना चाहिये। यज्ञस्थान को अपनी सुविधानुसार मण्डप, पुष्प, पल्लव आदि से विशद, सुन्दर एवं आकर्षक बनाना या सजाना अच्छा है।

वेदी या कुण्ड के ईशानकोण में कलश स्थापित करना चाहिये। मिट्टी या अन्य धातु के बने हुए कलश में पवित्र जल भरकर उसके मुख में आम्रपल्लव रखे और ऊपर ढक्कन में चावल, गेहूँ का आटा, मिष्ठान्न अथवा कोई अन्य मांगलिक द्रव्य रख देना चाहिये। कलश के चारों ओर हल्दी से स्वस्तिक (सतिया) अंकित कर देना चाहिये। कलश के समीप एक छोटी चौकी या वेदी पर पुष्प और गायत्री का चित्र, पूजन सामग्री रखनी चाहिये।

वेदी या कुण्ड के तीन ओर आसन बिछाकर इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धवों सहित बैठना चाहिये। पूर्व दिशा में जिधर कलश और गायत्री स्थापित हैं, उधर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण अथवा अपने वयोवृद्ध को आचार्य वरण करके बिठाना चाहिये, वह इस यज्ञ का ब्रह्मा है। यजमान पहले ब्रह्मा के दाहिने हाथ में सूत्र (कलावा) बाँधे, रोली या चन्दन से उसका तिलक करे, चरण स्पर्श करे। तत्पश्चात् ब्रह्मा उपस्थित सब लोगों की कलाई, अपने साथ यजमान के दाहिने हाथ में कलावा बाँधे, मस्तक पर रोली का तिलक करे और उनके ऊपर अक्षत छिड़क कर आशीर्वाद के मन्त्र पाठ बोले।

यजमान की पत्नी भी साथ में बैठना चाहिये। उसका मुख पूर्व को रहे। हवन सामग्री और घृत अधिक हो, तो उसे कई पात्रों में विभाजित करके कई व्यक्ति हवन करने बैठ सकते हैं, सामग्री थोड़ी हो तो यजमान स्वयं सामग्री अपने पास रखे और उसकी पत्नी घृत पात्र सामने रखकर स्रुवा (चम्मच) सींचावे, पत्नी न हो तो भाई या मित्र घृत पात्र लेकर बैठ सकता है। [illegible] की होती है। [illegible] जिस प्रकार की मिल सके, उसी प्रकार की ले लेनी चाहिये। हवन सामग्री त्रिगुणात्मक साधना में आगे दी हुई है—वे तीनों गुण वाली लेनी चाहिये, पर [illegible] आधी और चौथाई-चौथाई रजोगुणी और तमोगुणी

लेनी चाहिये । यदि किसी भौतिक कामना के लिये हवन किया गया हो, तो रजोगुणी आधी और सतोगुणी और तमोगुणी चौथाई-चौथाई लेनी चाहिये । सामग्री पहले अच्छी प्रकार साफ कर धूप में सुखाकर जौकुट कर लेना चाहिये । सामग्रियों में किसी वस्तु के न मिलने पर या कम मिलने पर उसका भाग उसी गुण वाली दूसरी औषधि को मिलाकर पूरा किया जा सकता है ।

उपस्थित लोगों में जो हवन की विधि में सम्मिलित हों, वे स्नान किये हुए हों । जो लोग दर्शक हों, वे थोड़ा हटकर बैठें । दोनों के बीच थोड़ा फासला रखना चाहिये ।

हवन आरम्भ करते हुए सबसे पहले ब्रह्म-संध्या के आरम्भ में प्रयोग होने वाले षट्कर्मों, आचमन, शिखाबन्धन (शिखावन्दन), प्राणायाम, अघमर्षण तथा न्यास की क्रियाएँ करें । तत्पश्चात् वेदी या कुण्ड पर समिधाएँ चिनकर कपूर की सहायता से गायत्री-मन्त्र के उच्चारण सहित अग्नि प्रज्वलित करें । सब लोग साथ-साथ मंत्र बोलें और अन्त में स्वाहा के साथ घृत तथा सामग्री से हवन करें । आहुति के अन्त में चम्मच में से बचे हुए घृत की एक-एक बूँद पास में रखे हुए जलपात्र में टपकाते जाना चाहिये और "इदं गायत्र्यै इदं न मम" का उच्चारण करना चाहिये । हवन में साथ-साथ बोलते हुए मधुर स्वर से मन्त्रोच्चार करना उत्तम है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अनुसार होने न होने की इस सामूहिक सम्मेलन में आवश्यकता ने छूट दी हुई है ।

आहुतियाँ कम से कम १०८ होनी चाहिये । अधिक इससे दो-तीन या चाहे जितने गुने किये जा सकते हैं । हवन सामग्री कम से कम २५० ग्राम और घृत १०० ग्राम प्रति व्यक्ति होना चाहिये । सामर्थ्यानुसार इससे अधिक चाहे जितना बढ़ाया जा सकता है । बड़ा माला लेकर बैठे और आहुतियाँ गिनता रहे । जब पूरा हो जाय तो आहुतियाँ समाप्त करा दें । उस दिन बने हुए पकवान-मिष्ठान आदि में से अलौने और मधुर पदार्थ लेने चाहिये । नमक, मिर्च मिले हुए शाक, अचार, रायते आदि को अग्नि में होमने का निषेध है । इस भोजन में से थोड़ा-थोड़ा भाग लेकर वे सभी लोग चढ़ावें, जिन्होंने स्नान किया है और हवन में भाग लिया है । अन्त में एक सूखे नारियल की गरी को लेकर उसमें छेद करके सामग्री भरना चाहिये और खड़े होकर पूर्णाहुति के रूप में उसे अग्नि में समर्पित कर देना चाहिये । यदि कुछ सामग्री बची हो, तो वह भी सब इसी समय चढ़ा देनी चाहिये ।

इसके पश्चात् सब लोग खड़े होकर यज्ञ की चार परिक्रमा करें और 'इदं न मम' वाले पात्र में टपका हुआ घृत उँगली से लेकर हथेलियों पर लगाएँ । हवन की बुझी हुई भस्म लेकर सब लोग मस्तक पर लगाएँ । कीर्तन या भजन गायन करें और प्रसाद वितरण करके सब लोग प्रसन्नता और अभिवादनपूर्वक विदा हों । यज्ञ की समस्त भस्म को दूसरे दिन किसी पवित्र स्थान में विसर्जित करना चाहिये । यह गायत्री-यज्ञ अनुष्ठान के अन्त में ही नहीं, अन्य समस्त शुभ-कार्यों में किया जा सकता है ।

उद्देश्य के अनुरूप ही साधन भी जुटाने पड़ते हैं । लड़ाई के लिये युद्ध-सामग्री जमा करनी पड़ती है और जिस प्रकार का व्यापार हो उसके लिये उसी तरह का सामान इकट्ठा करना होता है । शिल्पी बढ़ई औजार, कोई सम्बन्धी वस्तुएँ लाकर अपने पास रखता है और कलाकार को अपनी आवश्यक चीजें जमा करनी होती हैं । व्यायाम करने और दवा खाने की योजना में अन्तर रहता है । जिस प्रकार की साधना करनी होती है, उसी के अनुसार, उन्हीं रंगों वाली, उन्हीं आसनों वाली, उन्हीं गुणों वाली वस्तुएँ उपयोग में लानी होती हैं । सबसे प्रथम यह देखना चाहिये कि हमारी साधना किस उद्देश्य के लिये है ? सत्, रज, तम में से किस गुण की वृद्धि के लिये है ? जिस प्रकार की साधना हो उसी प्रकार की साधना-सामग्री व्यवस्था करनी चाहिये । नीचे इस सम्बन्ध में एक निर्देश दिया जाता है—

सतोगुण—

माला-तुलसी । आसन-कुश । पुष्प-श्वेत । पात्र-ताँबा । पात्र-मूर्ति (चाँदी) मुख पूर्व को । दीपक में गौ-घी-घृत । तिलक चन्दन । हवन में समिधा-पीपल, बड़, गूलर । हवन सामग्री-श्वेत चन्दन, अगर, छोटी इलायची, लौंग, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी, खस, शीतलचीनी, आँवला, इन्द्रजौ, वंशलोचन, जीवन्ती, गिलोय, जायफल, नेत्रबाला, मुलहठी, कमल, केशर, बड़ की जटायें, नारियल, बादाम, दाख, जौ, मिश्री ।

Disclaimer / Warning: [illegible]

रजोगुण—

माला चन्दन। आसन-ऊन। पुष्प-पीले। पात्र-ताँबा। वस्त्र-रेशम, मुख-उत्तर को। दीपक में एरण्ड-बीज का तेल। तिलक-रोली। हवन-सामग्री—देवदारु, बड़ी इलायची, केशर, [illegible], [illegible], [illegible], कपूर, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], गोखरू, सौंफ, [illegible], [illegible], पद्माख, [illegible], [illegible] आदि।

तमोगुण—

माला रुद्राक्ष। आसन [illegible]। पुष्प-[illegible] का। पात्र लोहा। वस्त्र-ऊन। मुख-पश्चिम को। दीपक में [illegible] का। तिलक भस्म का। [illegible] हवन सामग्री [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], गुड़।

गुणों के अनुसार साधना [illegible] [illegible] करने से साधक में उन्हीं गुणों की अभिवृद्धि होती है, तदनुसार सफलता का मार्ग [illegible] सुगम हो जाता है।

नवदुर्गाओं में गायत्री साधना

यों तो वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म ये छः ऋतुएँ होती हैं और मोटे तौर से सर्दी, गर्मी, वर्षा यह तीन ऋतुएँ मानी जाती हैं, पर वास्तव में दो ही ऋतुएँ हैं—(१) सर्दी (२) गर्मी। वर्षा तो इन्हीं ऋतुओं में होती है। गर्मियों में मेघ सावन-भादों में बरसते हैं, सर्दियों में पौष-माघ में वर्षा होती है। गर्मियों की वर्षा में अधिक पानी पड़ता है, सर्दियों में कम। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वर्षा पड़ने की आशा की जाती है। इन दो प्रधान ऋतुओं के मिलने की संधि बेला को नवदुर्गा कहते हैं।

दिन और रात्रि के मिलन काल को सन्ध्याकाल कहते हैं और इस महत्त्वपूर्ण सन्ध्याकाल को बड़ी सावधानी से बिताते हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय भोजन करना, सोना, मैथुन करना, शौच जाना आदि [illegible] हो काम वर्जित हैं। इस समय को ईश्वराधना, सन्ध्यावन्दन, आत्म साधना आदि कार्यों में लगाते हैं, क्योंकि वह समय [illegible] [illegible] [illegible] सूक्ष्म दृष्टि से अधिक उपयोगी है, [illegible] [illegible] [illegible] थोड़े ही श्रम से अधिक और आश्चर्यजनक सफलता मिलती है। इसी प्रकार जो कार्य वर्जित हैं, वे इस समय में अन्य समयों की अपेक्षा हानिकारक होते हैं। सर्दी और गर्मी की ऋतुओं का मिलन, दिन और रात्रि के मिलन के समान सन्ध्याकाल है, सूक्ष्म पर्व है। पुराणों में कहा है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] होती है। जैसे [illegible] को विशेष आहार-विहार और आचार-विचार आदि का ध्यान रखना आवश्यक होता है, वैसे ही इस सन्ध्याकाल का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आवश्यकता होती है।

[illegible] [illegible] के [illegible] जानते हैं कि [illegible] और चैत्र के जो सूक्ष्म ऋतु परिवर्तन होता है, उसका प्रभाव शरीर पर [illegible] अधिक मात्रा में होता है। उस प्रभाव से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाती हैं और अनेक व्याधि ज्वर, खुजली, हैजा, चेचक, [illegible] आदि अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] में उन दिनों बीमारों का मेला लगा रहता है। [illegible] [illegible] जानते हैं कि वमन, विरेचन, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि शरीर-शोधन कार्यों के लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] ही सबसे उपयुक्त है। इस समय में [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] दो प्रमुख [illegible] नवदुर्गाओं के अन्त में होते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण [illegible] के लिये यही समय उपयुक्त है। नवदुर्गाओं के अन्त में [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का अवतार हुआ। यह अमावस्या पूर्णमासी की सन्ध्या जैसी ही है, जिसके अन्त में सूर्य या चन्द्रमा का उदय होता है।

[illegible] परिवर्तन का अवसर [illegible] [illegible] [illegible] में जो महत्त्वपूर्ण [illegible] [illegible] पड़ता है, उस [illegible] अधिकांश लोगों को कुछ न कुछ शारीरिक [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] होती है। [illegible] समय शारीरिक [illegible] शक्ति में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उत्पन्न होती है और उसके प्रभाव से [illegible] [illegible] [illegible]

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आहार-विहार में जो अनियमिततायें हुई हैं, उनसे कुअभ्यास या स्वादवश जो अनुचित और अतिरिक्त सामग्री ग्रहण करके दूषित तत्वों को बढ़ाया, वह शक्ति अंगों निष्कासन का उद्योग करने में लगती है। यही दोष-निष्कासन की प्रतिक्रिया सामान्य जुकाम-बुखार, जुकाम-खाँसी आदि के रूप में प्रकट होती है। यदि उपवास या स्वल्प आहार द्वारा शरीर को उसकी सफाई आप कर लेने की छूट दें और जप उपासना द्वारा मानसिक क्षेत्र के मल-विक्षेपों को दूर करने का प्रयत्न करें, तो आगामी छह महीनों के लिये रोगों से बचकर स्वस्थ जीवन बिताने के योग्य बन सकते हैं। नवरात्रि का यह लघु अनुष्ठान इस दृष्टि से उपयोगी है।

चैत्र और क्वार मास शुक्लपक्ष में प्रतिपदा (पड़वा) से लेकर नवमी तक नौ दुर्गायें रहती हैं। यह समय गायत्री-साधना के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। इन दिनों में उपवास रखकर, चौबीस हजार मन्त्रों के जप का छोटा- सा अनुष्ठान कर लेना चाहिये। यह छोटी साधना भी बड़ी के समान उपयोगी सिद्ध होती है।

एक समय अन्नाहार, एक समय फलाहार, दो समय दूध और फल, एक समय आहार, एक समय फल-दूध का आहार, केवल दूध का आहार इनमें से जो भी उपवास अपनी सामर्थ्यानुकूल हो उसी के अनुसार साधना आरम्भ कर देनी चाहिये। प्रातःकाल आवश्यक कृत्यों से निवृत्त होकर, स्नान से निवृत्त होकर पूर्व वर्णित विधियों को ध्यान में रखते हुए बैठना चाहिये। नौ दिन में २४ हजार जप करना है। प्रतिदिन २६६७ मन्त्र जपने हैं। एक माला में १०८ दाने होते हैं। प्रतिदिन २७ मालायें जपने से यह संख्या पूरी हो जाती है। तीन घण्टे में अपनी गति के अनुसार इतनी मालायें आसानी से जपी जा सकती हैं। यदि एक बार में इतने समय लगातार जप करना कठिन हो, तो अधिकांश भाग प्रातःकाल पूरा करके न्यून अंश सायंकाल को पूरा कर लेना चाहिये। अन्तिम दिन हवन के लिये है। उस दिन पूर्व वर्णित हवन के अनुसार कम से कम १०८ आहुतियों का हवन कर देना चाहिये। ब्राह्मण भोजन और यज्ञ पूर्ति की दान-दक्षिणा की भी यथाविधि व्यवस्था करनी चाहिये।

यदि स्वयं नौ दिन का अनुष्ठान नवरात्रियों के समय में प्रति वर्ष करते रहा जाय, तो सबसे उत्तम है। स्वयं न कर सकें, तो किसी अधिकारी सुपात्र ब्राह्मण से यह करा लेना चाहिये। ये नौ दिन साधना के लिये बड़े ही उपयुक्त हैं। ऋतु परिवर्तन, कामनापूर्ति और आत्मबल बढ़ाने में इन दिनों की उपासना बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती है। आगामी नवरात्रियाँ निकट हैं। पाठक उस समय एक छोटा अनुष्ठान करके उसका लाभ देखें।

नवरात्रियों के अतिरिक्त भी छोटा अनुष्ठान इसी प्रकार कभी भी किया जा सकता है। सवालक्ष का जप चालीस दिन में होने वाला पूर्ण अनुष्ठान है। नौ दिन का एक पाद (पञ्चमांश) अनुष्ठान कहलाता है। सुविधा और आवश्यकतानुसार इसे भी करते रहना चाहिये। यह तपोधन जितनी अधिक मात्रा में एकत्रित किया जा सके, उतना ही उत्तम है।

छोटा गायत्री मन्त्र—

जैसे सवालक्ष जप का पूर्ण अनुष्ठान न कर सकने वालों के लिये नौ दिन का चौबीस हजार जप का लघु अनुष्ठान हो सकता है, उसी प्रकार अल्पशिक्षित अशिक्षित बालक या स्त्रियों के लिये लघु गायत्री मन्त्र भी है। जो २४ अक्षरों का पूर्ण मन्त्र याद नहीं कर पाते, वे प्रणव और व्याहृतियाँ (ॐ भूर्भुवः स्वः) इतना पञ्चाक्षरी मन्त्र का जप करके काम चला सकते हैं। जैसे चारों वेदों का बीज चौबीस अक्षर वाली गायत्री है, वैसे ही गायत्री का मूल पंचाक्षरी मन्त्र प्रणव और व्याहृतियाँ हैं। ॐ भूर्भुवः स्वः यह मन्त्र स्वल्प ज्ञान वालों की सुविधा के लिये बड़ा उपयोगी है।

महिलाओं के लिये विशेष साधनाएँ

पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी वेदमाता गायत्री की साधना का अधिकार है। गतिहीन व्यवस्था को गतिशीलता में परिणत करने के लिये दो भिन्न जाति के पारस्परिक आकर्षण करने वाले तत्वों की आवश्यकता होती है। ऋण (नेगेटिव) और धन (पोजेटिव) शक्तियों के पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण द्वारा ही विद्युत गति का संचार होता है। परमाणु के इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन भाग पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण गतिशील होते हैं। शाश्वत चैतन्य को क्रियाशील बनाने के लिये सजीव सृष्टि को नर और नारी के दो वर्गों में बाँटा गया है, क्योंकि

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

ऐसा विश्वास हुए बिना चित्त विक्षेप अवस्था में ही पड़ा रहता है। "जीव" और "ब्रह्म" शब्द का सम्मिलन ही जो चैतन्य है। नर-तत्त्व और नारी तत्त्व का परस्पर सम्मिलन न हो, तो जीवन, आनन्द, स्फूर्ति, चैतन्य, गति, क्रिया, वृद्धि आदि का लोप होकर एक जड़ स्थिति रह जायगी।

नर तत्त्व और नारी तत्त्व एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनों का कर्तव्य, उपयोग, अधिकार और स्थान समान है। वेदमाता गायत्री की साधना का अधिकार भी स्त्रियों को पुरुषों के समान ही है। जो यह कहते हैं कि गायत्री वेद मन्त्र होने से उसका अधिकार स्त्रियों को नहीं है, वे भारी भूल करते हैं। प्राचीन काल में स्त्रियाँ मन्त्रदृष्टा रही हैं। वेदमन्त्रों का उनके द्वारा अवतरण हुआ है। गायत्री स्वयं स्त्रीलिंग है फिर उसके अधिकार न होने का कोई कारण नहीं। हाँ, जो अशिक्षित, शीलरहित, अपवित्र, नहीं शुद्ध हैं, वे स्वच्छता पवित्रता नहीं रखतीं, न बहुत समझती हैं, इसलिये वे अपनी स्थिति की मानसिक अपात्रता से ही अधिकार-वंचित होती हैं।

स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति गायत्री-साधनायें कर सकती हैं। जो साधनायें इस पुस्तक में दी गई हैं, वे सभी उनके अधिकार क्षेत्र में हैं। परन्तु देखा गया है कि साधारण स्त्रियाँ जिनके घर के काम में विशेष रूप से व्यस्त रहना पड़ता है अथवा जिनके छोटे बच्चे हैं और वे उनके मल-मूत्र के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण उतनी स्वच्छता नहीं रख सकतीं, उनके लिये देर में पूरी हो सकने वाली साधनायें कठिन हैं। वे संक्षिप्त पंचाक्षरी गायत्री मंत्र (ॐ भूर्भुवः स्वः) से काम चला सकती हैं। रजस्वला होने के दिनों में उन्हें विधिपूर्वक साधना बन्द रखनी चाहिये। कोई अनुष्ठान चल रहा हो, तो इन दिनों में रोककर रज-स्नान के पश्चात् उसे फिर चालू किया जा सकता है।

विवाहिता महिलायें गायत्री-साधना को पुरुषों की भाँति ही सुविधापूर्वक कर सकती हैं। अविवाहिता या विधवा देवियों के लिये तो केवल वे सुविधायें हैं जैसी कि पुरुषों की, जिनके बच्चे बड़े हो गये हैं, गोदी में कोई छोटा बालक नहीं है या जो वयोवृद्ध हैं, उन्हें भी कुछ असुविधा नहीं हो सकती। साधारण दैनिक साधना में कोई विशेष नियमोपनियम पालन करने की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ जीवन के साधारण धर्म-पालन करने में उसमें कोई बाधा नहीं। यदि कोई विशेष साधना या अनुष्ठान करना हो, तो उतनी अवधि के लिये ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक होता है।

विभिन्न प्रयोजनों के लिये कुछ साधनायें नीचे दी जाती हैं—

मनोनिग्रह और ब्रह्म-प्राप्ति के लिये—

विवेक जगाने, आत्म-संयम, सदाचार, ईश्वर-भक्ति, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय निग्रह एवं मन को वश में करने के लिये गायत्री साधना को बहुत रूप में प्रयोग कर सकते हैं। जिस दिन से यह साधना आरम्भ की जाती है, उसी दिन से मन में शान्ति, स्थिरता, सद्बुद्धि और आत्म-संयम की भावना पैदा होती है। मन पर अपना अधिकार होता है, चित्त की चंचलता घट जाती है, विचारों में सतोगुण बढ़ जाता है। इच्छायें, रुचियाँ, क्रियायें, भावनायें सभी सतोगुणी, शुद्ध और पवित्र रहने लगती हैं। ईश्वर-भक्ति, धर्म रक्षा, तपश्चर्या, आत्म कल्याण और ईश्वर आराधना में मन विशेष रूप से लगता है। धीरे-धीरे साधक सात्त्विक, तपस्वी, ईश्वर परायण एवं ब्रह्मपरायण जैसा संस्कारित हो जाता है। साधक के नेत्रों में एक भगवान् का साक्षात्कार होने लगता है और ऐसे अनेक लक्षण दिखते हैं, जिनकी तुलना में सम्पूर्ण दुनिया का सुख तुच्छ दिखाई पड़ता है।

प्रातःकाल ऐसे जल से स्नान करें जो शरीर को सहन हो, अति शीतल या अति उष्ण जल स्नान के लिये अनुपयुक्त है। वैसे तो सभी के लिये, पर स्त्रियों के लिये विशेष रूप से, आग्रह स्नानादि का कष्ट उठाना के लिये हानिकारक है। स्नान के उपरान्त पालथी मारकर बैठना चाहिये। पास में जल भरा पात्र रख ले। जप के लिये तुलसी की माला और बिछाने के लिये कुशासन ठीक है। कुशासन, मौन, ब्रह्मचर्य, पद्मासन, ... हाथ में - पुस्तक, कमण्डलु, पुष्प और माला लिये हुए अत्यन्त सुन्दर सौम्याकृति गायत्री का ध्यान करना चाहिये। ध्यान सद्गुणों की वृद्धि के लिये, मनोनिग्रह के लिये बहुत आवश्यक है। मन को बार-बार इस ध्यान में लगाना चाहिये और प्रयत्न करते रहना चाहिये कि ध्यान से कुछ अधिक हो, ठीक टिकने दें, परन्तु मन को

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

विकट बैठा हुआ मनुष्य भी भली प्रकार दूर न कर सके। ज्ञान और साधन दोनों समान रूप से इस प्रकार का जप किया जा सकता है। एक माला तो कम से कम जप होना ही चाहिये। सुविधानुसार अधिक संख्या में भी जप करना चाहिये। उपर्युक्त प्रकरण में लिखी हुई तपश्चर्यायें साथ में की जायें, तो और भी अच्छा है। किस प्रकार के स्वभाव और वातावरण के लिये कौन-सी तपश्चर्या ठीक रहेगी, इस सम्बन्ध में शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार से जानकारी पत्र द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

कुमारियों के लिये आशाप्रद भविष्य की साधना

कुमारी कन्यायें अपने विवाहित जीवन में सब प्रकार के सुख शान्ति की प्राप्ति के लिये गायत्री की उपासना कर सकती हैं। पार्वती जी ने मनचाहा वर पाने के लिये नारद जी के आदेशानुसार तप किया था और वे अन्त में सफल मनोरथ हुई थीं। सीता जी ने मनोवांछित पति पाने के लिये गौरी (पार्वती) की उपासना की थी। जगद्गुरुओं में आस्तिक घरानों की कन्यायें भगवती की आराधना करती हैं, गायत्री की उपासना उनके लिये सब प्रकार मंगलमय है।

गायत्री के चित्र अथवा मूर्ति को किसी छोटे आसन या चौकी पर स्थापित करके उसकी पूजा वैसे ही करनी चाहिये, जैसे अन्य देव प्रतिमाओं की होती है। प्रतिमा के आगे एक छोटी तश्तरी रख लेनी चाहिये और उसी पर चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, जल, भोग आदि पूजा सामग्री चढ़ानी चाहिये, मूर्ति के मस्तक पर चन्दन लगाया जा सकता है, पर यदि चित्र है तो उसके चन्दन आदि नहीं लगाना चाहिये, जिससे उसमें मैलापन न आए। नेत्र बन्द करके ध्यान करना चाहिये और मन ही मन कम से कम २४ मन्त्र गायत्री के जपने चाहिये। गायत्री का चित्र या मूर्ति अपने यहाँ प्राप्त न हो सके, तो उसके लिये गायत्री तपोभूमि मथुरा को लिखना चाहिये। इस प्रकार की गायत्री साधना कन्याओं को उनके लिये अनुकूल वर, घर तथा सौभाग्य प्रदान करने में सहायक होती है।

सधवाओं के लिये मंगलमयी साधना

अपने पतियों को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ, सम्पन्न, प्रसन्न, दीर्घजीवी बनाने के लिये सधवा स्त्रियों को गायत्री की उपासना करनी चाहिये। इससे पतियों के बिगड़े हुए स्वभाव, विचार और आचरण शुद्ध होकर उनमें ऐसी सात्त्विक बुद्धि आती है कि वे अपने गृहस्थ जीवन के कर्तव्य-धर्मों को तत्परता एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन कर सकें। इस साधना से स्त्रियों के शरीर तथा स्वभाव में एक ऐसा आकर्षण पैदा होता है, जिससे वे सभी को परम प्रिय लगती हैं और उनका समुचित सत्कार होता है। अपना बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, घर के अन्य लोगों का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, आर्थिक तंगी, दरिद्रता, बढ़ा हुआ खर्च, आमदनी की कमी, पारिवारिक क्लेश, मनमुटाव, आपसी द्वेष एवं बुरे दिनों के उपद्रव को शान्त करने के लिये महिलाओं को गायत्री-उपासना करनी चाहिये। पिता के कुल एवं पति के कुल दोनों ही कुलों के लिये यह साधना उपयोगी है, पर सधवाओं की उपासना विशेष रूप से पतिकुल के लिये ही लाभदायक होती है।

प्रातःकाल से लेकर मध्याह्नकाल तक उपासना कर लेनी चाहिये। जब तक साधना न की जाए, भोजन नहीं करना चाहिये। हाँ, जल पिया जा सकता है। शुद्ध शरीर, मन और शुद्ध वस्त्र से पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिये। केशर डालकर चन्दन अपने हाथ से घिसें और मस्तक, हृदय तथा कण्ठ पर तिलक छापे के रूप में लगावें। तिलक छोटे-से-छोटा भी लगाया जा सकता है, गायत्री की मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना करके उसकी विधिवत् पूजा करें। पीले रंग का पूजा के सब कार्यों में प्रयोग करें। प्रतिमा का आवरण पीले वस्त्र का रखें। पीले पुष्प, पीले चावल, बेसन के लड्डू आदि पीले पदार्थ का भोग, केसर मिले चन्दन का तिलक, आरती के लिए पीला घी, घी न मिले तो उसमें केसर मिलाकर पीला कर लेना, चन्दन का चूरा, धूप। इस प्रकार पूजा में पीले रंग का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये। नेत्र बन्द करके पीतवर्ण आकाश में पीले सिंह पर सवार, पीताम्बर पहने गायत्री का ध्यान करना चाहिये। पूजा के समय सब वस्त्र पीले न हो सकें, तो कम से कम एक वस्त्र पीला अवश्य होना चाहिये। इस प्रकार पीतवर्ण गायत्री का ध्यान करते हुए कम से कम २४ मंत्र गायत्री के जपने चाहिये। जब अवसर मिले, तभी मन ही मन भगवती का ध्यान करती रहें। महीने की हर एक पूर्णमासी को व्रत

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyright or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on this website can be used for propagation with prior written consent.

www.awgp.org | www.akhandjyoti.org

रखना चाहिये। इसके लिए अधिक से पूर्व तीन पीले रंग की अपनाना है। शरीर पर हल्दी-मिली हल्दी का उबटन कर लेना अच्छा है। यह सौभाग्य अपना उज्ज्वल जीवन को सुखी बनाने के लिये परम उत्तम है।

सन्तान सुख देने वाली उपासना

जिनकी सन्तान बीमार रहती है, अल्प आयु में ही मर जाती है, केवल पुत्र या कन्यायें ही होती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, गर्भ स्थापित ही नहीं होता, जन्म से दोष लगा हुआ है अथवा सन्तान दीर्घसूत्री, आलसी, मन्दबुद्धि, दुर्गुणी, आज्ञा उल्लंघनकारी, कटुभाषी या कुमार्गगामी है, वे वेदमाता गायत्री की शरण में आकर इन कष्टों से छुटकारा पा सकती हैं। हमारे सामने ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिन स्त्रियों ने वेदमाता गायत्री के चरणों में अपना अञ्चल फैलाकर सन्तान-सुख माँगा है उन्हें भगवती ने प्रसन्नतापूर्वक दिया है। माता के भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं है, उसकी कृपा को प्राप्त करके मनुष्य दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर सकता है। कोई वस्तु ऐसी नहीं, जो माता की कृपा से प्राप्त न हो सकती हो, फिर सन्तान-सुख जैसी साधारण बात की उपलब्धि में कोई बड़ी अड़चन नहीं हो सकती।

जो स्त्रियाँ गर्भवती हैं, वे प्रातः सूर्योदय से पूर्व या रात्रि को सूर्य अस्त के पश्चात् अपने गर्भ में गायत्री के सूर्य सदृश प्रकाश का ध्यान किया करें और मन ही मन गायत्री जपें, तो उनका बालक तेजस्वी, बुद्धिमान, चतुर, दीर्घजीवी तथा यशस्वी होता है।

प्रातःकाल कटि प्रदेश में भीगे वस्त्र रखकर शीतल जल में बैठ जाना चाहिये और अपने योनि मार्ग में होकर गर्भाशय तक पहुँचता हुआ गायत्री का प्रकाश सूर्य किरणों जैसा ध्यान करना चाहिये। तीन मास ऐसा करें। यह साधना, बीज को गर्भ स्थापित करने वाली है। कुन्ती ने इस साधना के बल से गायत्री के दक्षिण भाग (सूर्य भगवान्) को आकर्षित करके कुमारी अवस्था में ही कर्ण को जन्म दिया था। यह साधना कुमारी कन्याओं को नहीं करनी चाहिये।

साधना से उठकर सूर्य को जल चढ़ाना चाहिये और अर्घ्य से बचा हुआ एक चुल्लू जल स्वयं पीना चाहिये। इस प्रयोग से कन्यायें गर्भ धारण करती हैं, जिनके बच्चे मर जाते हैं या गर्भपात हो जाता है, उनका यह कष्ट निश्चय सन्तोषदायी सफल होती है।

रोगी, कुबुद्धि, आलसी, चिड़चिड़े बालकों को गोद में लेकर माताएँ हंसवाहिनी, कुमारी स्वरूप, पुस्तक हाथ में लिये हुई, शंख-चक्र हाथ में लिये गायत्री का ध्यान करें और मन ही मन जप करें। माता के जप का प्रभाव बच्चे में किरणें बालक पर होता है और उसके शरीर तथा मस्तिष्क में आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। छोटा बालक हो तो इस साधना के समय माता दूध पिलाती रहे। बड़ा बच्चा हो तो उसके शरीर पर हाथ फिराती रहे। बच्चों की शुभकामना के लिये गुरुवार का व्रत उत्तम है। प्रातःकाल में जल का अर्घ्य सूर्य को चढ़ायें और पीछे बचा हुआ थोड़ा सा जल बच्चों पर मार्जन की तरह छिड़क दें।

किसी विशेष आवश्यकता के लिये

अपने परिवार पर, कौटुम्ब पर, रिश्तेदारों पर आयी हुई किसी आपत्ति के निवारण के लिये अथवा किसी आवश्यक कार्य में आई हुई किसी बड़ी रुकावट एवं कठिनाई को हटाने के लिये गायत्री-साधना के माध्यम दैवी सहायता के माध्यम ग्रहण करिये। कोई विशेष कामना मन में हो और उसके पूर्ण होने में भारी बाधायें दिखाई पड़ रही हों, तो उसके लिए वेदमाता गायत्री को पुकारना चाहिये। माता जैसे अपने प्रिय बालक की पुकार सुनकर दौड़ी आती है, वैसे ही गायत्री की उपासना करने वाले साधक का आवश्यक सहायता का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करती हैं।

नौ दिन का लघु अनुष्ठान, चालीस दिन का पूर्ण अनुष्ठान इसी पुस्तक में अन्यत्र वर्णित है। तत्कालीन आवश्यकता के लिये उनका उपयोग करना चाहिये। उपासनाएँ प्रकरण में लिखी हुई उपलब्धियाँ भगवती को प्रसन्न करने के लिये प्रायः सफल होती हैं। कुछ गायत्री साधन समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, उसका उल्लेख आगे किया जायेगा। जैसे पूजन के लिये गायत्री अनुष्ठान एक सर्वोत्तम साधन है, उनमें प्रथम महिलाओं

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

के लिये गायत्री उद्यापन की [illegible] महिमा है। [illegible] विशेष कठिनाई भी नहीं है और विशेष प्रतिबन्ध भी नहीं है। सरलता की दृष्टि से सब किसी के लिये विशेष उपयोगी है। [illegible] करने के लिये उद्यापन की पुस्तकमाला [illegible] एक [illegible] है।

[illegible] की अवस्था में गायत्री [illegible] का पाठ महिलाओं के लिये बड़ा हितकारी है। [illegible] गायत्री मन्त्र में [illegible] कितने [illegible] लेती हैं और गायत्री अधिकारिणी बन जाती हैं। साधना आरम्भ करने से पूर्व [illegible] कर लेना चाहिये। इसी पुस्तक के पिछले पृष्ठों में गायत्री [illegible] के सम्बन्ध में विस्तार बताया गया है।

एक वर्ष की उद्यापन साधना

कई व्यक्तियों का जीवन-क्रम बड़ा अस्त-व्यस्त होता है, वे बड़े कार्यों में व्यस्त रहते हैं। आकस्मिक जीवन की कठिनाइयाँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। जीविका कमाने में, सामाजिक व्यवहारों को निभाने में, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में, उलझी हुई परिस्थितियों को सुलझाने में, कठिनाइयों के निवारण की चिन्ता में उनके समय और शक्ति का इतना व्यय हो जाता है कि जब फुरसत मिलने की घड़ी आती है, तब वे अपने को थका-माँदा, अनिच्छुक, शिथिल और परेशान से पाते हैं। उस समय उनकी एक ही इच्छा होती है कि उन्हें चुपचाप पड़े रहने दिया जाए, कोई कुछ कहे नहीं; ताकि वे सुस्ताकर अपनी थकान उतार सकें। कई व्यक्तियों का शरीर एवं मस्तिष्क अल्प शक्ति वाला होता है, मामूली दैनिक कार्यों के करने में ही वे अपनी शक्ति खर्च कर देते हैं, फिर उनके हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं।

साधारणतः सभी आध्यात्मिक साधनाओं के लिये और विशेष कर गायत्री-साधना के लिये उत्साहित मन एवं शक्ति-सम्पन्न शरीर की आवश्यकता होती है, ताकि स्थिरता, दृढ़ता, एकाग्रता और शान्ति के साथ मन साधना में लग सके। इस स्थिति में की गयी साधनायें सफल होती हैं। परन्तु कितने लोग हैं, जो ऐसी स्थिति को उपलब्ध कर पाते हैं। अधिकतर, [illegible] किसी प्रकार साधना में जुट जाए, तो उससे वैसा परिणाम नहीं निकल पाता, जैसा कि निकलना चाहिये। अधूरे मन से की गयी उपासना भी अधूरी होती है और उसका फल भी वैसा ही अधूरा मिलता है।

ऐसे लोगों के लिये एक अति सरल एवं बहुत महत्त्वपूर्ण साधना "गायत्री-उद्यापन" है। इसे बहुधन्धी, काम-काजी और [illegible] व्यक्ति भी कर सकते हैं। कहते हैं कि बूँद-बूँद जोड़ने से धीरे-धीरे घड़ा भर जाता है। थोड़ी-थोड़ी आराधना करने से कुछ समय में एक बड़े परिमाण में साधना-शक्ति जमा हो जाती है।

प्रतिमास अमावस्या और पूर्णमासी दो दिन उद्यापन की साधना करनी पड़ती है। किसी मास की पूर्णिमा से इसे आरम्भ किया जा सकता है। ठीक एक वर्ष बाद इसी पूर्णमासी को उसकी समाप्ति करनी चाहिये। प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को निम्न कार्यक्रम होना चाहिये और इन नियमों का पालन करना चाहिये।

(१) गायत्री उद्यापन के लिये कोई सुयोग्य, सदाचारी, गायत्री-निष्ठ का ब्राह्मण [illegible] करके उसे अपना नियुक्त करना चाहिये।

(२) [illegible] की उद्यापन आरम्भ करते समय [illegible], गन्ध, [illegible] और यथासम्भव दक्षिणा देकर इस कार्य के लिये [illegible] करना चाहिये।

(३) प्रत्येक अमावस्या व पूर्णिमा को साधक को चाहिये कि अपने निवास स्थान पर रहकर, यजमान की [illegible] के लिये [illegible] करें। [illegible] और [illegible] को एक [illegible] करना चाहिये, जिससे उभयपक्षीय भावनायें मिलकर एक सर्वांगपूर्ण साधना सम्पन्न हो।

(४) [illegible] रहना आवश्यक है।

(५) उस दिन उपवास रहे। अपनी स्थिति और स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए [illegible] आहार, फलाहार, दुग्धाहार या [illegible] के आधार पर उपवास किया जा सकता है। उपवासों एवं उपवासों के [illegible] में इस सम्बन्ध में विस्तृत बातें लिखी जा चुकी हैं।

(६) अनुष्ठानों के प्रकरण में बताई हुई तपश्चर्याओं में से जो जो नियम, जितने पालन किये जा सकें, उनका उतना अधिक पालन करना चाहिये। अन्य दिन पूजनों की तुलना में, जितना अधिक हो सके पूर्णाहुति पर सुविधा अधिक है।

(७) प्रति दिन प्रातःकाल नित्यकर्मों से निवृत्त होकर एकान्तपूर्वक साधना के लिये बैठना चाहिये। गायत्री स्थापना करने के उपरान्त गायत्री की प्रतिमा (चित्र या मूर्ति) का पूजन धूप, दीप, अक्षत, पुष्प, चन्दन, रोली, जल, मिष्ठान्न से करें। तदुपरान्त भावना द्वारा उस प्रतिमा के चरणों का ध्यान करके मन ही मन उन्हें प्रणाम करें और ब्रह्म भगवान का ध्यान करते हुए उनसे आशीर्वाद ले। इसके पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप आरम्भ करें। जप के समय इस पुस्तक के आरम्भ में दिये हुए गायत्री-चित्र का ध्यान करता रहे। इस मन्त्र का जप करने के लिये कुश के आसन पर बैठना चाहिये। मिट्टी के एक पात्र में अग्नि रखकर उसमें घी में मिली हुई धूप डालता रहे, जिससे वह और उसकी सुगन्ध उठती रहे। साथ ही घी का दीपक जलता रहे।

(८) जप पूरा होने पर धूप या कपूर की आरती उतारें। आरती के उपरान्त भगवती को मिष्ठान्न का भोग लगायें और उसे प्रसाद की तरह उपस्थित लोगों में बाँट दें।

(९) माला के अन्त को सूर्य के सम्मुख अर्पित कर देना है।

(१०) यह साधना कुछ घण्टे लगाने से ही पूरी हो जाती है, इसलिए नित्य प्रति इसका समय निकालना कोई कठिन बात नहीं है। जो व्यक्ति कार्य-व्यस्त रहते हैं, वे भी थोड़ा समय निकालकर सुविधापूर्वक इस उपासना को सम्पन्न कर सकते हैं। सन्ध्या के बाद समय मिल सके, तो थोड़ा-बहुत उस समय भी मानसिक रीति से जप कर लेना चाहिये। सन्ध्या पूजन आदि की आवश्यकता नहीं। जप और ध्यान का एक समय पूर्व निश्चित होना चाहिये, जिस पर ध्यान और श्रद्धा सहित साधना चल सके।

(११) यदि किसी दिन बीमारी, सूतक, आकस्मिक कार्य आदि के कारण साधना न हो सके, तो दूसरी बार दूना करके क्षतिपूर्ति कर लेनी चाहिये या किसी अन्य श्रद्धालु एवं अधिकारी व्यक्ति से जप पूरा करा दे।

(१२) अमावस्या, पूर्णिमा के अतिरिक्त भी महीने में एक बार उपवास रखना चाहिये। उपवास न बन पड़े, तो स्नान के अतिरिक्त या ध्यान करते समय मन से मन में ध्यान मात्र ही करते रहना चाहिये।

(१३) अनुष्ठान पूरा होने पर उसी पूर्णिमा को गायत्री-पूजन, हवन, दान तथा ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। ब्राह्मणों को गायत्री सम्बन्धी छोटी या बड़ी पुस्तकें दान और जो बन पड़े दक्षिणा में देना चाहिये। गायत्री-पूजन के लिये अपनी सामर्थ्यानुसार सोने, चाँदी या ताँबे की गायत्री-प्रतिमा बनवानी चाहिये। तौलिया, वस्त्र, पात्र तथा दक्षिणा देकर ब्राह्मण को विदा करना चाहिये।

यह गायत्री उपासना आध्यात्म, धर्म, सन्तोष तथा सुख-शान्ति की वृद्धि करने वाली है। बौद्धिकता का विकास करती है, सद्बुद्धि प्रदान करती है, यह बुद्धि तथा विवेकशीलता उत्पन्न करती है एवं मानसिक शक्तियों को बढ़ाती है। किसी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये, गायत्री की कृपा प्राप्त करने के लिये यह एक उत्तम उपाय है, जिससे भगवती प्रसन्न होकर साधक का मनोरथ पूरा करती है। यदि कोई सफलता मिले, अभीष्ट कामना की पूर्ति हो, प्रसन्नता का अवसर आए, तो उसकी खुशी में भगवती के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के रूप में उद्यापन करते रहना चाहिये। गीता में भगवान् ने कहा है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ —गी० ३।११

'इस यज्ञ द्वारा तुम देवताओं की आराधना करो, वे देवता तुम्हारी उन्नति करेंगे। इस प्रकार, आपस में आदान-प्रदान करने से परम कल्याण की प्राप्ति होगी।'

गायत्री साधना से अनेकों प्रयोजनों की सिद्धि

गायत्री-मन्त्र सर्वोपरि मन्त्र है। इससे बढ़कर और कोई मन्त्र नहीं। जो काम संसार के किसी अन्य मन्त्र से नहीं हो सकता, वह निश्चित रूप से गायत्री द्वारा हो सकता है। दक्षिण-मार्गी योग-साधना वैदिक पद्धति से जिन कार्यों

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of this website.